अक्तूबर-दिसम्बर, 2013 [संयुक्तांक]

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक
अनूप कुमार वार्ष्णेय

संपादक
जुगल किशोर

महत्वपूर्ण निर्णय

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 और धारा 304 भाग-I – हत्या और हत्या की कोटि में न आने वाला मानववध – अचानक और गंभीर प्रकोपन – आत्म संयम खो बैठना – दुर्भावना का न होना – पूर्व-चिन्तन और हत्या के आशय के बिना अचानक और गंभीर प्रकोपन के परिणामस्वरूप मृत्यु होना – अपराधी हत्या के बजाय हत्या की कोटि में न आने वाले मानववध का दोषी होगा ।

बुधी सिंह बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य** 142

संसद् के अधिनियम

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ (1) – (24)

पृष्ठ संख्या 1 – 208 **[2013] 4 उम. नि. प.**

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका – अक्तूबर-दिसम्बर, 2013 [संयुक्तांक] [पृष्ठ संख्या 1 – 208]

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

अक्तूबर-दिसम्बर, 2013

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड **बनाम** दयामावा और अन्य	167
गजू **बनाम** उत्तराखंड राज्य	17
गौडप्पा और अन्य **बनाम** कर्नाटक राज्य	188
देवकी पंझीयारा **बनाम** शशि भूषण नारायण आज़ाद और एक अन्य	128
पुलिस उप महानिरीक्षक **बनाम** समुतिराम	103
बुधी सिंह **बनाम** हिमाचल प्रदेश राज्य	142
महाराष्ट्र राज्य वक्फ बोर्ड **बनाम** शेख यूसुफ भाई चावला	1
राजेश अवस्थी **बनाम** नन्द लाल जायसवाल और अन्य	42
विपुल शीतल प्रसाद अग्रवाल **बनाम** गुजरात राज्य और एक अन्य	77
सत्यपाल **बनाम** हरियाणा राज्य	201
सी. के. जाफर शरीफ **बनाम** राज्य (केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के माध्यम से)	91

संसद् के अधिनियम

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	(1) – (24)

पृष्ठ संख्या

घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम, 2005 (2005 का 43)

– धारा 11 – शून्य विवाह – यद्यपि विवाह के पक्षकारों के लिए अपने विवाह को अकृत और शून्य घोषित कराना वैकल्पिक है तथापि, किन्हीं परिस्थितियों में पक्षकारों की वैवाहिक स्थिति का विनिश्चय करने के लिए इसे आवश्यक बनाया जा सकता है ।

देवकी पंझीयारा बनाम **शशि भूषण नारायण आज़ाद और एक अन्य** 128

– धारा 12 [सपठित हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) की धारा 11] – पत्नी द्वारा भरणपोषण का दावा – पति द्वारा इस आधार पर भरणपोषण के दावे से इनकार करना कि उनका विवाह शून्य था – जब पत्नी के भरणपोषण संबंधी दावे का पति द्वारा इस आधार पर विरोध किया जाता है कि उनका विवाह शून्य था क्योंकि पत्नी का पूर्व विवाह अस्तित्व में था तब पति द्वारा अपने दावे के समर्थन में पत्नी के पूर्व विवाह का प्रमाणपत्र पेश करने मात्र से पत्नी के भरणपोषण संबंधी दावे से इनकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि न्यायालय भरणपोषण की सांपार्श्विक कार्यवाहियों में विवाह को शून्य अभिनिर्धारित करके पत्नी के दावे से इनकार नहीं कर सकता है ।

देवकी पंझीयारा बनाम **शशि भूषण नारायण आज़ाद और एक अन्य** 128

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)

– धारा 167(2) और 173(8) – कानूनी जमानत – स्थानीय पुलिस द्वारा लेखबद्ध प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के

पृष्ठ संख्या

अनुसरण में गिरफ्तार व्यक्ति के विरुद्ध नियत समय के भीतर अन्वेषण करके आरोप पत्र फाइल किया जाना किन्तु उच्चतम न्यायालय द्वारा उस अन्वेषण को स्वीकार न करके केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो को नए सिरे से जांच करने का आदेश दिया जाना – केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा अन्वेषण के लिए नई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज करना – इस आधार पर व्यतिक्रम जमानत के लिए किया गया दावा मान्य नहीं है कि प्रथम अन्वेषण को अस्वीकार किए जाने से स्थानीय पुलिस द्वारा फाइल किया गया आरोप पत्र भी अभिखंडित हो गया था क्योंकि आगे और कार्यवाही करने का अभिप्राय यह नहीं है कि पहले फाइल किए गए आरोप पत्र का परित्याग कर दिया गया है तथा भले ही केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने नई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की हो तो भी उसके द्वारा किया गया अन्वेषण धारा 173(8) के अधीन आगे और अन्वेषण की प्रकृति में आता है ।

विपुल शीतल प्रसाद अग्रवाल बनाम **गुजरात राज्य और एक अन्य** 77

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45)

– धारा 302 [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धारा 3 और 118] – हत्या – हितबद्ध नातेदार साक्षी – विश्वसनीय साक्ष्य – अभिसाक्ष्यों में सारभूत विरोधाभास नहीं होना तथा विश्वसनीय होना – ऐसे महत्वपूर्ण साक्ष्य को अनदेखा नहीं किया जा सकता – साक्षी का परिसाक्ष्य जो विश्वसनीय प्रतीत होता हो, इस आधार पर त्यक्त नहीं किया जा सकता है कि वह मृतक का नातेदार होने के कारण हितबद्ध साक्षी है ।

गजू बनाम **उत्तराखंड राज्य** 17

– धारा 302 [सपठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 156] – हत्या – त्रुटिपूर्ण अन्वेषण – अन्वेषक अधिकारी

पृष्ठ संख्या

द्वारा गलती किया जाना – यदि न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि घटना के साक्षी का परिसाक्ष्य सत्य है, तब न्यायालय उसके आधार पर कार्यवाही करने के लिए स्वतंत्र होगा भले ही मामले में अन्वेषक अधिकारी की भूमिका संदिग्ध हो ।

गजू बनाम **उत्तराखंड राज्य** 17

– धारा 302 और धारा 34 – हत्या – सामान्य आशय – एक से अधिक व्यक्तियों द्वारा अपराध कारित किया जाना – दोषसिद्धि के लिए संपूर्ण परिस्थितियों पर विचार करने की आवश्यकता – सामान्य आशय का निष्कर्ष, अपराध की रीति, अपराध के पूर्व और पश्चात् अभियुक्त का आचरण, आहत व्यक्तियों की क्षतियों की प्रकृति को विचार में लेकर निकाला जाना चाहिए, इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कि क्या अभियुक्तों का ऐसा अपराध कारित करने का आशय था या नहीं, संपूर्ण परिस्थितियों पर विचार किया जाना चाहिए ।

गौडप्पा और अन्य बनाम **कर्नाटक राज्य** 188

– धारा 302 और धारा 34 – हत्या – सामान्य आशय – अपराध सामान्य आशय को अग्रसर करने में कारित किया गया है या नहीं, उस मामले में प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के आधार पर विनिश्चित किया जाता है अभियुक्त अपीलार्थियों के विरुद्ध अपराध साबित होने पर उनकी दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील खारिज की गई ।

गौडप्पा और अन्य बनाम **कर्नाटक राज्य** 188

– धारा 302 और धारा 304 भाग-I – हत्या और हत्या की कोटि में न आने वाला मानववध – अचानक और गंभीर प्रकोपन – आत्म संयम खो बैठना – दुर्भावना का न होना – पूर्व-चिन्तन और हत्या के आशय के बिना अचानक और गंभीर प्रकोपन के परिणामस्वरूप मृत्यु होना

पृष्ठ संख्या

– अपराधी हत्या के बजाय हत्या की कोटि में न आने वाले मानववध का दोषी होगा ।

बुधी सिंह बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य** 142

– धारा 304ख और धारा 498क [सपठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 162(1)] – साक्ष्य में सुधार और लोप – न्यायालय को यह सुनिश्चित करने का कर्तव्य है कि साक्ष्य में किया गया लोप या सुधार किसी विशिष्ट संदर्भ में महत्वपूर्ण और संगत है या नहीं ।

सत्यपाल बनाम **हरियाणा राज्य** 201

– धारा 304ख और धारा 498क [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धारा 113ख और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 313] – दहेज मृत्यु – क्रूरता – वैवाहिक गृह में मृतका की अप्राकृतिक मृत्यु – दहेज की मांग और मृतका के साथ मारपीट – अभियुक्त द्वारा मृतका के हृदय रोगी होने का अभिवाक् किया जाना – चिकित्सक की परीक्षा न कराना – यदि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन कथन में अभियुक्त मृतका के हृदय रोगी होने तथा उसकी प्राकृतिक मृत्यु होने का अभिवाक् करता है, तब ऐसी स्थिति में अभियुक्त की यह जिम्मेदारी होगी कि वह संबंधित चिकित्सक की परीक्षा कराए अन्यथा वह साक्ष्य अधिनियम की धारा 113ख के अधीन उपधारणा का खंडन करने में असफल समझा जाएगा ।

सत्यपाल बनाम **हरियाणा राज्य** 201

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49)

– धारा 13(1)(घ) – लोक सेवक द्वारा आपराधिक अवचार – मंत्री के विरुद्ध विदेश में अपने उपचार के संबंध में अपने कर्मचारियों को साथ भेजने के लिए लोक सेक्टर उपक्रमों को प्रेरित करके उन लोक सेक्टर उपक्रमों को

पृष्ठ संख्या

हानि कारित करने का अभिकथन – चूंकि मंत्री सुसंगत समय पर प्रश्नगत लोक सेक्टर उपक्रमों का भी प्रधान था और संबंधित कर्मचारियों ने मंत्री के विदेश में उपचार के दौरान उसके शासकीय कर्तव्यों का पालन करने में उसे सहायता प्रदान की थी इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि मंत्री ने स्वयं को या अन्य व्यक्तियों को धनीय लाभ पहुंचाने की दृष्टि से अपनी स्थिति का दुरुपयोग किया था ।

सी. के. जाफर शरीफ बनाम **राज्य (केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के माध्यम से)** 91

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59)

– धारा 167 [सपठित कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 (1923 का 8) की धारा 8 और 10] – नियोजन के अनुक्रम में मोटर दुर्घटना – मोटर यान अधिनियम या कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन प्रतिकर का दावा करने का विकल्प – मृतक के नियोजक द्वारा स्वप्रेरणा से कर्मकार प्रतिकर आयुक्त के पास प्रतिकर जमा कराने और आयुक्त द्वारा उसे दावेदारों को संवितरित कर दिए जाने के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता है कि दावेदारों ने कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन कार्यवाही करने के संबंध में अपने विकल्प का प्रयोग कर दिया था इसलिए दावेदार मोटर यान अधिनियम के अधीन दावा याचिका फाइल करने के लिए निर्हकित नहीं हो जाते हैं ।

ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम **दयामावा और अन्य** 167

वक्फ अधिनियम, 1995 (1995 का 43)

– धारा 3 – वक्फ और न्यास के बीच अंतर – वक्फ और न्यास के बीच मूल अंतर को अनदेखा करते हुए अंतरिम आदेश किया जाना – मुस्लिम वक्फ संपत्ति और मुसलमानों द्वारा गठित न्यास में बहुत अंतर है – मूल अंतर

पृष्ठ संख्या

यह है कि वक्फ संपत्ति ईश्वर को समर्पित की जाती है और वाकिफ या समर्पित करने वाले व्यक्ति के पास वक्फ संपत्तियों पर कोई भी हक नहीं रह जाता है – जहां तक न्यास का संबंध है, संपत्तियां ईश्वर में निहित नहीं की जाती हैं – यद्यपि न्यास को पवित्र माना जाता है फिर भी वह न्यास को संस्थापक को न्यास की संपत्ति के हक से तब तक वंचित नहीं करता है जब तक कि वह न्यास या न्यासियों के पक्ष में अपने हक को न त्याग दे ।

महाराष्ट्र राज्य वक्फ बोर्ड बनाम **शेख यूसुफ भाई चावला** 1

– धारा 112, 13 और 14 [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 39, नियम 1] – वक्फ संपत्ति – प्रशासन की शक्ति – वक्फ का गठन अनुचित पाया जाना – जब तक समुचित रूप से बोर्ड का गठन नहीं हो जाता है तब तक पूर्त आयुक्त इंग्लिश न्यास संपत्ति सहित मुस्लिम वक्फ की उन संपत्तियों को शासित करता रहेगा जो मुम्बई लोक न्यास अधिनियम के अधीन पहले ही पूर्त आयुक्त के यहां न्यास संपत्तियों के रूप में रजिस्ट्रीकृत हो चुकी हैं ।

महाराष्ट्र राज्य वक्फ बोर्ड बनाम **शेख यूसुफ भाई चावला** 1

विद्युत अधिनियम, 2003 (2003 का 36)

– धारा 85(5) – राज्य विद्युत विनियामक आयोग – अध्यक्ष की नियुक्ति – इस संबंध में समाधान कर लेने का उत्तरदायित्व चयन समिति का है कि राज्य विद्युत विनियामक बोर्ड के अध्यक्ष/सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिए जिस व्यक्ति के नाम की सिफारिश की गई है उसका ऐसा कोई वित्तीय या अन्य हित नहीं है जिससे अध्यक्ष के रूप में उसके कृत्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है और चयन समिति द्वारा यह कृत्य सरकार को नहीं सौंपा जा सकता है ।

राजेश अवस्थी बनाम **नन्द लाल जायसवाल और अन्य** 42

पृष्ठ संख्या

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 21, 14 और 15 – महिलाओं के साथ छेड़छाड़ – गरिमा और सम्मान के साथ जीने के लिए नागरिक के अधिकार का अतिक्रमण – महिलाओं के साथ छेड़छाड़ करने से विनाशकारी परिणाम होना – सार्वजनिक विधि के अभाव में, महिलाओं के साथ छेड़छाड़ की बुराई को रोकने के लिए न्यायालय द्वारा किए गए निदेशों का पालन करना होगा ।

पुलिस उप महानिरीक्षक बनाम **समुतिराम** 103

– अनुच्छेद 311 – अनुशासनिक कार्यवाही और दांडिक विचारण का साथ-साथ चलना – अपचारी अधिकारी की दांडिक विचारण में दोषमुक्ति – अनुशासनिक कार्यवाही का प्रभावित न होना – इस संबंध में कोई भी सेवा नियम न होने के कारण यदि अपचारी की दोषमुक्ति ससम्मान की जाए तब भी वह इस आधार पर सेवा संबंधी कोई भी फायदा पाने का हकदार नहीं होगा – प्रत्यर्थी की दोषमुक्ति अभियोजन पक्ष द्वारा महत्वपूर्ण साक्षियों की परीक्षा न कराए जाने के कारण हुई है – ऐसी दोषमुक्ति को ससम्मान नहीं कहा जा सकता है – प्रत्यर्थी की पदच्युति के आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है ।

पुलिस उप महानिरीक्षक बनाम **समुतिराम** 103

संपादक-मंडल

श्री प्रेम कुमार मल्होत्रा,
सचिव, विधायी विभाग

श्री एन. एल. मीना,
अपर सचिव (प्रशा.), विधायी विभाग

श्रीमती शारदा जैन, संयुक्त सचिव
एवं विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. बी. एन. मणि, अधिवक्ता,
(पूर्व संपादक) वि.सा.प्र.

डा. प्रीती सक्सेना, प्रोफेसर,
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ

डा. वैभव गोयल, संकायाध्यक्ष
विधि संकाय, स्वामी विवेकानन्द सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ

श्री सुरेन्द्र शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, गुरु गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय, दिल्ली

डा. ऋषि पाल सिंह,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव,
राजभाषा खंड

श्री लालजी प्रसाद,
सेवानिवृत्त प्रधान संपादक,
वि.सा.प्र.

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनूप कुमार वार्ष्णेय,
प्रधान संपादक

श्री महमूद अली खां,
संपादक

श्री जुगल किशोर,
संपादक

डा. मिथिलेश चन्द्र पाण्डेय,
संपादक

सहायक संपादक : सर्वश्री विनोद कुमार आर्य, कमला कान्त, अविनाश शुक्ल और असलम खान

उप-संपादक : सर्वश्री दयाल चन्द ग्रोवर, एम. पी. सिंह और जसवन्त सिंह

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 57

वार्षिक : ₹ 225

© 2013 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 16288/68

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमश: चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ को पाठकों की सुविधा के लिए श्रृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रय के लिए उपलब्ध विधि पाठ्य पुस्तकों की सूची

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	कीमत (₹)
1.	भारत का विधिक इतिहास	श्री सुरेन्द्र मधुकर	410	30.00
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि	डा. एन. पी. परांजपे	371	40.00
3.	वाणिज्य विधि	डा. आर. एल. भट्ट	630	108.00
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धान्त (तृतीय संस्करण)	श्री शर्मन लाल अग्रवाल	357	40.00
5.	अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. सी. खरे	273	115.00
6.	मानव अधिकार	डा. शिवदत्त शर्मा	340	120.00
7.	दण्ड प्रक्रिया संहिता	न्या. महावीर सिंह	840	200.00

पुस्तकों की सूची जिन पर छूट देने की स्वीकृति प्राप्त की गई है ।

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	मूल दर (₹)	संशोधित दर (₹)
1.	संविदा विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रामगोपाल चतुर्वेदी	552	275.00	137.00
2.	श्रम विधि (तृतीय संस्करण)	श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा	658	452.00	226.00
3.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान (तृतीय संस्करण)	डा. सी. के. पारिख अनुवादक डा. एन. के. पटौरिया	969	293.00	146.00
4.	आधुनिक पारिवारिक विधि	श्री राम शरण माथुर	767	429.00	214.00
5.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय)	संकलन संपादन – ब्रह्मदेव चौबे	209	225.00	112.00
6.	हिन्दू विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रवीन्द्र नाथ	617	425.00	212.00
7.	भारतीय दंड संहिता	डा. रवीन्द्र नाथ	696	741.00	370.00
8.	भारतीय भागीदारी अधिनियम (द्वितीय संस्करण)	श्री माधव प्रसाद वाशिष्ठ	272	165.00	82.00
9.	प्रशासनिक विधि (तृतीय संस्करण)	डा. कैलाश चन्द्र जोशी	635	200.00	100.00
10.	विधिक उपचार (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. के. कपूर	414	311.00	155.00
11.	विधि शास्त्र	डा. शिवदत्त शर्मा	501	580.00	377.00

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग,
नई दिल्ली-110001

तुलनात्मक सारणी

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

[2013] 4 उम. नि. प.

अक्तूबर - दिसम्बर, 2013

क्र. सं.	निर्णय का नाम व तारीख	उम. नि. प.		ए. आई. आर. (एस. सी.)		एस. सी. सी.	
1	2	3		4		5	
1.	महाराष्ट्र राज्य वक्फ बोर्ड **बनाम** शेख यूसुफ भाई चावला (11 मई, 2012)	[2013] 4	1	2012	2362	(2012) 6	328
2.	गजू **बनाम** उत्तराखंड राज्य (13 सितंबर, 2012)		17		–	9	532
3.	राजेश अवस्थी **बनाम** नन्द लाल जायसवाल और अन्य (19 अक्तूबर, 2012)		42	2013	78		–
4.	विपुल शीतल प्रसाद अग्रवाल **बनाम** गुजरात राज्य और एक अन्य (6 नवम्बर, 2012)		77		73	(2013) 1	197
5.	सी. के. जाफर शरीफ **बनाम** राज्य (केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के माध्यम से) (9 नवम्बर, 2012)		91		48	1	205

1	2	3			4		5	
6.	पुलिस उप महानिरीक्षक **बनाम** समुतिराम (30 नवम्बर, 2012)	[2013] 4	103		–		(2013) 1	598
7.	देवकी पंझीयारा **बनाम** शशि भूषण नारायण आज़ाद और एक अन्य (12 दिसम्बर, 2012)		128	2013	346		2	137
8.	बुधी सिंह **बनाम** हिमाचल प्रदेश राज्य (13 दिसम्बर, 2012)		142		–			–
9.	ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड **बनाम** दयामावा और अन्य (5 फरवरी, 2013)		167		–			–
10.	गौडप्पा और अन्य **बनाम** कर्नाटक राज्य (11 मार्च, 2013)		188		1595		3	675
11.	सत्यपाल **बनाम** हरियाणा राज्य (13 मार्च, 2013)		201		–			–

[2103] 4 उम. नि. प. 1

महाराष्ट्र राज्य वक्फ बोर्ड

बनाम

शेख यूसुफ भाई चावला

11 मई, 2012

न्यायमूर्ति अल्तमस कबीर, न्यायमूर्ति चेलामेश्वर और न्यायमूर्ति रंजन गोगोई

वक्फ अधिनियम, 1995 (1995 का 43) – धारा 112, 13 और 14 [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 39, नियम 1] – वक्फ संपत्ति – प्रशासन की शक्ति – वक्फ का गठन अनुचित पाया जाना – जब तक समुचित रूप से बोर्ड का गठन नहीं हो जाता है तब तक पूर्त आयुक्त इंग्लिश न्यास संपत्ति सहित मुस्लिम वक्फ की उन संपत्तियों को शासित करता रहेगा जो मुम्बई लोक न्यास अधिनियम के अधीन पहले ही पूर्त आयुक्त के यहां न्यास संपत्तियों के रूप में रजिस्ट्रीकृत हो चुकी हैं ।

वक्फ अधिनियम, 1995 – धारा 3 – वक्फ और न्यास के बीच अंतर – वक्फ और न्यास के बीच मूल अंतर को अनदेखा करते हुए अंतरिम आदेश किया जाना – मुस्लिम वक्फ संपत्ति और मुसलमानों द्वारा गठित न्यास में बहुत अंतर है – मूल अंतर यह है कि वक्फ संपत्ति ईश्वर को समर्पित की जाती है और वाकिफ या समर्पित करने वाले व्यक्ति के पास वक्फ संपत्तियों पर कोई भी हक नहीं रह जाता है – जहां तक न्यास का संबंध है, संपत्तियां ईश्वर में निहित नहीं की जाती हैं – यद्यपि न्यास को पवित्र माना जाता है फिर भी वह न्यास को संस्थापक को न्यास की संपत्ति के हक से तब तक वंचित नहीं करता है जब तक कि वह न्यास या न्यासियों के पक्ष में अपने हक को न त्याग दे ।

इस मामले में, विभिन्न मुस्लिम समुदाय के लोगों ने मुम्बई उच्च न्यायालय के समक्ष तीन रिट याचिकाएं अर्थात् 2004 की रिट याचिका सं. 2906, 2001 की रिट याचिका सं. 899 और 2011 की रिट याचिका

सं. 357 फाइल की । तीनों याचिकाओं में मुम्बई उच्च न्यायालय ने तारीख 21 सितम्बर, 2011 का एक ही निर्णय पारित किया । उच्च न्यायालय के इस निर्णय से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय के समक्ष महाराष्ट्र राज्य और अन्य पक्षकारों द्वारा पांच विशेष इजाजत याचिकाएं अर्थात् 2011 की विशेष इजाजत याचिका सं. 31228-31290, 32129-32131, 32636, 35196 और 35198 फाइल की गईं । इन अपीलों का एक साथ निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि विशेष इजाजत याचिकाओं में याचियों की शिकायत, उच्च न्यायालय के आक्षेपित आदेश के आधार पर महाराष्ट्र राज्य में पूर्त आयुक्त में प्रबंधन की शक्तियों के निहित किए जाने और मुस्लिम वक्फ संपदा के पर्यवेक्षण के संबंध में है, निस्संदेह, वक्फ बोर्ड, वक्फ अधिनियम, 1995 के उपबंधों के अधीन गठित किया गया है किन्तु उपर्युक्त अधिनियम की धारा 13 और 14 में यथापरिकल्पित पूर्ण समर्थन के साथ नहीं । कारण कुछ भी हो वर्तमान में, तथ्यात्मक स्थिति है कि महाराष्ट्र राज्य में कार्य करने वाला समुचित रूप से गठित किया हुआ कोई वक्फ बोर्ड नहीं है । साथ ही, महाराष्ट्र में वक्फ प्रशासन को शून्य नहीं रखा जा सकता है । मुम्बई उच्च न्यायालय ने वही किया जो उसने यह सुनिश्चित करने के लिए उचित समझा कि महाराष्ट्र राज्य में वक्फ संपत्तियों का प्रशासन शून्य नहीं है और यह निदेश दिया कि जब तक समुचित रूप से बोर्ड का गठन नहीं हो जाता है तब तक पूर्त आयुक्त इंग्लिश न्यास संपत्ति सहित मुस्लिम वक्फ की उन संपत्तियों को शासित करता रहेगा जो मुम्बई लोक न्यास अधिनियम के अधीन पहले ही पूर्त आयुक्त के यहां न्यास संपत्तियों के रूप में रजिस्ट्रीकृत हो चुकी है । स्वाभाविक परिणाम के रूप में विकृत वक्फ बोर्ड द्वारा प्रकाशित वक्फ संपत्ति की सूची भी मुम्बई उच्च न्यायालय द्वारा अपास्त कर दी गई । विचार के लिए यह प्रश्न है कि क्या मुम्बई उच्च न्यायालय को रिट अधिकारिता में ऐसे आदेश पारित करने की अधिकारिता है या नहीं विशेषकर वक्फ अधिनियम, 1995 की धारा 112 और उपधारा (3) के उपबंधों को दृष्टिगत करते हुए पूर्त आयुक्त को सभी वक्फ संपत्तियों का प्रबंधन निहित करने की अधिकारिता है या नहीं । (पैरा 27)

यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता है कि मुम्बई लोक न्यास अधिनियम एक समवर्ती विधि है, अतः निरसित मानी जाएगी, यह भी नहीं कहा जा सकता है कि यह विधि वक्फ की केवल उन संपत्तियों को लागू होगी जो

पूर्त कार्यों की कोटि में नहीं आते हैं । मुस्लिम वक्फ संपत्ति और मुसलमानों द्वारा गठित न्यास में बहुत अंतर है । मूल अंतर यह है कि वक्फ संपत्ति ईश्वर को समर्पित की जाती है और वाकिफ (वक्फ करने वाले व्यक्ति) या समर्पित करने वाले व्यक्ति के पास वक्फ संपत्तियों पर कोई भी हक नहीं रह जाता है । जहां तक न्यास का संबंध है, संपत्तियां ईश्वर में निहित नहीं की जाती हैं । ऐसे न्यासों का उद्देश्य पूर्व संस्थाओं जैसे अस्पताल, शरणालय, अनाथालय और पूर्त डिस्पेंसरियों को चलाना भी होता है, यद्यपि न्यास को पवित्र माना जाता है फिर भी वह न्यास संस्थापक को न्यास की संपत्ति के हक से तब तक वंचित नहीं करता है जब तक कि वह न्यास या न्यासियों के पक्ष में अपने हक को त्याग न दे । कई बार ऐसा होता है कि लोक न्यास और वक्फ के बीच बहुत कम अंतर होता है, किन्तु सदैव मुख्य अंतर यह होता है कि वक्फ संपत्ति ईश्वर में निहित होती है और न्यास संपत्ति ईश्वर में निहित नहीं होती है और न्यास विलेख के निबंधनों में न्यासी न्यास और न्यास के हिताधिकारियों के फायदों के संबंध में कार्यवाही करने के हकदार हैं । वर्तमान मामले में, ऐसा प्रतीत होता है कि न्यास और वक्फ के बीच अंतर को अनदेखा किया गया है और उच्च न्यायालय ने इस तथ्य पर विचार किए बिना आदेश पारित किया है और आम तौर पर पूर्त आयुक्त को वक्फ संपत्तियों का प्रबंधन करने की कोई भी अधिकारिता नहीं होगी । न्यायालय की राय में, इन परिस्थितियों में इस न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान यथास्थिति बनाए रखना और वक्फ संपत्ति के प्रबंधन में सभी को वक्फ संपत्ति का अन्य संक्रांत करने और/या उसका विलंगम करने से रोकना भी सभी के हित में होगा । अपने निर्णय के लागू किए जाने पर रोक लगाने वाले उच्च न्यायालय के आदेश द्वारा वे अंतरिम आदेश प्रवर्तित किए गए हैं जिनसे ऐसी रोक निरर्थक हो जाती है । उक्त रोक आदेश इन कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान अपनी वर्तमान स्थिति में नहीं बना रह सकता है । (पैरा 28, 29 और 30)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : **2011 की विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 31288-31290 [इसके साथ 2011 की विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 31228-31290, 32129-32131, 32636, 35196 और 35198 की**

भी सुनवाई की गई]

2004 की रिट याचिका सं. 2906 और 2011 की रिट याचिका सं. 899 और 357 में मुंबई उच्च न्यायालय के तारीख 21 सितंबर, 2011 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

पक्षकारों की ओर से सर्वश्री आर. एफ. नरीमन (महासालिसिटर), रणजीत कुमार, के. के. वेनुगोपाल, विनोद ए. बोबडे, पी. पी. राव, यूसुफ हातिम मुछाल, डा. राजीव धवन (वरिष्ठ अधिवक्ता) सुधान्शु एस. चौधरी, जावेद शेख, सुनील उपाध्याय, संजय वी. खर्डे, शिवाजी एम. जाधव, सचिन जे. पाटिल, सुश्री आशा गोपालन नायर, जावेद आर. शेख, मुहम्मद इरशाद हनीफ, मुहम्मद अकील सिद्दीकी, शकील अहमद सैय्यद, शोएबुद्दीन, मुहम्मद परवेज दबास, मूनिस अब्बासी, हुजैफा ए. अहमदी, एजाज मकबूल, सुश्री साक्षी बंगा, मृगंक प्रभाकर, सुश्री अपेक्षा शरण, सुश्री गरिमा कपूर, सगीर ए. खान, हसनैन काजी, कवीन गुलाटी, सुश्री रश्मि सिंह, अनुपम मिश्रा, टी महिपाल, अमन वछेर, आशुतोष दूबे, धीरज, लव के. शर्मा, सुश्री वृति आनंद, पी. एन. पूरी, प्रवीण कुमार, विनय नवारे, आभा आर. शर्मा, सुश्री सना यूसुफ बौगवाला, चिनमोय खलाडकर, वी. पी. दूबे, डी. पी. सालि और विमल चन्द एस. दवे

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अल्तमस कबीर ने दिया ।

न्या. कबीर – अनेक विशेष इजाजत याचिकाएं महाराष्ट्र राज्य और अन्य पक्षकारों द्वारा फाइल की गई हैं । महाराष्ट्र राज्य वक्फ बोर्ड द्वारा 2011 की विशेष इजाजत याचिका सं. 31228-31290, 32129-32131 और 32636 फाइल की गई हैं, 2011 की विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 35196 और 35198 जमायत एजूकेशनल एंड वेलफेयर मुस्लिम माइनोरिटी एजूकेशन सोसाइटी और महाराष्ट्र मुस्लिम लॉयर्स फोरम द्वारा फाइल की गई हैं ।

2. विशेष इजाजत याचिकाएं, 2004 की रिट याचिका सं. 2906, 2011 की रिट याचिका सं. 357 और 2011 की रिट याचिका (एल.) सं. 899 में मुंबई उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए तारीख 21 सितंबर, 2011 के निर्णय और अंतिम आदेश के विरुद्ध फाइल की गई हैं । उपर्युक्त रिट याचिकाओं में उच्च न्यायालय का आक्षेपित निर्णय महाराष्ट्र राज्य वक्फ बोर्ड के गठन को चुनौती दिए जाने का परिणाम है । जैसा कि उच्च न्यायालय द्वारा विचार किया गया है, सभी रिट याचिकाओं और उन से संबंधित विशेष इजाजत याचिकाओं की विषय-वस्तु महाराष्ट्र राज्य वक्फ बोर्ड के निगमन और इस्लाम धर्म पर चलने वाले किंतु भिन्न समुदायों के लोगों द्वारा बनाए गए वक्फ पर पड़ने वाले उसके प्रभाव के बारे में है ।

3. 2004 की रिट याचिका सं. 2906 में के याची मुस्लिम हैं जिनका संबंध इस्लाम धर्म के शिया फातमी इस्माइली तैयबा समुदाय से हैं जिन्हें शिया मुस्लिम कहा जाता है । उक्त रिट याचिका में याची सं. 1 से 3 "सर आदमजी पीरभाई सेनेटोरियम" के न्यासी हैं और इस न्यास की स्थापना 1927 के वाद सं. 1560 में पारित किए गए मुंबई उच्च न्यायालय के तारीख 16 जून, 1931 के आदेश द्वारा नियत की गई योजना द्वारा की गई है । उक्त न्यास लोक न्यास के रूप में मुंबई लोक न्यास अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत किया गया है । याची सं. 4 और 5 "अंजुमन-ए-नल-बाजार छाबड़ी बाजार न्याज हुसैन चैरिटेबल न्यास" के न्यासी हैं, और यह न्यास भी मुंबई न्यास अधिनियम के अधीन लोक न्यास के रूप में रजिस्ट्रीकृत है । 2011 की रिट याचिका सं. 899 में याची दाउदी बोहरा मुस्लिम हैं और उन्होंने मुंबई लोक न्यास अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत नूरभाई जीवनजी मोरिशवाला चैरिटी न्यास के न्यासी होने का दावा किया है । 2011 की रिट याचिका (एल.) सं. 357 में के याची शिया फातमी इस्माइली तैयबा समुदाय के मुस्लिम हैं और वे भी सर आदमजी पीरभाई सेनेटोरियम के न्यासी हैं जिसे इसमें इसके ऊपर निर्दिष्ट किया गया है ।

2011 की विशेष इजाजत याचिका (सी.) सं. 35196 में का याची सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 के अधीन एक रजिस्ट्रीकृत सोसाइटी है । न्यास के सभी सदस्य इस्लाम धर्म के मानने वाले हैं और वक्फ अधिनियम, 1995 की धारा 3(ट) के उपबंधों के अधीन प्रश्नगत वक्फ के कार्यकलापों के साथ हितबद्ध हैं । इसी प्रकार, 2011 की विशेष इजाजत याचिका (सी.) सं. 35198 में के याची मुस्लिम अधिवक्ताओं का एक दल है जिन्होंने एक फोरम का गठन किया है और ये व्यक्ति भी वक्फ अधिनियम, 1995 की धारा 3(ट) के निबंधनों में वक्फ संपत्ति के प्रबंधन में हितबद्ध हैं ।

4. इन पांचों रिट याचिकाओं में रिट याचियों की शिकायत एक जैसी है । 2004 की रिट याचिका सं. 2906 में के याचियों ने महाराष्ट्र सरकार द्वारा जारी तारीख 4 जनवरी, 2002 की अधिसूचना को चुनौती दी है और न्यायालय से यह भी ईप्सा की है कि वह राज्य सरकार को यह निदेश दे कि वह महाराष्ट्र राज्य में वक्फ संपत्ति का नए सिरे से सर्वेक्षण करेगी । उन्होंने महाराष्ट्र राज्य वक्फ बोर्ड द्वारा जारी की गई तारीख 13 नवंबर, 2003 की उस अधिसूचना को भी चुनौती दी है जिसके द्वारा महाराष्ट्र राज्य में वक्फ संपत्ति की सूची प्रकाशित की है ।

5. 2001 की रिट याचिका सं. 899 में याचियों ने महाराष्ट्र राज्य के चैरिटी आयुक्त द्वारा जारी किए गए तारीख 24 जुलाई, 2002 के उस परिपत्र को चुनौती दी है जिसमें यह कथन किया गया है कि वक्फ अधिनियम, 1995 की धारा 43 के उपबंधों को दृष्टिगत करते हुए ऐसी वक्फ सम्पत्ति जो लोक न्यास के रूप में रजिस्ट्रीकृत की गई है, उसको लोक न्यास अधिनियम के उपबंध लागू नहीं होंगे । रिट याचियों का यह पक्षकथन है कि चूंकि तारीख 4 जनवरी, 2002 की अधिसूचना द्वारा की गई महाराष्ट्र राज्य वक्फ बोर्ड का स्थापन स्वयं में अविधिमान्य है, इसलिए उन पर मुंबई लोक न्यास अधिनियम के उपबंध ही लागू होंगे ।

6. 2011 की रिट याचिका सं. 357 में के याचियों ने तारीख 20 अक्तूबर, 2010 को महाराष्ट्र राज्य में वक्फ सम्पत्ति का पुनः सर्वेक्षण किए जाने के लिए महाराष्ट्र राज्य द्वारा जारी की गई अधिसूचना को चुनौती दी है । उन्होंने यह निदेश दिए जाने की भी ईप्सा की है कि चैरिटी आयुक्त को उस न्यास की कार्यवाही का अधीक्षण करना चाहिए जिसके वे न्यासी हैं ।

7. वक्फ अधिनियम, 1995 के पश्चात्, जो 1 जनवरी, 1996 को प्रवृत्त होकर अधिनियमित किया गया था, राज्य सरकार ने तारीख 1 दिसंबर, 1997 को वक्फ अधिनियम, 1995 की धारा 4 की उपधारा (1) के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए अधिसूचना जारी की जिसके द्वारा राज्य सरकार ने :–

(क) बंदोबस्त आयुक्त और भूमि अभिलेख निदेशक, महाराष्ट्र राज्य, पुणे को वक्फ संपत्ति का सर्वेक्षण आयुक्त नियुक्त किया ; और

(ख) कोंकण, नासिक, पुणे, नागपुर, अमरावती और औरंगाबाद राजस्व उपखंड के अपर आयुक्तों को महाराष्ट्र राज्य में 1 जनवरी, 1996 को विद्यमान वक्फ संपत्ति का सर्वेक्षण किए जाने के प्रयोजनार्थ अपर सर्वेक्षण आयुक्त नियुक्त किया ।

8. तारीख 4 जनवरी, 2002 को महाराष्ट्र सरकार ने तारीख 4 जनवरी, 2002 की अधिसूचना द्वारा, वक्फ अधिनियम, 1995 की धारा 14 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, 'महाराष्ट्र राज्य वक्फ बोर्ड' नामक एक बोर्ड की स्थापना की जिसका मुख्यालय औरंगाबाद रखा गया । सरकार ने चार व्यक्तियों को राज्य बोर्ड के सदस्यों के रूप में नामनिर्दिष्ट किया जिनके नाम इस प्रकार हैं :–

(क) श्री खान यूसुफ सरवर, संसद् सदस्य (राज्य सभा) ;

(ख) श्रीमती शबाना आजमी, संसद् सदस्य (राज्य सभा) ;

(ग) राज्य बार कौंसिल के मुस्लिम भूतपूर्व सदस्य, श्री हारुन आदम सोलकर ;

(घ) मुस्लिम संगठन के सदस्य, श्री चांद पाशा इनामदार ।

इस प्रकार, उपर्युक्त अधिसूचना द्वारा संपूर्ण महाराष्ट्र राज्य के लिए एक वक्फ बोर्ड की स्थापना की गई जिसका मुख्यालय औरंगाबाद रखा गया और अधिसूचना में उक्त बोर्ड के सदस्यों के रूप में चार व्यक्तियों को नामनिर्दिष्ट किया गया ।

9. तारीख 1 दिसंबर, 1997 की अधिसूचना के अनुसरण में सर्वेक्षण करने के लिए नियुक्त किए गए अधिकारियों ने तारीख 31 जनवरी, 2002 को राज्य सरकार के समक्ष रिपोर्ट प्रस्तुत की । इसके पश्चात्, अन्य

सदस्यों को विभिन्न अधिसूचनाओं द्वारा वक्फ बोर्ड में नियुक्त किया गया । तारीख 24 जुलाई, 2003 को महाराष्ट्र राज्य के पूर्त आयुक्त ने एक परिपत्र जारी किया जिसमें उसने अपने कार्यालय को यह निदेश दिया कि मुंबई लोक न्यास अधिनियम के अधीन शक्तियों का प्रयोग न किया जाए और न ही किसी भी मुस्लिम लोक न्यास के मामले में कार्यवाही की जाए । उक्त परिपत्र में यह उल्लेख किया गया कि वक्फ अधिनियम, 1995 की धारा 43 के अनुसार लोक न्यास के रूप में रजिस्ट्रीकृत वक्फ संपत्ति मुंबई लोक न्यास अधिनियम के अधीन प्रशासित नहीं की जानी चाहिए और न ही उसको यह अधिनियम लागू किया जाना चाहिए । बोर्ड की स्थापना को चुनौती देते हुए अनेक रिट याचिकाएं फाइल की गईं और उनमें बोर्ड के संविधान और उसके सदस्यों के रूप में अनेक व्यक्तियों की नियुक्ति को चुनौती दी गई । पूर्त आयुक्त द्वारा जारी किए गए परिपत्र को चुनौती देते हुए न्यायालय में आक्षेप भी फाइल किए गए । तारीख 13 नवंबर, 2003 को वक्फ बोर्ड ने महाराष्ट्र में मुस्लिम लोक न्यास मानते हुए वक्फ संपत्तियों और महाराष्ट्र के उपनगरीय जिलों में की वक्फ संपत्ति की एक सूची प्रकाशित की ।

10. वक्फ बोर्ड द्वारा तैयार की गई वक्फ संपत्ति की सूची को चुनौती देते हुए अनेक रिट याचिकाएं फाइल की गईं जिनकी सुनवाई मुंबई उच्च न्यायालय द्वारा की गई और उच्च न्यायालय ने तारीख 4 जनवरी, 2002 की अधिसूचना अपास्त की साथ ही तैयार की गई वक्फ संपत्ति की सूची भी अपास्त की गई, जो तारीख 13 नवंबर, 2003 को महाराष्ट्र राज्य वक्फ बोर्ड द्वारा प्रकाशित की गई थी । तारीख 20 अक्तूबर, 2010 की अधिसूचना द्वारा नियुक्त किए गए सर्वेक्षण अधिकारियों को यह निदेश दिया गया कि वे याचियों और मुस्लिम वक्फ संपत्ति से संबंधित ऐसे ही अन्य व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत किए गए अभ्यावेदनों, यदि कोई हैं, तथा पूर्त आयुक्त की अध्यक्षता के अंतर्गत राज्य द्वारा गठित समिति के अनुसार तैयार की गई सूची पर विचार करें । सर्वेक्षण अधिकारियों को यह भी विकल्प दिया गया कि वे वक्फ संपत्ति की किसी भी सूची पर विचार कर सकते हैं यदि वह 1954 के अधिनियम के अधीन तैयार की गई है । महत्वपूर्ण निदेश जो विशेष इजाजत याचिका फाइल करने वालों पर प्रतिकूल प्रभाव डालता प्रतीत होता है, यह है कि जब तक कि नए बोर्ड या बोर्डों का निगमन वक्फ अधिनियम, 1995 के अधीन न हो जाए और जब तक बोर्ड वक्फ अधिनियम के उपबंधों के अनुसरण में कार्य न करने लगे, तब तक मुंबई

लोक न्यास अधिनियम ऐसे मुस्लिम लोक न्यासों को इस रूप में लागू होगा मानो वे मुंबई लोक न्यास अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत किए गए हों । उच्च न्यायालय ने यह स्पष्ट किया है कि यद्यपि, तारीख 4 जनवरी, 2002 की अधिसूचना अपास्त कर दी गई है, फिर भी तारीख 4 जनवरी, 2002 की अधिसूचना के अनुसार गठित वक्फ बोर्ड द्वारा की गई किसी भी कार्रवाई को और न ही पारित किए गए किसी भी आदेश को चुनौती दी गई है और न ही उक्त आदेश द्वारा उसे अपास्त किया गया है । आक्षेपित आदेश द्वारा महाराष्ट्र राज्य को ऐसे अंतरिम बंदोबस्त करने के, जैसा परामर्श दिया जाए, कदम उठाने की स्वतंत्रता दी गई है ताकि वक्फ संपत्तियों पर नियंत्रण रखा जा सके और अधीक्षण किया जा सके तथा वक्फ अधिनियम के अधीन अन्य संबंधित पहलुओं पर भी विचार किया जा सके । यह भी अनुबंध किया गया है कि लंबित विवाद और मुकदमों सहित विनिश्चय और/या पहले से की गई कार्रवाई को वक्फ अधिनियम, 1995 लागू होगा ।

11. जहां तक 2011 की रिट याचिका (एल.) सं. 357 का संबंध है, खंड न्यायपीठ ने यह स्पष्ट किया है कि प्रश्नगत निर्णय द्वारा तारीख 13 दिसंबर, 2004 की वक्फ संपत्ति की सूची के संबंध में दावा किए गए अनुतोषों पर विचार नहीं किया गया है । तदनुसार, याचियों को यह स्वतंत्रता दी गई है कि या तो वे ऐसे अनुतोष का दावा करने के लिए नए सिरे से याचिका फाइल कर सकते हैं या अन्य लंबित मामलों में उक्त अनुतोष के लिए दावा कर सकते हैं ।

12. मुंबई उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा ये ही निदेश जारी किए गए हैं जिनके आधार पर वर्तमान विशेष इजाजत याचिकाएं फाइल की गई हैं ।

13. विवाद का एक महत्वपूर्ण पहलू मुस्लिम विधि के अधीन वक्फ संपत्ति और मुस्लिम धर्म मानने वाले व्यक्तियों द्वारा न्यास का सृजन है जिसे उपांतरित रूप में अंतरिम आदेश के बने रहने के संबंध में सुनवाई के दौरान अनदेखा कर दिया गया था, जो वक्फ संपत्ति की प्रकृति का नहीं था अपितु इंग्लिश न्यास के प्रकृति का था ।

14. वक्फ अधिनियम, 1995 के अधिनियमिति के पूर्व केंद्रीय वक्फ अधिनियम, 1954 प्रवृत्त था किंतु कुछ राज्यों को जैसे उत्तर प्रदेश, पश्चिमी बंगाल, गुजरात और महाराष्ट्र के कुछ भाग और पूर्वोत्तर के कुछ राज्यों को

लागू नहीं होता था जिनके अपने विशेष अधिनियम हैं । उक्त राज्यों को उनके अपने विशेष कानून लागू होते रहे जिनमें अपने-अपने राज्यों में वक्फ संपत्ति के प्रबंध के लिए उपबंध किए गए हैं । विभिन्न राज्यों में वक्फ संपत्ति से संबंधित विधि की असमानता को दूर करने के लिए केंद्रीय सरकार ने देश में सभी वक्फ संपत्तियों को लागू होने के लिए एक समान विधि अधिनियमित की जिसके परिणामस्वरूप वक्फ अधिनियम, 1995 अधिनियमित किया गया जिसके द्वारा किसी भी प्रक्रम पर प्रवृत्त सभी विधियां, जो उक्त अधिनियम के समवर्ती थीं निरसित कर दी गईं ।

15. उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश को इन अनेक विशेष याचिकाओं में चुनौती दिए जाने पर जब मामलों की सुनवाई की गई हमने तारीख 29 नवंबर, 2011 का विभिन्न विशेष इजाजत याचिकाओं में नोटिस जारी किए जाने का निदेश दिया और इसी दौरान यह भी निदेश दिया कि तारीख 21 सितंबर, 2011 को उच्च न्यायालय द्वारा मंजूर की गई रोक उसके निर्णय के संबंध में प्रभावी रहेगी ।

16. इसके पश्चात्, इन मामलों पर यह जानने के लिए विचार किया गया है कि क्या रोक का ऐसा अंतरिम आदेश बने रहना चाहिए या नहीं किंतु उपांतरित रीति में जिसका यह आधार है कि अंतिम निर्णय के कार्यान्वयन पर रोक लगाकर उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए अंतरिम आदेश पुनरुज्जीवित हो गए हैं, जिसके द्वारा रोक का आदेश अर्थहीन हो जाता है ।

17. महाराष्ट्र राज्य द्वारा फाइल की गई तीन विशेष इजाजत याचिकाओं अर्थात् 2011 की विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 32129-32131 पर सबसे पहले विचार किया गया ।

18. महाराष्ट्र राज्य की ओर से हाजिर होते हुए भारत के विद्वान् महासालिसिटर श्री रोहिंगटन नरिमन ने यह दलील दी है कि इस विनिश्चय पर विचार किए जाने के लिए यह ध्यान देना अपेक्षित है कि यथापूर्व स्थिति जो वक्फ अधिनियम, 1995 के प्रभावी होने के पूर्व बनी हुई थी, उसे बनाए रखने के लिए अंतरिम व्यादेश के मंजूरी के लिए प्रथमदृष्ट्या मामला बनता है या नहीं । श्री नरिमन ने यह दलील दी है कि वक्फ अधिनियम, 1954 और मुंबई लोक न्यास अधिनियम के उपबंध वक्फ संपत्तियों के संबंध में 1995 के अधिनियम की धारा 112 के अंतर्गत निरसित हो गए हैं । श्री नरिमन यह दलील दी है कि 1995 के अधिनियम की धारा 112 जो निरसन और व्यावृत्ति के बारे में है, से स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित होता है कि यदि किसी भी राज्य

में अधिनियम के प्रारंभ के तत्काल पूर्व कोई ऐसी विधि उस राज्य में प्रवृत्त थी जो 1995 की अधिनियम के साथ समवर्ती थी, तब वह समवर्ती विधि निरस्त मानी जाएगी । विद्वान् अपर महासालिसिटर ने यह दलील दी है कि वर्तमान मामले में वक्फ अधिनियम, 1995 के समवर्ती विधि जब प्रवृत्त हुई थी तब महाराष्ट्र वक्फ अधिनियम और मुंबई लोक न्यास अधिनियम के उपबंध प्रवृत्त थे जो 1995 के अधिनियम की धारा 112(3) के उपबंधों के आधार पर निष्प्रभावी कर दिए गए । उक्त दोनों उपबंधों के निरसन के पश्चात् 1995 के अधिनियम के अधीन स्थापित वक्फ बोर्ड का यह कर्तव्य था कि वह वक्फ संपत्तियों के प्रबंधन की देखरेख करे और उच्च न्यायालय का वह निर्णय जिसके द्वारा बोर्ड की स्थापना अपास्त की गई थी, ऐसी संपत्तियों के पूर्त आयुक्त के प्राधिकार बहाल नहीं की जा सकती । वास्तव में, वक्फ अधिनियम, 1995 के प्रख्यापन के पश्चात्, पूर्त आयुक्त का मुस्लिम वक्फ संपत्तियों पर कोई भी नियंत्रण नहीं रह जाता है, भले ही वे संपत्तियां लोक न्यास के रूप में पूर्त आयुक्त के यहां रजिस्ट्रीकृत क्यों न की गई हो । श्री नरिमन ने यह दलील दी है कि इस अंतरिम प्रक्रम पर केवल प्रथमदृष्ट्या दृष्टिकोण ही अपनाया जाता है कि क्या विशेष इजाजत याचिकाओं की सुनवाई के लंबित रहने के दौरान इस न्यायालय द्वारा पारित किया गया अंतरिम आदेश बना रहना चाहिए या नहीं ।

19. इसके प्रतिकूल वरिष्ठ अधिवक्ता डा. राजीव धवन और अन्य विद्वान् काउंसेलों ने, जो कुछ प्रत्यर्थियों की ओर से हाजिर हुए हैं, यह दलील दी है कि विद्वान् महासालिसिटर ने सुविधा और असुविधा के संतुलन के संबंध में कोई भी दलील नहीं दी है और उन्होंने केवल इसी प्रश्न पर विचार किया है कि क्या ऐसे अंतरिम व्यादेश के बने रहने के लिए प्रथमदृष्ट्या मामला बनता है या नहीं । विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि इस मामले पर पहले ही विचार किया जा चुका है और तारीख 30 नवंबर, 2011 को पारित किया गया आदेश, जिसके द्वारा तारीख 21 सितंबर, 2011 को मुंबई उच्च न्यायालय द्वारा रोक मंजूर की गई थी, सम्मति पर आधारित है । इसके अतिरिक्त, इस न्यायालय के समक्ष तीन पक्षकार प्रस्तुत हुए हैं । यह भी दलील दी गई है कि यद्यपि अनेक विक्रय संव्यवहार किए गए हैं जिन पर पूर्त आयुक्त द्वारा विचार किया जाना था केवल तीन पक्षकार न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत हुए हैं और ऐसे पक्षकार को, जो इन मामलों में पारित किए गए किसी भी आदेश द्वारा संभवतः प्रभावित हो सकते हैं, सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए, विशेषकर इस कारण से कि अंतरिम अनुतोष के माध्यम से जिस प्रार्थना की ईप्सा की गई है, वास्तव में वह स्वयं में मुख्य अनुतोष है । यह दलील दी गई है

कि तारीख 4 जनवरी, 2002 तक जब 1995 के अधिनियम के अधीन बोर्ड का गठन किया गया था, तब तक कोई भी वक्फ बोर्ड नहीं बनाया गया था और पश्चात्वर्ती प्रक्रम पर बनाया गया बोर्ड पूर्णतया अवैध है ।

20. प्रत्यर्थियों की ओर से दी गई दलील का मुख्य उद्देश्य यह है कि पूर्त आयुक्त द्वारा एक परिपत्र जारी किया गया जिसके द्वारा मुसलमानों द्वारा बनाए गए न्यास पर पूर्त आयुक्त का प्राधिकार समाप्त हो जाता है और इस परिपत्र को वक्फ अधिनियम के उपबंध लागू नहीं होंगे क्योंकि वक्फ अधिनियम, 1995 केवल वक्फ संपत्तियों को ही लागू होगा और इसीलिए उसको वक्फ की ऐसी संपत्तियों के संबंध में अधिकारिता नहीं दी गई है । यह भी दलील दी गई है कि द्विविभाजन समिति वक्फ संपत्ति को न्यास और शिया और सुन्नी वक्फ से अलग करने के लिए बनाई गई थी जो कि एक विधियेत्तर समिति है, जो वक्फ अधिनियम के उपबंधों के अधीन अनुध्यात नहीं है । डा. धवन के अनुसार वक्फ संपत्ति का शिया या सुन्नी के रूप में किया गया वर्गीकरण या ऐसा कोई भी विवाद कि वक्फ संपत्ति विद्यमान है या नहीं, वक्फ अधिनियम, 1995 की धारा 6 और 7 के अधीन वक्फ ट्रायब्युनल द्वारा या वक्फ अधिनियम, 1995 की धारा 40 के अधीन वक्फ बोर्ड द्वारा विनिश्चित किया जा सकता है ।

21. तारीख 4 सितंबर, 2008 को महाराष्ट्र राज्य ने बोर्ड के 7 सदस्यों को नियुक्त किए जाने की अधिसूचना जारी की किंतु उक्त अधिसूचना मुंबई उच्च न्यायालय द्वारा अभिखंडित कर दी गई और वक्फ बोर्ड की शक्ति को कम करते हुए सदस्यों की संख्या 4 कर दी गई । ऐसा तारीख 23 फरवरी, 2008 को वक्फ बोर्ड द्वारा जारी अधिसूचना के आधार पर किया गया और इस अधिसूचना द्वारा तारीख 5 मई, 2005 की अधिसूचना के शुद्धि पत्र को रद्द करते हुए तारीख 13 नवंबर, 2003 की वक्फ संपत्तियों की सूची में उपांतरण किए जाने की ईप्सा की गई, जिसके द्वारा पूर्व प्रकाशित प्रथम सूची में उपदर्शित उक्त वक्फ संपदाओं पर उसका नियंत्रण हो गया । डा. धवन ने यह दलील दी है कि जब एक बार पारित किया गया आदेश, पक्षकारों द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है तब तारीख 21 सितंबर, 2011 को पारित किए गए उच्च न्यायालय के आदेश पर रोक लगाने के लिए किसी भी अंतरिम आदेश के पारित किए जाने का कोई भी प्रश्न नहीं उठ सकता ।

22. डा. धवन ने यह दलील दी है कि चूंकि वक्फ और उसके संबंध में अनेक बीमाओं का संरक्षण पूरा किया जाना शेष है और वक्फ बोर्ड भी

अधिनियम, 1995 की धारा 13 और 14 के अनुसरण में समुचित रूप से गठित नहीं किया गया है, इसलिए अधिनियम की धारा 22 के उपबंध, लागू नहीं होंगे जिनके अन्तर्गत यह उल्लेख है कि बोर्ड का कोई भी कार्य या कार्यवाही अविधिमान्य मानी जाएगी यदि उसके किसी भी सदस्य का पद रिक्त हो या उसके गठन में कोई त्रुटि हो । विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि अधिनियम की धारा 22 केवल तभी लागू होगी जब बोर्ड सम्यक् रूप से गठित किया जाए किन्तु उस स्थिति में नहीं जब बोर्ड गठित किया जाना हो । यह दलील दी गई है कि चूंकि वक्फ बोर्ड का गठन पूर्ण रूप से नहीं किया गया है कि इसलिए बोर्ड द्वारा प्रकाशित वक्फ संपत्ति की सूची को स्वीकार नहीं किया जा सकता है और न ही उसका अवलंब लिया जा सकता है । यह दलील दी गई है कि इन कार्यवाहियों को ध्यान में रखते हुए यहां तक कि अंतरिम प्रक्रम पर भी, उच्च न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेश में किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है ।

23. 2011 की विशेष इजाजत याचिका सं. 31288 में प्रत्यर्थी सं. 1, 2 और 3 की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री साल्वे ने यह दलील दी है कि इस न्यायालय में विशेष इजाजत याचिका के लंबित रहने के दौरान वक्फ संपत्ति वक्फ बोर्ड द्वारा या पूर्त आयुक्त द्वारा स्थानांतरित किए जाने की अनुज्ञा नहीं दी जानी चाहिए यद्यपि जहां तक लोक न्यास का संबंध है, उसे वक्फ संपत्ति नहीं माना जाना चाहिए चूंकि उनकी विद्यमानता की उत्पत्ति वक्फ संपत्ति से संबंधित विधि के अधीन नहीं होती है अपितु इंग्लिश न्यास के अधीन होती है जिसको भारतीय न्यास अधिनियम लागू होता है ।

24. 2011 की विशेष इजाजत याचिका सं. 31288-31290 में विशेष इजाजत याचिका के पैरा 13 को निर्दिष्ट करते हुए श्री साल्वे ने यह दलील दी है कि वक्फ बोर्ड स्थापित करने की शक्ति वक्फ अधिनियम, 1995 की धारा 13 और उपधारा (2) के अधीन राज्य सरकार में विहित है और उपधारा (2) के अधीन वह रीति अधिकथित है जिसमें राज्य सरकार द्वारा शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए । श्री साल्वे ने यह दलील दी है कि इस उपबंध के अधीन दो बोर्डों अर्थात् सुन्नी बोर्ड और शिया बोर्ड की नियुक्ति के लिए उल्लेख किया गया है जो दोनों बीमाओं से संबंधित वक्फ संपत्ति की संख्या पर निर्भर होगा । तदनुसार, सर्वेक्षण किए जाने तक प्रतीक्षा करनी होगी जैसा कि वक्फ अधिनियम, 1995 की धारा 4 के अधीन अनुध्यात है । अतः, श्री साल्वे ने यह दलील दी है कि विशेष इजाजत कार्यवाहियों में अंतिम

विनिश्चय किए जाने तक यथास्थिति बनाए रखना उचित होगा ।

25. अंजुमन-ए-इस्माल की ओर से विद्वान् वरिष्ठ अधिवक्ता श्री वाई. एच. मुछाला ने श्री पी. पी. राव, डा. धवन और श्री साल्वे द्वारा दी गई दलीलों को अपनाया है किन्तु यह दलील भी दी है कि वक्फ बोर्ड का विधिमान्य रूप से गठन न किए जाने की स्थिति में, वक्फ अधिनियम, 1995 महाराष्ट्र में प्रवृत्त किया गया नहीं माना जा सकता है जो राज्य सरकार द्वारा शासित किया जा रहा था । श्री मुछाला ने यह दलील दी है कि महाराष्ट्र राज्य में वक्फ संपत्ति के प्रबंधन के प्रयोजन हेतु अधिनियम, 1955 के प्रवर्तन के पूर्व प्रवृत्त प्रबंधन प्रणाली बनी रहेगी ।

26. पक्षकारों के अपने-अपने काउंसेलों की ओर से दी गई दलीलों पर विचार करने पर हम इस अंतरिम प्रक्रम पर केवल पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत की गई मोटी-मोटी बातों पर ही विचार करेंगे कि क्या प्रकट किए गए तथ्यों के आधार पर तारीख 21 सितम्बर, 2011 को मुम्बई उच्च न्यायालय द्वारा मंजूर किए गए रोक आदेश को उपांतरित करके जारी रखा जाना चाहिए या नहीं ।

27. कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि विशेष इजाजत याचिकाओं में याचियों की शिकायत, उच्च न्यायालय के आक्षेपित आदेश के आधार पर महाराष्ट्र राज्य में पूर्त आयुक्त में प्रबंधन की शक्तियों के निहित किए जाने और मुस्लिम वक्फ संपदा के पर्यवेक्षण के संबंध में है, निस्संदेह, वक्फ बोर्ड, वक्फ अधिनियम, 1995 के उपबंधों के अधीन गठित किया गया है किन्तु उपर्युक्त अधिनियम की धारा 13 और 14 में यथापरिकल्पित पूर्ण समर्थन के साथ नहीं । कारण कुछ भी हो वर्तमान में, तथ्यात्मक स्थिति है कि महाराष्ट्र राज्य में कार्य करने वाला समुचित रूप से गठित किया हुआ कोई वक्फ बोर्ड नहीं है । साथ ही, महाराष्ट्र में वक्फ प्रशासन को शून्य नहीं रखा जा सकता है । मुम्बई उच्च न्यायालय ने वही किया जो उसने यह सुनिश्चित करने के लिए उचित समझा कि महाराष्ट्र राज्य में वक्फ संपत्तियों का प्रशासन शून्य नहीं है और यह निदेश दिया कि जब तक समुचित रूप से बोर्ड का गठन नहीं हो जाता है तब तक पूर्त आयुक्त इंग्लिश न्यास संपत्ति सहित मुस्लिम वक्फ की उन संपत्तियों को शासित करता रहेगा जो मुम्बई लोक न्यास अधिनियम के अधीन पहले ही पूर्त आयुक्त के यहां न्यास संपत्तियों के रूप में रजिस्ट्रीकृत हो चुकी है । स्वाभाविक परिणाम के रूप में विकृत वक्फ बोर्ड द्वारा प्रकाशित वक्फ संपत्ति की सूची भी मुम्बई उच्च न्यायालय द्वारा अपास्त कर दी गई ।

विचार के लिए यह प्रश्न है कि क्या मुम्बई उच्च न्यायालय को रिट अधिकारिता में ऐसे आदेश पारित करने की अधिकारिता है या नहीं विशेषकर वक्फ अधिनियम, 1995 की धारा 112 और उपधारा (3) के उपबंधों को दृष्टिगत करते हुए पूर्त आयुक्त को सभी वक्फ संपत्तियों का प्रबंधन निहित करने की अधिकारिता है या नहीं ।

28. अधिनियम की धारा 112 निरसन और व्यावृत्ति से संबंधित है । उक्त उपबंध के आधार पर वक्फ अधिनियम, 1954 और वक्फ संशोधन अधिनियम, 1984 निरसित कर दिए गए । इस अधिनियम की उपधारा (3) में विशिष्ट रूप से निम्न उपबंध किया गया है :–

*"112. निरसन और व्यावृत्ति

(1) xxx xxx xxx

(2) xxx xxx xxx

(3) यदि इस अधिनियम के आरंभ होने के तत्काल पूर्व, किसी भी राज्य में, ऐसी कोई भी विधि प्रवृत्त है जो इस अधिनियम के समवर्ती हो, तब वह समवर्ती विधि निरसित मानी जाएगी ।"

यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता है कि मुम्बई लोक न्यास अधिनियम एक समवर्ती विधि है, अतः निरसित मानी जाएगी, यह भी नहीं कहा जा सकता है कि यह विधि वक्फ की केवल उन संपत्तियों को लागू होगी जो पूर्त कार्यों की कोटि में नहीं आते हैं । मुस्लिम वक्फ संपत्ति और मुसलमानों द्वारा गठित न्यास में बहुत अंतर है । मूल अंतर यह है कि वक्फ संपत्ति ईश्वर को समर्पित की जाती है और वाकिफ (वक्फ करने वाले व्यक्ति) या समर्पित करने वाले व्यक्ति के पास वक्फ संपत्तियों पर कोई भी हक नहीं रह जाता है । जहां तक न्यास का संबंध है, संपत्तियां ईश्वर में निहित नहीं की जाती हैं । ऐसे

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

"112. Repeal and Saving.

(1) xxx xxx xxx

(2) xxx xxx xxx

(3) If immediately before the commencement of this Act, in any State, there is in force in that State, any law which correspondence to this Act, that corresponding law shall stand repealed."

न्यासों का उद्देश्य पूर्व संस्थाओं जैसे अस्पताल, शरणालय, अनाथालय और पूर्त डिस्पेंसरियों को चलाना भी होता है, यद्यपि न्यास को पवित्र माना जाता है फिर भी वह न्यास संस्थापक को न्यास की संपत्ति के हक से तब तक वंचित नहीं करता है जब तक कि वह न्यास या न्यासियों के पक्ष में अपने हक को त्याग न दे । कई बार ऐसा होता है कि लोक न्यास और वक्फ के बीच बहुत कम अंतर होता है, किन्तु सदैव मुख्य अंतर यह होता है कि वक्फ संपत्ति ईश्वर में निहित होती है और न्यास संपत्ति ईश्वर में निहित नहीं होती है और न्यास विलेख के निबंधनों में न्यासी न्यास और न्यास के हिताधिकारियों के फायदों के संबंध में कार्यवाही करने के हकदार हैं ।

29. वर्तमान मामले में, ऐसा प्रतीत होता है कि न्यास और वक्फ के बीच अंतर को अनदेखा किया गया है और उच्च न्यायालय ने इस तथ्य पर विचार किए बिना आदेश पारित किया है और आम तौर पर पूर्त आयुक्त को वक्फ संपत्तियों का प्रबंधन करने की कोई भी अधिकारिता नहीं होगी ।

30. हमारी राय में, इन परिस्थितियों में इस न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान यथास्थिति बनाए रखना और वक्फ संपत्ति के प्रबंधन में सभी को वक्फ संपत्ति का अन्य संक्रांत करने और/या उसका विलंगम करने से रोकना भी सभी के हित में होगा । अपने निर्णय के लागू किए जाने पर रोक लगाने वाले उच्च न्यायालय के आदेश द्वारा वे अंतरिम आदेश प्रवर्तित किए गए हैं जिनसे ऐसी रोक निरर्थक हो जाती है । उक्त रोक आदेश इन कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान अपनी वर्तमान स्थिति में नहीं बना रह सकता है ।

31. तदनुसार, इस प्रक्रम पर हम यह निदेश देते हैं कि लंबित विशेष इजाजत याचिका में विनिश्चय किए जाने तक वक्फ संपत्तियों के संबंध में, जो मुसलमानों द्वारा गठित न्यास से भिन्न हैं, मुम्बई के पूर्त आयुक्त सहित संबंधित सभी प्राधिकारियों में से किसी भी व्यक्ति को ऐसी वक्फ संपत्ति के प्रबंधन में किसी भी संपत्ति को रोकने या छोड़ देने के लिए अनुज्ञात नहीं करेगा ।

याचिका का निपटारा किया गया ।

अस./अनू.

———

गजू

बनाम

उत्तराखंड राज्य

13 सितंबर, 2012

न्यायमूर्ति स्वतंत्र कुमार और न्यायमूर्ति फकीर मोहम्मद इब्राहीम खलीफुल्ला

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धारा 3 और 118] – हत्या – हितबद्ध नातेदार साक्षी – विश्वसनीय साक्ष्य – अभिसाक्ष्यों में सारभूत विरोधाभास नहीं होना तथा विश्वसनीय होना – ऐसे महत्वपूर्ण साक्ष्य को अनदेखा नहीं किया जा सकता – साक्षी का परिसाक्ष्य जो विश्वसनीय प्रतीत होता हो, इस आधार पर त्यक्त नहीं किया जा सकता है कि वह मृतक का नातेदार होने के कारण हितबद्ध साक्षी है ।

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 [सपठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 156] – हत्या – त्रुटिपूर्ण अन्वेषण – अन्वेषक अधिकारी द्वारा गलती किया जाना – यदि न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि घटना के साक्षी का परिसाक्ष्य सत्य है, तब न्यायालय उसके आधार पर कार्यवाही करने के लिए स्वतंत्र होगा भले ही मामले में अन्वेषक अधिकारी की भूमिका संदिग्ध हो ।

वर्तमान मामले में विचारण न्यायालय द्वारा अपीलार्थी को दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया और आजीवन कारावास का दंड अधिनिर्णीत किया गया । इसके पश्चात् अपीलार्थी ने उत्तराखंड उच्च न्यायालय, नैनीताल के समक्ष अपील फाइल की और उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश की पुष्टि की और इसी आदेश के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अभि. सा. 4 ने प्रतिपरीक्षा में कतिपय कथन किए हैं जिनसे निःसंदेह अभियोजन पक्षकथन का समर्थन नहीं होता है । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि उसने अपने चाचा को हत्या करने वालों के नाम नहीं बताए थे । अभि. सा. 4 के कथन का परिशीलन अभि. सा. 1, अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3 के कथनों के साथ संयुक्त रूप से किया जाना चाहिए । जिस समय अर्थात् वर्ष 1987 में अभि. सा. 4 ने अपनी माता को मृत देखा

था तब वह अवयस्क था । उसका कथन तारीख 22 जनवरी, 1990 को अर्थात् घटना के ढाई वर्ष से अधिक समय पश्चात् अभिलिखित किया गया था । न्यायालय को साक्षी के कथन में कोई भी गंभीर विरोधाभास या असत्यता दिखाई नहीं देती है । यदि इस साक्षी के कथन पर इस रूप में विचार किया जाए जैसा अभिलेख पर उपलब्ध है, तो पता चलता है कि उसने यह कथन किया है कि जब वह कथा सुनने के पश्चात् चेतूराम के घर से वापस आया तो उसने अपनी माता को मृत पाया और इसके पश्चात् उसने अपने चाचा को सूचित किया जिसने अगले दिन प्रातःकाल में पुलिस में रिपोर्ट दर्ज कराई और अभि. सा. 2 तथा अभि. सा. 3 के कथनों को दृष्टिगत करते हुए अभियुक्तों को गिरफ्तार किया गया । यह बात न्यायालय की समझ से बाहर है कि अभियुक्त अभि. सा. 4 के इस कथन से क्या लाभ उठाना चाहते हैं । अभियोजन पक्ष का यह पक्षकथन नहीं है कि अभि. सा. 4 प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है और उसने अभियुक्तों को अपनी माता की हत्या करते हुए देखा है । विचारण न्यायालय ने इस संबंध में यह अभिलिखित किया है कि उसकी माता तथा सह-अभियुक्त अर्थात् उसके बड़े भाई की मृत्यु को ध्यान में रखते हुए उसने न्यायालय के समक्ष कतिपय तथ्य समुचित रूप से नहीं बताए हैं । न्यायालय को निर्णय में ऐसी टिप्पणी करने का कोई कारण दिखाई नहीं देता है । इन चारों साक्षियों के कथनों में कोई भी सारभूत विरोधाभास नहीं है । यह कथन किया गया है कि अभि. सा. 2, अभि. सा. 1 का नातेदार है जो मृतका का भी नातेदार है । इसके अतिरिक्त अभि. सा. 3 मृतका का नातेदार है । इस प्रकार, अभियुक्तों की ओर से दी गई दलील के अनुसार सभी साक्षी हितबद्ध साक्षी हैं जिन्होंने अपीलार्थी को मिथ्या आलिप्त करने का प्रयास किया है । अतः इन साक्षियों के कथन का अवलंब नहीं लिया जा सकता है क्योंकि वे मृतका और अन्य साक्षियों के नातेदार और हितबद्ध साक्षी हैं । न्यायालय इस दलील से सहमत नहीं है । ऐसे नातेदार साक्षियों के साक्ष्य के मूल्यांकन पर अनेक निर्णयों में इस न्यायालय द्वारा चर्चा की गई है । दलीप सिंह बनाम पंजाब राज्य वाले मामले में इस दलील को खारिज करते हुए कि ऐसे साक्षी जो आहत के निकट नातेदार हैं, उनके साक्ष्य का अवलंब नहीं लिया जाना चाहिए, न्यायालय ने निम्न अभिनिर्धारित किया है – आम तौर पर साक्षी को स्वतंत्र साक्षी मानना चाहिए जब तक कि वह ऐसी जगह से न आया हो जो संदिग्ध हो और अभियुक्त के साथ उसकी ऐसी शत्रुता हो कि वह उसे मिथ्या मामले में फंसाए । आम तौर पर, निकट नातेदार वास्तविक दोषी को बचाएगा और किसी निर्दोष व्यक्ति को मिथ्या आलिप्त करेगा । यह सत्य है जब व्यक्ति भावुक होता है और व्यक्तिगत शत्रुता होती है तब मनुष्य

की यह प्रवृत्ति होती है कि वह निर्दोष व्यक्ति को अपराध में फंसाता है जिसके विरुद्ध उसके मन में विद्वेष की भावना होती है किंतु ऐसी आलोचना का भी कोई आधार होना चाहिए और मात्र नातेदारी का तथ्य इस आधार से बहुत दूर होने के कारण प्रायः सच्चाई का प्रतीक बन जाता है । तथापि, न्यायालय साधारण विचार व्यक्त करने का प्रयास नहीं कर रहे हैं । प्रत्येक मामले पर उसके अपने तथ्यों के आधार पर विचार किया जाना चाहिए । न्यायालय की मताभिव्यक्तियां मात्र यह स्पष्ट करती हैं कि प्रज्ञा के सिद्धांत के रूप में न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत मामलों में प्रायः क्या होता है । इस संबंध में कोई भी सामान्य नियम नहीं है । प्रत्येक मामले पर उसके अपने तथ्यों को ध्यान में रखकर ही विचार किया जाना चाहिए । आंध्र प्रदेश राज्य बनाम एस. रायप्पा और अन्य वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा ऐसा ही मत व्यक्त किया गया है । न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि अब यह परिपाटी बन चुकी है कि लोग न्यायालय के समक्ष विशेषकर आपराधिक मामलों में, उपस्थित होने और अभिसाक्ष्य देने में संकोच करते हैं और इस कारण से मामला कई वर्ष लंबित रहता है । न्यायालय ने भी इस सिद्धांत का उल्लेख किया है कि "अब यह विधि का सुस्थापित सिद्धांत बन गया है कि साक्षी का परिसाक्ष्य जो अन्यथा भी विश्वसनीय प्रतीत होता हो, इस आधार पर त्यक्त नहीं किया जा सकता है कि वह मृतक का नातेदार होने के कारण हितबद्ध साक्षी है । ऐसा निकट नातेदार जो अत्यंत नैसर्गिक साक्षी है, हितबद्ध साक्षी नहीं कहलाया जा सकता है । हितबद्ध शब्द से यह अभिप्राय है कि शत्रुता या अन्य किसी कारण से संबंधित व्यक्ति का सीधा यह हित हो कि वह अभियुक्त को किसी भी प्रकार से दोषसिद्ध देखना चाहता हो । जब एक बार अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3 की मौजूदगी नैसर्गिक दर्शाई गई है, तब उनके कथन पर संदेह करना विधि की दृष्टि से उचित नहीं होगा । अभिलेख पर अभि. सा. 4 सहित अनेक साक्षियों के माध्यम से यह तथ्य सामने आया है कि चेतूराम के मकान में सत्यनारायण कथा का आयोजन किया गया था जिसमें अनेक ग्रामवासी सम्मिलित हुए थे । जब अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3 अर्धरात्रि में (कथा सुनकर) वापस आ रहे थे तब उन्होंने अंधेरे में अपनी टार्चों की रोशनी में घटना देखी थी । मात्र इस तथ्य से कि अभि. सा. 2, अभि. सा. 1 और मृतक का नातेदार है, इन साक्षियों का कथन संदिग्ध नहीं हो जाता है जो अन्यथा विश्वसनीय है और अन्य साक्षियों द्वारा सम्यक् रूप से उसकी सम्पुष्टि होती है । ऐसे मामलों में, कुटुम्ब के सदस्य ही आगे बढ़कर साक्ष्य देते हैं । जब एक बार यह सिद्ध हो जाता है कि उनके अभिसाक्ष्यों में सारभूत विरोधाभास नहीं है, वे विश्वसनीय हैं और ऊपर कथित

सिद्धांतों के अनुसरण में हैं, तब न्यायालयों के लिए ऐसे महत्वपूर्ण साक्ष्य को अनदेखा करना न्यायोचित नहीं होगा । न्यायालय ने यह भी विचार किया है कि चिकित्सीय साक्ष्य और प्रत्यक्ष साक्ष्य के बीच कोई भी विभेद नहीं है और जब एक बार उनका संयुक्त रूप से परिशीलन किया जाता है तब इससे न तो अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3 के कथन और न ही शवपरीक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श क-10) को मिथ्या ठहराया जा सकता है । वास्तव में, दोनों को एक दूसरे के पूरक के रूप में पढ़ा जाना चाहिए । यदि थोड़ी देर के लिए न्यायालय यह उपधारित कर लें कि दोनों साक्ष्यों में कोई विभेद है, तब भी यह इतना तुच्छ और अपरिणामिक होगा कि इससे अभियुक्त को कोई फायदा नहीं पहुंचेगा । इस न्यायालय के अनेक विनिश्चयों में यह सिद्धांत बन गया है कि चिकित्सीय साक्ष्य और प्रत्यक्ष साक्ष्य के बीच विभेद का मूल्यांकन करते समय साक्षियों के प्रत्यक्ष साक्ष्य को ही प्राथमिकता दी जानी चाहिए । (पैरा 10, 11, 12, 15 और 18)

न्यायालय अभियुक्त की ओर से दी गई इस अंतिम दलील पर विचार करेंगे कि दरांती (प्रदर्श 2) और रक्तरंजित पायजामे (प्रदर्श क-5) के संबंध में सीरम विज्ञानी की कोई भी रिपोर्ट प्राप्त नहीं की गई है, अतः अभियोजन पक्षकथन असफल होना चाहिए । न्यायालय इस दलील से सहमत नहीं है । निःसंदेह ये दोनों प्रदर्श सीरम विज्ञानी की रिपोर्ट प्राप्त करने के लिए प्रयोगशाला को नहीं भेजे गए थे, किंतु मात्र उनके अभाव से अभियुक्त को कोई भी लाभ नहीं पहुंचेगा । यह अन्वेषण में आया दोष है । त्रुटिपूर्ण अन्वेषण पर न्यायालय को अधिक गंभीरता से विचार नहीं करना चाहिए जब तक कि अभियोजन पक्षकथन की वास्तविक बुनियाद प्रभावित न हो । अभि. सा. 5 ने सम्यक् रूप से दरांती (प्रदर्श 2) और रक्तरंजित पायजामे (प्रदर्श क-5) की बरामदगी को साबित किया है और उसने सम्यक् रूप से न्यायालय में अपनी प्रतिपरीक्षा की परख कराई है । अन्वेषक अधिकारी ब्रह्म सिंह (अभि. सा. 6) द्वारा इन दोनों वस्तुओं की बरामदगी की गई है और न्यायालय के समक्ष ये बरामदगियां सम्यक् रूप से सिद्ध की गई हैं । इन बरामदगियों के साबित किए जाने और अभियोजन पक्षकथन का दो प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों अर्थात् अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3 तथा अभि. सा. 4 और अभि. सा. 5 जो घटनास्थल पर घटना के तत्काल पश्चात् मौजूद थे द्वारा सम्यक् रूप से समर्थन किए जाने पर किसी भी संदेह के परे अभियोजन पक्षकथन साबित हो जाता है । त्रुटिपूर्ण अन्वेषण के संबंध में इस न्यायालय ने दयाल सिंह और अन्य बनाम उत्तरांचल राज्य वाले मामले में अन्वेषक अधिकारी द्वारा लोप और कार्यों और ऐसे मामलों में

न्यायालय के कर्तव्य के संबंध में विचार करते हुए निम्न अभिनिर्धारित किया है – ऐसे मामलों में न्यायालय के कर्तव्य पर विचार करेंगे । साथी प्रसाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य वाले मामले में इस न्यायालय ने यह कथन किया है कि यह सुस्थापित है कि यदि पुलिस अभिलेख संदिग्ध हो जाता है और अन्वेषण उपेक्षापूर्ण किया जाता है तब न्यायालय का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह इस पर विचार करे कि न्यायालय में दिए गए साक्ष्य का अवलंब लिया जाना चाहिए या नहीं और ऐसी खामियों को अनदेखा किया जाना चाहिए या नहीं । अन्वेषण में आने वाली अकल्पित त्रुटि की संभावना पर विचार करते हुए इस न्यायालय ने धनज सिंह **उर्फ** शेरा बनाम पंजाब राज्य वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि त्रुटिपूर्ण अन्वेषण के मामले में न्यायालय को साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय सतर्क रहना चाहिए । किंतु मात्र त्रुटि के आधार पर अभियुक्त को दोषमुक्त करना उचित नहीं होगा; और यदि अन्वेषण अकल्पित रूप से त्रुटिपूर्ण है तब ऐसा करना अन्वेषक अधिकारी द्वारा मनमानी करना कहा जाएगा । लोप और कार्य के मामलों पर विचार करते हुए न्यायालय ने पारस यादव बनाम बिहार राज्य वाले मामले में पूर्व निर्णयों के अनुसरण में सिद्धांत प्रतिपादित किए हैं कि यदि अन्वेषण अभिकरण द्वारा खामी या लोप उपेक्षापूर्ण या अन्यथा किए जाते हैं तब अभियोजन साक्ष्य पर असंबद्ध रूप से विचार किया जाना अपेक्षित है ताकि यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि उक्त साक्ष्य का अवलंब लिया जा सकता है या नहीं । अधिकारियों का दोषपूर्ण आचरण न्यायालयों द्वारा साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय आड़े नहीं आना चाहिए अन्यथा अकल्पित रिष्टि बनी रहेगी और शिकायतकर्ता पक्ष के साथ न्याय नहीं होगा । जाहिरा हबीबुल्लाह शेख और एक अन्य बनाम गुजरात राज्य और अन्य वाले मामले में न्यायालय ने दांडिक विचारण के मामले में साक्षियों की भूमिका के महत्व पर विचार किया है । विचारण प्रक्रिया की कोटि के महत्व और प्रधानता पर बेंथम के शब्दों के आधार पर विचार किया जा सकता है जिसने यह कथन किया है कि साक्षी न्यायालय के आंख और कान होते हैं । न्यायालय ने यह चेतावनी जारी की है कि ऐसी स्थितियों में एक ओर न्यायालय की और अधिक जिम्मेदारी है और दूसरी ओर न्यायालयों को गंभीरतापूर्वक उन व्यक्तियों पर विचार करना चाहिए जो अकल्पित अन्वेषण करने में सम्मिलित हैं । न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि साक्षी, आहत या इत्तिलाकर्ता के सिखाए पढ़ाए जाने पर प्रतिषेध को प्रभावी बनाने के लिए विधायी तरीके आज की अपरिहार्य आवश्यकता बन चुके हैं । ऐसे आचरणों पर, जो अवैधानिक रूप

से न्यायालयों के समक्ष चल रही कार्यवाहियों में साक्ष्य की प्रस्तुति को प्रभावित करते हैं, गंभीरतापूर्वक और कड़े रूप में विचार किया जाना चाहिए । अभियुक्त के हित की संरक्षा के लिए कोई भी असम्यक् चिंता नहीं की जानी चाहिए । जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, समाज की आवश्यकताओं को देखते हुए ऐसा किया जाना अनुचित होगा । इसके प्रतिकूल, यह प्रयास किया जाना चाहिए कि निष्पक्ष विचारण किया जाए जिसमें अभियुक्त और अभियोजन पक्ष दोनों निष्पक्ष रूप से कार्यवाही करें । उचित न्याय प्रशासन में लोक हित किया जाना चाहिए जो कि उतना ही महत्वपूर्ण है जितना किसी एक अभियुक्त का हित महत्वपूर्ण होता है । न्यायालयों को महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करना चाहिए । समय बीतने के साथ, विधि का विकास हुआ है और न्यायालय की इतरोक्ति इस बात पर बल देती है कि आपराधिक मामले में, पक्षकारों की इच्छा पर यह पूर्णतया नहीं छोड़ा जा सकता है कि कार्यवाहियां किस प्रकार चलाई जाएं । अपराध एक सामाजिक बुराई है जिसमें जनता के अधिकारों और कर्तव्यों का भंग और अतिक्रमण होता है जिससे संपूर्ण समुदाय प्रभावित होता है और सामान्यतः समाज के लिए हानिकर है । इस न्यायालय ने राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग बनाम गुजरात राज्य वाले मामले में उपरोक्त सिद्धांत को दोहराते हुए यह अभिनिर्धारित किया है – निष्पक्ष विचारण की अवधारणा के अंतर्गत यह आता है कि अभियुक्त, आहत और समाज के हितों का सामान्य आकलन किया जाना चाहिए और यह समाज ही है जो राज्य और अभियोजनकारी अभिक्रमों में कार्य करता है । समाज के हित की पूर्णतया अवहेलना इस रूप में नहीं की जानी चाहिए कि वह कोई अग्राह्य व्यक्ति है । यह विचार किया गया है कि न्याय प्रशासन में जनता का विश्वास जीतना न्यायालयों का सदैव अभिभावी कर्तव्य है जिसे प्रायः विधि की सर्वोच्चता सही ठहराना और कायम रखने के लिए निर्दिष्ट किया जाता है । सम्यक् न्याय प्रशासन को सदैव एक निरंतर प्रक्रिया माना गया है जो किसी एक मामले को विनिश्चित करने तक सीमित नहीं है जो भविष्य में न्यायालय के रूप में कार्य करने के लिए उसकी सक्षमता की संरक्षा उसी प्रकार करेगा जिस प्रकार उसके समक्ष मामले में की गई है । यदि दंड न्यायालय को न्याय करने के लिए कारगर भूमिका निभानी है, तब पीठासीन न्यायाधीश को सच्चाई का पता लगाने के लिए और दोनों पक्षकारों और समुदाय जिसके प्रति कर्तव्यबद्ध है के प्रति ऋजुता और निष्पक्षता से न्याय करने के लिए और सही निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए आवश्यक विचारण बुद्धिमत्ता, सक्रिय रुचि और सभी सुसंगत सामग्रियों का

पता लगाने में भागीदार बनकर मात्र दर्शक और अभिलेखन मशीन नहीं बना रहना चाहिए । दांडिक न्याय करने वाले न्यायालय कार्यवाहियों के दौरान तंग करने वाले या अन्यायपूर्ण आचरण के प्रति आंखें नहीं मूंद सकता, चाहे निष्पक्ष विचारण क्यों न संभव हो, परंतु निष्पक्ष और स्वतंत्र न्यायनिर्णायक के रूप में न्यायाधीशों की भूमिका का महत्व कम नहीं होना चाहिए । कर्नाटक राज्य बनाम यरप्पा रेड्डी वाले मामले में इस न्यायालय ने त्रुटिपूर्ण अन्वेषण के ऐसे ही प्रश्न पर विचार किया कि क्या रोजनामचे में किए गए किसी भी छलसाधन को अभियोजन पक्षकथन के विरुद्ध प्रस्तुत किया जा सकता है या नहीं । इस न्यायालय ने निर्णय के पैरा 19 में निम्न अभिनिर्धारित किया है – क्या उपरोक्त निष्कर्ष (कि रोजनामचा असली है या नहीं) का इस मामले में के अन्य साक्ष्य से कोई भी अवश्यंभावी संबंध है । यदि संवीक्षा किए जाने पर अन्य साक्ष्य विश्वसनीय और स्वीकार्य पाया जाता है, तो क्या न्यायालय को अन्वेषक अधिकारी द्वारा अन्वेषण या असावधानीपूर्वक अभिलेख तैयार किए जाने के दौरान दर्शाए गए मशीनीकरण से सहमत होना चाहिए ? मार्गदर्शक सिद्धांत यह हो सकता है कि चूंकि अन्वेषण ऐसा एकमात्र क्षेत्र नहीं है जिसमें दांडिक विचारण के संबंध में न्यायिक संवीक्षा की जाए, इसलिए मामले में न्यायालय द्वारा निकाला गया निष्कर्ष मात्र अन्वेषण की सत्यनिष्ठा पर निर्भर किए जाने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है । यह लगभग सुस्थापित है कि यदि अन्वेषण अवैध या संदिग्ध है, तब भी शेष साक्ष्य की संवीक्षा इस बात से हटकर की जानी चाहिए । अन्यथा दांडिक विचारण मनमानी करने वाले अन्वेषक अधिकारी के हाथों में रह जाएगा । न्यायालय को अन्वेषक अधिकारियों द्वारा की गई कार्रवाई की तुलना में दांडिक विचारण को प्रधानता और अग्रता देनी चाहिए । अन्वेषक अधिकारियों द्वारा मामले में कारित की गई गलतियों के लिए दंड न्याय को अभिशाप नहीं बनना चाहिए । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि यदि न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि घटना के साक्षी का परिसाक्ष्य सत्य है, तब न्यायालय उसके आधार पर कार्यवाही करने के लिए स्वतंत्र है भले ही मामले में अन्वेषक अधिकारी की भूमिका संदिग्ध हो । राम बली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य वाले मामले में करनैल सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य वाला निर्णय दोहराया गया और इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि त्रुटिपूर्ण अन्वेषण के मामले में साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय न्यायालय को सतर्क रहना चाहिए । किंतु केवल त्रुटि के आधार पर अभियुक्त को दोषमुक्त करना उचित नहीं होगा; यदि अन्वेषण आकल्पिक रूप से

त्रुटिपूर्ण है तब अभियुक्त को दोषमुक्त करना अन्वेषक अधिकारी के हाथों की कठपुतली बनने की कोटि में आएगा । जहां हमारे दांडिक न्याय तंत्र के अंतर्गत निष्पक्ष विचारण किए जाने और दोषी साबित किए जाने तक अभियुक्त को निर्दोष मानने के सुरक्षोपाय का उपबंध किया गया है वहीं यह भी अनुध्यात किया गया है कि दांडिक विचारण का अर्थ अभियुक्त और समाज अर्थात् सभी के साथ न्याय करना है और अभियोजन पक्ष को अपना पक्षकथन साबित करने के लिए निष्पक्ष रूप से अवसर दिया जाना है । केवल तब ही कानून और व्यवस्था बनी रहेगी । न्यायालय का मात्र यही कर्तव्य नहीं है कि वह यह सुनिश्चित करे कि किसी भी निर्दोष व्यक्ति को दंडित न किया जाए अपितु उसका यह भी कर्तव्य है कि दोषी व्यक्ति बचकर न निकल जाए । दोनों कार्य न्यायाधीश के लोक कर्तव्य हैं । विचारण के दौरान विद्वान् पीठासीन न्यायाधीश से यह प्रत्याशा की जाती है कि वे उद्देशात्मक रूप से कार्य करें और सही दृष्टिकोण अपनाए । यदि अभियोजन पक्ष बिना सोचे समझे किए गए या अकल्पित त्रुटिपूर्ण अन्वेषण के आधार पर विचारण का विमार्ग दर्शन करे तब न्यायालय को अत्यधिक सावधानी बरतनी चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि ऐसे प्रयास के बावजूद निश्चयात्मक प्रक्रिया सहायक नहीं है । "निष्पक्ष विचारण" के उद्देश्य को सही मायनों में पूरा करने के लिए न्यायालय को न्याय करने तथा समाज के हित की संरक्षा करने के लिए कोई भी कमी नहीं करनी चाहिए । इससे न्यायालय का ध्यान आनुषंगिक मुद्दे की ओर जाता है कि न्यायालय को ऐसे मामलों में किस प्रकार साक्ष्य का मूल्यांकन करना चाहिए । प्रदर्शों, चिकित्सीय और प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य में कुछ विभिन्नताओं के आ जाने से इनकार नहीं किया जा सकता है । किंतु ऐसा नहीं है कि छोटी-मोटी प्रत्येक विभिन्नता या असंगतता से अभियुक्त के पक्ष में न्याय हो जाएगा । निःसंदेह, जहां विरोधाभास और विषमताएं ऐसी गंभीर प्रकृति की हों, जो स्पष्ट या विवक्षित रूप से साबित किए जाने वाले सारभूत मामले के लिए हानिकर हों, उनसे अभियुक्त को लाभ पहुंच सकता है । आम तौर पर न्यायालय विशेषज्ञ द्वारा दिए गए साक्ष्य को यूं ही स्वीकार कर लेते हैं किंतु यह भी उतना ही सत्य है कि न्यायालय विशेषज्ञों की रिपोर्ट से पूरी तरह सहमत नहीं होते हैं विशेषकर यदि ऐसी रिपोर्टें सरसरी, न टिक सकने वाली हों और अभियोजन पक्ष का विमार्ग दर्शन करके प्राप्त की गई हों । कमलजीत सिंह बनाम पंजाब राज्य वाले मामले में, प्रत्यक्षदर्शी और चिकित्सीय साक्ष्य के बीच फर्कों पर विचार करते समय न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है, "सुज्ञात विधि यह है कि

चिकित्सीय साक्ष्य और प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य के बीच तुच्छ विरोधाभास होने से प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य का महत्व कम नहीं हो जाता । जब तक कि चिकित्सीय साक्ष्य इतना भिन्न न हो कि प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों द्वारा बताई गई रीति से भिन्न रीति में क्षतियां कारित की गई हों, तब तक प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के परिसाक्ष्य को त्यक्त नहीं किया जा सकता ।" जहां प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का साक्ष्य विश्वसनीय और विश्वासप्रद पाया जाए, वहां आनुकल्पिक संभाव्यता की ओर इशारा करने वाली चिकित्सीय राय को निश्चायक के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है । यह प्रत्याशा की जाती है कि विशेषज्ञ साक्षी से वह ऐसी सभी सामग्री न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करें जिसके आधार पर उसने अपना निष्कर्ष निकाला है और जिसके आधार पर उसने विज्ञान के शब्दों की परिभाषा देते हुए मामले के तकनीकी पहलू पर न्यायालय को समझाया है ताकि न्यायालय यद्यपि वह विशेषज्ञ नहीं है, विशेषज्ञ की राय को महत्व देते हुए सभी सामग्रियों पर स्वयं अपना निर्णय दे सके क्योंकि जब एक बार विशेषज्ञ की राय स्वीकार कर ली जाती है, तब वह राय किसी चिकित्सा अधिकारी की राय नहीं रह जाती है अपितु वह न्यायालय की राय बन जाती है । जब उपरोक्त सिद्धांतों के आधार पर वर्तमान मामले पर विचार किया जाता है, तब यह स्पष्ट हो जाता है कि अन्वेषण में की गई त्रुटि या अन्वेषक अधिकारी द्वारा किए गए लोप से अभियुक्त को कोई भी लाभ नहीं पहुंच सकता है । निःसंदेह अन्वेषक अधिकारी को प्रदर्श 2 और प्रदर्श क-5 के संबंध में सीरम विज्ञानी द्वारा तैयार की गई रिपोर्ट प्राप्त करनी चाहिए थी और मृतक के रक्त ग्रुप के साथ उसका मिलान करना चाहिए था । इस तथ्य के बावजूद कि अभियुक्त की ओर से दी गई दलील में कोई सार नहीं है यह निश्चित है कि यह अन्वेषक अधिकारी द्वारा की गई गलती है जिसे न्यायालय द्वारा अनदेखा नहीं किया जा सकता । (पैरा 19, 20 और 21)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2012]	2012 (7) स्केल 165 : **दयाल सिंह और अन्य** बनाम **उत्तरांचल राज्य** ।	20

निर्दिष्ट निर्णय

[2011]	(2011) 7 एस. सी. सी. 421 : **भजनलाल** उर्फ **हरभजन सिंह और अन्य** बनाम **हरियाणा राज्य ;**	18

[2008] (2008) 16 एस. सी. सी. 99 :
कपिल देव मंडल और अन्य बनाम **बिहार राज्य ;** 18

[2008] (2008) 16 एस. सी. सी. 73 :
उत्तर प्रदेश राज्य बनाम **किशनपाल और अन्य ;** 13

[2006] (2006) 4 एस. सी. सी. 512 :
आंध्र प्रदेश राज्य बनाम **एस. रायप्पा और अन्य ;** 12

[1998] (1998) 4 एस. सी. सी. 302 :
उत्तर प्रदेश राज्य बनाम **कृष्ण गोपाल ;** 18

[1965] ए. आई. आर. 1965 एस. सी. 328 :
दरिया सिंह और अन्य बनाम **पंजाब राज्य ;** 14

[1954] [1954] एस. सी. आर 145 :
दलीप सिंह बनाम **पंजाब राज्य** । 11

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2009 की दांडिक अपील सं. 1856.

2001 की दांडिक अपील सं. 757 में उत्तराखंड उच्च न्यायालय की नैनीताल न्यायपीठ के तारीख 7 अप्रैल, 2008 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सुश्री एस. जनानी, श्री सुन्नदो राहा और श्री दीपक गोयल

प्रत्यर्थी की ओर से सुश्री नीलम सिंह और श्री जतिन्दर कुमार भाटिया

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति स्वतंत्र कुमार ने दिया ।

न्या. कुमार – वर्तमान अपील 2001 की दांडिक अपील सं. 757 में उत्तराखंड उच्च न्यायालय की नैनीताल न्यायपीठ के तारीख 7 अप्रैल, 2008 के निर्णय के विरुद्ध की गई है ।

2. हम उन तथ्यों पर विचार करेंगे जिनके आधार पर वर्तमान अपील फाइल की गई है और किसी भी स्थिति में इन तथ्यों का आयाम संकुचित है । मृतका श्रीमती तारा देवी का विवाह गजाराम के साथ हुआ था । इस विवाह से मृतका के पास दो बच्चे अर्थात् रामपाल और गुड्डु (अभि. सा. 4) थे । मृतका के पति गजाराम की दुर्भाग्यपूर्ण मृत्यु के पश्चात् वह अपने छोटे पुत्र गुड्डु के पास रहती थी । बड़ा पुत्र रामपाल विवाहित था और वह

अपने परिवार के साथ अलग रहता था किंतु उसी ग्राम में । गजू अर्थात् अभियुक्त-अपीलार्थी, मृतका तारा देवी का देवर है । वह भी अलग रहता था किंतु तारा देवी के मकान के निकट । उसके पति की मृत्यु के पश्चात् एक ओर मृतका और दूसरी ओर उसके बड़े पुत्र रामपाल तथा उसके देवर गजू के बीच संपत्ति विभाजन को लेकर विवाद हो गया । यह विवाद कृषि भूमि से संबंधित था । यह कथन किया गया है कि गजू और रामपाल तारा देवी को कोई भी भूमि नहीं देना चाहते थे ।

3. 1 जुलाई, 1987 की रात्रि में, ग्राम कोटदा, कल्याणपुर में स्थित अपने मकान में चेतूराम द्वारा "सत्यनारायण कथा" का आयोजन किया गया । बहुत से ग्रामवासी कथा में सम्मिलित होने गए । आशाराम (अभि. सा. 2) और केवलराम (अभि. सा. 3) अन्य व्यक्तियों के साथ अर्धरात्रि में अपने घर वापस आ रहे थे । रास्ते में अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3 ने उस समय कराहने की आवाज सुनी जब वे तारा देवी के मकान के निकट पहुंचे । अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3 के पास टार्चें थीं और टार्चों की रोशनी में उन्होंने यह देखा कि अभियुक्त गजू दरांती (प्रदर्श 2) से लैस है जिससे वह मृतका के आंगन में उस पर वार कर रहा था और अभियुक्त रामपाल ने उसे नीचे दबोच रखा था । चुनौती दिए जाने पर, गजू ने इन दोनों साक्षियों को धमकी देते हुए उनसे वहां से चले जाने को कहा । यह कथन किया गया है कि इन दोनों साक्षियों ने न तो कोई शोर मचाया और न ही इस घटना के बारे में किसी को बताया । अगले दिन प्रातःकाल में, अभि. सा. 4 ने घटना के बारे में अपने मामा भादूराम को सूचित किया जिसकी परीक्षा अभि. सा. 1 के रूप में की गई है । सूचना प्राप्त किए जाने पर, इस मामले के संबंध में 2 जुलाई, 1987 को प्रातःकाल में अभि. सा. 1 ने पुलिस को बताया । अभि. सा. 1 ने लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श क-1) प्रातःकाल लगभग 10.30 बजे पुलिस थाने में दर्ज कराई । प्रदर्श क-1 के आधार पर, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट, चिक रिपोर्ट (प्रदर्श क-16) तैयार की गई । उपनिरीक्षक ब्रह्म सिंह (अभि. सा. 6) ने इस मामले में अन्वेषण आरंभ किया । वह घटनास्थल पर पहुंचा और तारा देवी के शव का पंचायतनामा तैयार किया । मृतका के शव की मृत्युसमीक्षा प्रदर्श क-6 के अनुसार करने के पश्चात् उसने देखा कि शव पर घाव हैं और उसने रिपोर्ट प्रदर्श क-8 तैयार की । इसके पश्चात् उसने शव को शवपरीक्षण के लिए देहरादून भेज दिया । घटनास्थल से रक्तरंजित मिट्टी (प्रदर्श 3) और सादा मिट्टी (प्रदर्श 4) के नमूने प्राप्त किए गए और इसका नक्शा (प्रदर्श क-12) तैयार किया गया । तारीख 3 जुलाई, 1987 को देहरादून अस्पताल

के डा. यू. के. चोपड़ा ने शवपरीक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श क-10) तैयार की और मृतक के शव पर निम्नलिखित क्षतियां पाईं :–

"(i) ठुड्डी से 1 सें.मी. नीचे की ओर 4 सें.मी. × 0.5 सें.मी. माप का छिन्न घाव जिसकी गहराई मांसपेशी तक है ।

(ii) क्षति सं. 1 से 2 सें.मी. नीचे की ओर 5 सें.मी. × 1 सें.मी. माप का छिन्न घाव जिसकी गहराई मांसपेशी तक है ।

(iii) ग्रीवा के मध्य में नीलयुक्त तीन खरोंचें हैं जिनकी माप 1.5 सें.मी. × 1 सें.मी., 2 सें.मी. × 1 सें.मी. और 1.5 सें.मी. × 1 सें.मी. है ।

(iv) बाईं कोहनी के पीछे की ओर 3 सें.मी. × 2 सें.मी. माप की खरोंच ।

(v) कंधे की पीछे की ओर 3 सें.मी. × 2 सें.मी. माप की खरोंच ।

(vi) दाईं कटि कशेरुक के पीछे की ओर 4 सें.मी. × 3 सें.मी. माप की खरोंच ।"

4. डा. चोपड़ा ने अपनी रिपोर्ट प्रदर्श क-10 में निम्न निष्कर्ष भी अभिलिखित किए हैं :–

"आंतरिक परीक्षा किए जाने पर ग्रीवा के मध्य में उप-त्वचीय ऊतक संकुचित पाया गया है । कंठिकास्थि में अस्थिभंग है । ग्रासनली और श्वासनली भी संकुचित पाए गए हैं । दोनों फेफड़े सिकुड़े हुए हैं ।"

5. अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3 ने, जिसकी परीक्षा प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के रूप में की गई है, पूर्ण रूप से अभियोजन पक्षकथन का समर्थन किया है । जैसाकि पहले ही विचार किया गया है, इन साक्षियों के अनुसार, जब वे "सत्यनारायण कथा" में सम्मिलित होने के पश्चात् चेतूराम के मकान से वापस आ रहे थे, तब उन्होंने मृतका तारा देवी के चिल्लाने की आवाज सुनी । जब वे तारा देवी के मकान के निकट पहुंचे तब उन्होंने अपनी टार्चों की रोशनी में देखा कि गजू और रामपाल मृतका के आंगन में उसे दबोचे हुए हैं और गजू अपने हाथों में दरांती (प्रदर्श 2) लिए हुए था । जब उन्होंने हस्तक्षेप करने का प्रयास किया, तो उन्हें धमकी दी गई । गदरू (अभि. सा. 5) ने प्रदर्श 2 की बरामदगी साबित की है जिसका प्रयोग अपराध में

किया गया था और इसके संबंध में बरामदगी ज्ञापन (प्रदर्श क-11) तैयार किया गया है । अपनी माता की मृत्यु के पश्चात् गुड्डु (अभि. सा. 4) मृतका का अवयस्क पुत्र अपनी माता की मृत्यु के बारे में अपने चाचा के मकान पर गया और उसके पश्चात् उसके चाचा ने पुलिस में रिपोर्ट दर्ज कराई । उसने यह कथन किया है कि वह भी चेतूराम के मकान पर कथा सुनने गया था और प्रातःकाल में जब वह वापस आया तो उसने अपनी माता को मृत पाया । इस साक्षी ने अभियोजन पक्षकथन का भागतः समर्थन किया है और उसने यह पुष्टि की है कि उसकी माता और उसके चाचा गजू के बीच भूमि को लेकर विवाद था किंतु उसने यह कथन किया है कि उसे यह मालूम नहीं है कि उसकी माता की हत्या किसने की है । अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 6) ने साक्षी कठघरे में अभियोजन पक्ष की संपूर्ण कहानी और उसके द्वारा किए गए अन्वेषण का वर्णन किया है ।

6. अन्वेषक अधिकारी ने न्यायालय के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 172(3) के निबंधनों में रिपोर्ट फाइल की है जिसके अंतर्गत अभियुक्त-अपीलार्थी गजू और रामपाल को भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 302 के अधीन आरोपित किया है । इन अभियुक्तों का विचारण सेशन न्यायाधीश के समक्ष किया गया और उन्हें तारीख 2 जुलाई, 1990 के निर्णय द्वारा दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया । विचारण न्यायालय ने अभियुक्त गजू को आजीवन कारावास का दंड अधिनिर्णीत किया और अपील के लंबित रहने के दौरान अभियुक्त रामपाल की मृत्यु हो गई ।

7. विचारण न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर, अभियुक्त ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की, जो तारीख 7 अप्रैल, 2008 के निर्णय द्वारा खारिज कर दी गई । उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश दोनों की पुष्टि की और इसी आदेश के विरुद्ध वर्तमान अपील फाइल की गई है ।

8. अपीलाधीन निर्णय पर आक्षेप और दोषमुक्ति के आदेश की प्रार्थना करते हुए, अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने प्राथमिक रूप से बल देते हुए यह दलील दी है कि :–

> 1. अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3, जो तथाकथित प्रत्यक्षदर्शी साक्षी हैं, वास्तविक साक्षी नहीं हैं और वे अभि. सा. 1 के नातेदार हैं । इन साक्षियों की घटनास्थल पर मौजूदगी संदिग्ध है ।

2. अभि. सा. 1 ने दोनों अभियुक्तों को संपूर्ण भूमि हड़पने के हेतु से मिथ्या फंसाया है ।

3. चिकित्सीय साक्ष्य (प्रदर्श क-10) और मौखिक साक्ष्य और अभि. सा. 2 तथा अभि. सा. 3 के कथनों के बीच सारभूत विरोधाभास हैं, और मृत्यु का कारण भी स्पष्ट नहीं किया गया है जिससे अभियुक्त को अवश्य ही फायदा मिलना चाहिए ।

4. बरामद की गई दरांती और रक्तरंजित पायजामे को परीक्षण के लिए न्यायालयिक प्रयोगशाला नहीं भेजा गया है और सीरम विज्ञानी की कोई भी रिपोर्ट प्राप्त नहीं की गई है ।

9. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने अपनी दलील के समर्थन में अभि. सा. 4 के कथन पर अत्यधिक बल दिया है । उनके अनुसार, अभि. सा. 4 ने अभियोजन पक्षकथन का उल्लेख संपूर्ण रूप से नहीं किया है, अतः अभियुक्त दोषमुक्ति के लिए हकदार है ।

10. अभि. सा. 4 ने प्रतिपरीक्षा में कतिपय कथन किए हैं जिनसे निःसंदेह अभियोजन पक्षकथन का समर्थन नहीं होता है । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि उसने अपने चाचा को हत्या करने वालों के नाम नहीं बताए थे । अभि. सा. 4 के कथन का परिशीलन अभि. सा. 1, अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3 के कथनों के साथ संयुक्त रूप से किया जाना चाहिए । जिस समय अर्थात् वर्ष 1987 में अभि. सा. 4 ने अपनी माता को मृत देखा था तब वह अवयस्क था । उसका कथन तारीख 22 जनवरी, 1990 को अर्थात् घटना के ढाई वर्ष से अधिक समय पश्चात् अभिलिखित किया गया था । हमें इस साक्षी के कथन में कोई भी गंभीर विरोधाभास या असत्यता दिखाई नहीं देती है । यदि इस साक्षी के कथन पर इस रूप में विचार किया जाए जैसा अभिलेख पर उपलब्ध है, तो पता चलता है कि उसने यह कथन किया है कि जब वह कथा सुनने के पश्चात् चेतूराम के घर से वापस आया तो उसने अपनी माता को मृत पाया और इसके पश्चात् उसने अपने चाचा को सूचित किया जिसने अगले दिन प्रातःकाल में पुलिस में रिपोर्ट दर्ज कराई और अभि. सा. 2 तथा अभि. सा. 3 के कथनों को दृष्टिगत करते हुए अभियुक्तों को गिरफ्तार किया गया । यह बात हमारी समझ से बाहर है कि अभियुक्त अभि. सा. 4 के इस कथन से क्या लाभ उठाना चाहते हैं । अभियोजन पक्ष का यह पक्षकथन नहीं है कि अभि. सा. 4 प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है और उसने अभियुक्तों को अपनी माता की हत्या

करते हुए देखा है । विचारण न्यायालय ने इस संबंध में यह अभिलिखित किया है कि उसकी माता तथा सह-अभियुक्त अर्थात् उसके बड़े भाई की मृत्यु को ध्यान में रखते हुए उसने न्यायालय के समक्ष कतिपय तथ्य समुचित रूप से नहीं बताए हैं । हमें निर्णय में ऐसी टिप्पणी करने का कोई कारण दिखाई नहीं देता है । इन चारों साक्षियों के कथनों में कोई भी सारभूत विरोधाभास नहीं है । यह कथन किया गया है कि अभि. सा. 2, अभि. सा. 1 का नातेदार है जो मृतका का भी नातेदार है । इसके अतिरिक्त अभि. सा. 3 मृतका का नातेदार है । इस प्रकार, अभियुक्तों की ओर से दी गई दलील के अनुसार सभी साक्षी हितबद्ध साक्षी हैं जिन्होंने अपीलार्थी को मिथ्या आलिप्त करने का प्रयास किया है । अतः इन साक्षियों के कथन का अवलंब नहीं लिया जा सकता है क्योंकि वे मृतका और अन्य साक्षियों के नातेदार और हितबद्ध साक्षी हैं ।

11. हम इस दलील से सहमत नहीं हैं । ऐसे नातेदार साक्षियों के साक्ष्य के मूल्यांकन पर अनेक निर्णयों में इस न्यायालय द्वारा चर्चा की गई है । **दलीप सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[1] वाले मामले में इस दलील को खारिज करते हुए कि ऐसे साक्षी जो आहत के निकट नातेदार हैं, उनके साक्ष्य का अवलंब नहीं लिया जाना चाहिए, न्यायालय ने निम्न अभिनिर्धारित किया है :–

> "26. आम तौर पर साक्षी को स्वतंत्र साक्षी मानना चाहिए जब तक कि वह ऐसी जगह से न आया हो जो संदिग्ध हो और अभियुक्त के साथ उसकी ऐसी शत्रुता हो कि वह उसे मिथ्या मामले में फंसाए । आम तौर पर, निकट नातेदार वास्तविक दोषी को बचाएगा और किसी निर्दोष व्यक्ति को मिथ्या आलिप्त करेगा । यह सत्य है जब व्यक्ति भावुक होता है और व्यक्तिगत शत्रुता होती है तब मनुष्य की यह प्रवृत्ति होती है कि वह निर्दोष व्यक्ति को अपराध में फंसाता है जिसके विरुद्ध उसके मन में विद्वेष की भावना होती है किंतु ऐसी आलोचना का भी कोई आधार होना चाहिए और मात्र नातेदारी का तथ्य इस आधार से बहुत दूर होने के कारण प्रायः सच्चाई का प्रतीक बन जाता है । तथापि, हम साधारण विचार व्यक्त करने का प्रयास नहीं कर रहे हैं । प्रत्येक मामले पर उसके अपने तथ्यों के आधार पर विचार किया जाना चाहिए । हमारी मताभिव्यक्तियां मात्र यह स्पष्ट

---

[1] [1954] एस. सी. आर 145.

करती हैं कि प्रज्ञा के सिद्धांत के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत मामलों में प्रायः क्या होता है । इस संबंध में कोई भी सामान्य नियम नहीं है । प्रत्येक मामले पर उसके अपने तथ्यों को ध्यान में रखकर ही विचार किया जाना चाहिए ।"

12. **आंध्र प्रदेश राज्य** बनाम **एस. रायप्पा और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा ऐसा ही मत व्यक्त किया गया है । न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि अब यह परिपाटी बन चुकी है कि लोग न्यायालय के समक्ष विशेषकर आपराधिक मामलों में, उपस्थित होने और अभिसाक्ष्य देने में संकोच करते हैं और इस कारण से मामला कई वर्ष लंबित रहता है । न्यायालय ने भी इस सिद्धांत का उल्लेख किया है कि "अब यह विधि का सुस्थापित सिद्धांत बन गया है कि साक्षी का परिसाक्ष्य जो अन्यथा भी विश्वसनीय प्रतीत होता हो, इस आधार पर त्यक्त नहीं किया जा सकता है कि वह मृतक का नातेदार होने के कारण हितबद्ध साक्षी है । ऐसा निकट नातेदार जो अत्यंत नैसर्गिक साक्षी है, हितबद्ध साक्षी नहीं कहलाया जा सकता है । हितबद्ध शब्द से यह अभिप्राय है कि शत्रुता या अन्य किसी कारण से संबंधित व्यक्ति का सीधा यह हित हो कि वह अभियुक्त को किसी भी प्रकार से दोषसिद्ध देखना चाहता हो ।"

13. इस न्यायालय ने यह भी विचार व्यक्त किया है कि नातेदार साक्षी का यही अर्थ नहीं होता है कि वह हितबद्ध साक्षी है या उसके समतुल्य है । किसी साक्षी को केवल तब हितबद्ध साक्षी कहा जा सकता है जब वह सिविल डिक्री के मामले में मुकदमेबाजी के परिणाम से या अभियुक्त को दंड दिए जाने से लाभान्वित होने वाला हो । (**उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **किशनपाल और अन्य**[2] वाला मामला देखिए)

14. **दरिया सिंह और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य**[3] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है :–

> "6.... तथापि, सिद्धांत के अनुसार, इस अभिवाक्य को स्वीकार करना अनुचित होगा कि यदि किसी साक्षी को मृतक का नातेदार दर्शाया गया है और यह भी दर्शाया गया है कि वह पक्षद्रोही हो गया है अर्थात् उसने आहत के विरुद्ध और हमलावर के पक्ष में कथन दिया

---

[1] (2006) 4 एस. सी. सी. 512.

[2] (2008) 16 एस. सी. सी. 73.

[3] ए. आई. आर. 1965 एस. सी. 328.

है, तब उसके साक्ष्य को तब तक स्वीकार नहीं किया जा सकता है जब तक कि उसकी पुष्टि महत्वपूर्ण विशिष्टियों से न हो जाए ।"

15. जब एक बार अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3 की मौजूदगी नैसर्गिक दर्शाई गई है, तब उनके कथन पर संदेह करना विधि की दृष्टि से उचित नहीं होगा । अभिलेख पर अभि. सा. 4 सहित अनेक साक्षियों के माध्यम से यह तथ्य सामने आया है कि चेतूराम के मकान में सत्यनारायण कथा का आयोजन किया गया था जिसमें अनेक ग्रामवासी सम्मिलित हुए थे । जब अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3 अर्धरात्रि में (कथा सुनकर) वापस आ रहे थे तब उन्होंने अंधेरे में अपनी टार्चों की रोशनी में घटना देखी थी । मात्र इस तथ्य से कि अभि. सा. 2, अभि. सा. 1 और मृतक का नातेदार है, इन साक्षियों का कथन संदिग्ध नहीं हो जाता है जो अन्यथा विश्वसनीय है और अन्य साक्षियों द्वारा सम्यक् रूप से उसकी सम्पुष्टि होती है । ऐसे मामलों में, कुटुम्ब के सदस्य ही आगे बढ़कर साक्ष्य देते हैं । जब एक बार यह सिद्ध हो जाता है कि उनके अभिसाक्ष्यों में सारभूत विरोधाभास नहीं है, वे विश्वसनीय हैं और ऊपर कथित सिद्धांतों के अनुसरण में हैं, तब न्यायालयों के लिए ऐसे महत्वपूर्ण साक्ष्य को अनदेखा करना न्यायोचित नहीं होगा ।

16. अब हम अभियुक्त की ओर से दी गई इस अगली दलील पर विचार करेंगे कि प्रत्यक्ष और चिकित्सीय साक्ष्य के बीच विरोधाभास है, यह भी दलील दी गई है कि अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3 के अनुसार मृतका की हत्या दरांती से की गई है, जो अभियुक्त/अपीलार्थी गजू अपने साथ लिए हुए था, जबकि चिकित्सीय साक्ष्य के अनुसार मृत्यु का कारण श्वासावरोध है । यह दलील साक्ष्य के गलत परिशीलन पर आधारित है । अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3 ने अंधेरे अर्थात् अपनी टार्चों की सीमित रोशनी में घटना देखी थी कि रामपाल मृतका को दबोचे हुए था और गजू दरांती से उसके शरीर पर क्षतियां कारित कर रहा था । शवपरीक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श क-10) के अनुसार दो क्षतियां ठुड्डी के नीचे पाई गईं हैं, जो 4 सें.मी. × 0.5 सें.मी. तथा 5 सें.मी. × 1 सें.मी. माप के छिन्न घाव हैं और उनकी गहराई मांसपेशी तक है और द्वितीय क्षति प्रथम क्षति के ठीक नीचे है । शवपरीक्षण रिपोर्ट में अभिलिखित क्षति सं. 3 बहुत महत्वपूर्ण है । चिकित्सक के अनुसार, ग्रीवा के मध्य में विभिन्न आकार के खरोंचदार तीन नील पाए गए हैं । चिकित्सक ने विशिष्ट रूप से यह अभिलिखित किया है कि दोनों फेफड़े, ग्रसिका कंठनाल सिकुड़े हुए पाए हुए हैं और इन

संघटकों के आधार पर विशेषज्ञ के रूप में चिकित्सक की यह राय है कि गला घोंटने से हुए श्वासावरोध के कारण मृत्यु हुई है ।

17. रामपाल मृतका को आंगन में फर्श की ओर दबा रहा था और गजू ने क्षतियां पहुंचाई थीं । क्षतियां स्पष्ट रूप से अभियुक्त गजू द्वारा पहुंचाई गई थीं जिसके एक हाथ में दरांती थी और वह अपने दूसरे हाथ से मृतका की गर्दन पकड़े हुए था । मृतका की शक्ति से अधिक बल से दोनों अभियुक्त मृतका की गर्दन और उसके शरीर को फर्श की ओर दबा रहे थे जिसके कारण उसकी मृत्यु हो गई ।

18. हमने यह भी विचार किया है कि चिकित्सीय साक्ष्य और प्रत्यक्ष साक्ष्य के बीच कोई भी विभेद नहीं है और जब एक बार उनका संयुक्त रूप से परिशीलन किया जाता है तब इससे न तो अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3 के कथन और न ही शवपरीक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श क-10) को मिथ्या ठहराया जा सकता है । वास्तव में, दोनों को एक दूसरे के पूरक के रूप में पढ़ा जाना चाहिए । यदि थोड़ी देर के लिए हम यह उपधारित कर लें कि दोनों साक्ष्यों में कोई विभेद है, तब भी यह इतना तुच्छ और अपरिणामिक होगा कि इससे अभियुक्त को कोई फायदा नहीं पहुंचेगा । इस न्यायालय के अनेक विनिश्चयों में यह सिद्धांत बन गया है कि चिकित्सीय साक्ष्य और प्रत्यक्ष साक्ष्य के बीच विभेद का मूल्यांकन करते समय साक्षियों के प्रत्यक्ष साक्ष्य को ही प्राथमिकता दी जानी चाहिए । **कपिल देव मंडल और अन्य** बनाम **बिहार राज्य**[1], **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **कृष्ण गोपाल**[2], **भजनलाल** उर्फ **हरभजन सिंह और अन्य** बनाम **हरियाणा राज्य**[3] वाले मामलों में किए गए इस न्यायालय के निर्णयों का निर्देश किया जा सकता है ।

19. अब हम अभियुक्त की ओर से दी गई इस अंतिम दलील पर विचार करेंगे कि दरांती (प्रदर्श 2) और रक्तरंजित पायजामे (प्रदर्श क-5) के संबंध में सीरम विज्ञानी की कोई भी रिपोर्ट प्राप्त नहीं की गई है, अतः अभियोजन पक्षकथन असफल होना चाहिए । हम इस दलील से सहमत नहीं हैं । निःसंदेह ये दोनों प्रदर्श सीरम विज्ञानी की रिपोर्ट प्राप्त करने के लिए प्रयोगशाला को नहीं भेजे गए थे, किंतु मात्र उनके अभाव से अभियुक्त को कोई भी लाभ नहीं पहुंचेगा । यह अन्वेषण में आया दोष है ।

---

[1] (2008) 16 एस. सी. सी. 99.

[2] (1998) 4 एस. सी. सी. 302.

[3] (2011) 7 एस. सी. सी. 421.

त्रुटिपूर्ण अन्वेषण पर न्यायालय को अधिक गंभीरता से विचार नहीं करना चाहिए जब तक कि अभियोजन पक्षकथन की वास्तविक बुनियाद प्रभावित न हो । अभि. सा. 5 ने सम्यक् रूप से दरांती (प्रदर्श 2) और रक्तरंजित पायजामे (प्रदर्श क-5) की बरामदगी को साबित किया है और उसने सम्यक् रूप से न्यायालय में अपनी प्रतिपरीक्षा की परख कराई है । अन्वेषक अधिकारी ब्रह्म सिंह (अभि. सा. 6) द्वारा इन दोनों वस्तुओं की बरामदगी की गई है और न्यायालय के समक्ष ये बरामदगियां सम्यक् रूप से सिद्ध की गई हैं । इन बरामदगियों के साबित किए जाने और अभियोजन पक्षकथन का दो प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों अर्थात् अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3 तथा अभि. सा. 4 और अभि. सा. 5 जो घटनास्थल पर घटना के तत्काल पश्चात् मौजूद थे द्वारा सम्यक् रूप से समर्थन किए जाने पर किसी भी संदेह के परे अभियोजन पक्षकथन साबित हो जाता है ।

20. त्रुटिपूर्ण अन्वेषण के संबंध में इस न्यायालय ने **दयाल सिंह और अन्य** बनाम **उत्तरांचल राज्य**[1] वाले मामले में अन्वेषक अधिकारी द्वारा लोप और कार्यों और ऐसे मामलों में न्यायालय के कर्तव्य के संबंध में विचार करते हुए निम्न अभिनिर्धारित किया है :–

> "22. अब हम ऐसे मामलों में न्यायालय के कर्तव्य पर विचार करेंगे । साथी प्रसाद **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य [(1972) 3 एस. सी. सी. 613] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह कथन किया है कि यह सुस्थापित है कि यदि पुलिस अभिलेख संदिग्ध हो जाता है और अन्वेषण उपेक्षापूर्ण किया जाता है तब न्यायालय का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह इस पर विचार करे कि न्यायालय में दिए गए साक्ष्य का अवलंब लिया जाना चाहिए या नहीं और ऐसी खामियों को अनदेखा किया जाना चाहिए या नहीं । अन्वेषण में आने वाली अकल्पित त्रुटि की संभावना पर विचार करते हुए इस न्यायालय ने धनज सिंह **उर्फ** शेरा **बनाम** पंजाब राज्य [(2004) 3 एस. सी. सी. 654] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि त्रुटिपूर्ण अन्वेषण के मामले में न्यायालय को साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय सतर्क रहना चाहिए । किंतु मात्र त्रुटि के आधार पर अभियुक्त को दोषमुक्त करना उचित नहीं होगा; और यदि अन्वेषण अकल्पित रूप से त्रुटिपूर्ण है तब ऐसा करना अन्वेषक अधिकारी द्वारा मनमानी करना

---

[1] 2012 (7) स्केल 165.

कहा जाएगा ।"

23. लोप और कार्य के मामलों पर विचार करते हुए न्यायालय ने पारस यादव **बनाम** बिहार राज्य [ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 644] वाले मामले में पूर्व निर्णयों के अनुसरण में सिद्धांत प्रतिपादित किए हैं कि यदि अन्वेषण अभिकरण द्वारा खामी या लोप उपेक्षापूर्ण या अन्यथा किए जाते हैं तब अभियोजन साक्ष्य पर असंबद्ध रूप से विचार किया जाना अपेक्षित है ताकि यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि उक्त साक्ष्य का अवलंब लिया जा सकता है या नहीं । अधिकारियों का दोषपूर्ण आचरण न्यायालयों द्वारा साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय आड़े नहीं आना चाहिए अन्यथा अकल्पित रिष्टि बनी रहेगी और शिकायतकर्ता पक्ष के साथ न्याय नहीं होगा । जाहिरा हबीबुल्लाह शेख और एक अन्य **बनाम** गुजरात राज्य और अन्य [(2006) 3 एस. सी. सी. 374] वाले मामले में न्यायालय ने दांडिक विचारण के मामले में साक्षियों की भूमिका के महत्व पर विचार किया है । विचारण प्रक्रिया की कोटि के महत्व और प्रधानता पर बेंथम के शब्दों के आधार पर विचार किया जा सकता है जिसने यह कथन किया है कि साक्षी न्यायालय के आंख और कान होते हैं । न्यायालय ने यह चेतावनी जारी की है कि ऐसी स्थितियों में एक ओर न्यायालय की और अधिक जिम्मेदारी है और दूसरी ओर न्यायालयों को गंभीरतापूर्वक उन व्यक्तियों पर विचार करना चाहिए जो अकल्पित अन्वेषण करने में सम्मिलित हैं । न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि साक्षी, आहत या इत्तिलाकर्ता के सिखाए पढ़ाए जाने पर प्रतिषेध को प्रभावी बनाने के लिए विधायी तरीके आज की अपरिहार्य आवश्यकता बन चुके हैं । ऐसे आचरणों पर, जो अवैधानिक रूप से न्यायालयों के समक्ष चल रही कार्यवाहियों में साक्ष्य की प्रस्तुति को प्रभावित करते हैं, गंभीरतापूर्वक और कड़े रूप में विचार किया जाना चाहिए । अभियुक्त के हित की संरक्षा के लिए कोई भी असम्यक् चिंता नहीं की जानी चाहिए । जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, समाज की आवश्यकताओं को देखते हुए ऐसा किया जाना अनुचित होगा । इसके प्रतिकूल, यह प्रयास किया जाना चाहिए कि निष्पक्ष विचारण किया जाए जिसमें अभियुक्त और अभियोजन पक्ष दोनों निष्पक्ष रूप से कार्यवाही करें । उचित न्याय प्रशासन में लोक हित किया जाना चाहिए जो कि उतना ही महत्वपूर्ण है जितना किसी एक अभियुक्त

का हित महत्वपूर्ण होता है । न्यायालयों को महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करना चाहिए ।

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

24. समय बीतने के साथ, विधि का विकास हुआ है और न्यायालय की इतरोक्ति इस बात पर बल देती है कि आपराधिक मामले में, पक्षकारों की इच्छा पर यह पूर्णतया नहीं छोड़ा जा सकता है कि कार्यवाहियां किस प्रकार चलाई जाएं । अपराध एक सामाजिक बुराई है जिसमें जनता के अधिकारों और कर्तव्यों का भंग और अतिक्रमण होता है जिससे संपूर्ण समुदाय प्रभावित होता है और सामान्यतः समाज के लिए हानिकर है ।

25. इस न्यायालय ने राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग **बनाम** गुजरात राज्य [(2009) 6 एस. सी. सी. 767] वाले मामले में उपरोक्त सिद्धांत को दोहराते हुए यह अभिनिर्धारित किया है –

> "निष्पक्ष विचारण की अवधारणा के अंतर्गत यह आता है कि अभियुक्त, आहत और समाज के हितों का सामान्य आकलन किया जाना चाहिए और यह समाज ही है जो राज्य और अभियोजनकारी अभिक्रमों में कार्य करता है । समाज के हित की पूर्णतया अवहेलना इस रूप में नहीं की जानी चाहिए कि वह कोई अग्राह्य व्यक्ति है । यह विचार किया गया है कि न्याय प्रशासन में जनता का विश्वास जीतना न्यायालयों का सदैव अभिभावी कर्तव्य है जिसे प्रायः विधि की सर्वोच्चता सही ठहराना और कायम रखने के लिए निर्दिष्ट किया जाता है । सम्यक् न्याय प्रशासन को सदैव एक निरंतर प्रक्रिया माना गया है जो किसी एक मामले को विनिश्चित करने तक सीमित नहीं है जो भविष्य में न्यायालय के रूप में कार्य करने के लिए उसकी सक्षमता की संरक्षा उसी प्रकार करेगा जिस प्रकार उसके समक्ष मामले में की गई है । यदि दंड न्यायालय को न्याय करने के लिए कारगर भूमिका निभानी है, तब पीठासीन न्यायाधीश को सच्चाई का पता लगाने के लिए और दोनों पक्षकारों और समुदाय जिसके प्रति कर्तव्यबद्ध है के प्रति ऋजुता और निष्पक्षता से न्याय करने के लिए और सही निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए आवश्यक विचारण बुद्धिमत्ता, सक्रिय रुचि और

सभी सुसंगत सामग्रियों का पता लगाने में भागीदार बनकर मात्र दर्शक और अभिलेखन मशीन नहीं बना रहना चाहिए । दांडिक न्याय करने वाले न्यायालय कार्यवाहियों के दौरान तंग करने वाले या अन्यायपूर्ण आचरण के प्रति आंखें नहीं मूंद सकता, चाहे निष्पक्ष विचारण क्यों न संभव हो, परंतु निष्पक्ष और स्वतंत्र न्यायनिर्णायक के रूप में न्यायाधीशों की भूमिका का महत्व कम नहीं होना चाहिए ।"

26. कर्नाटक राज्य **बनाम** यरप्पा रेड्डी [(2000) एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 61] वाले मामले में इस न्यायालय ने त्रुटिपूर्ण अन्वेषण के ऐसे ही प्रश्न पर विचार किया कि क्या रोजनामचे में किए गए किसी भी छलसाधन को अभियोजन पक्षकथन के विरुद्ध प्रस्तुत किया जा सकता है या नहीं । इस न्यायालय ने निर्णय के पैरा 19 में निम्न अभिनिर्धारित किया है –

19. क्या उपरोक्त निष्कर्ष (कि रोजनामचा असली है या नहीं) का इस मामले में के अन्य साक्ष्य से कोई भी अवश्यंभावी संबंध है । यदि संवीक्षा किए जाने पर अन्य साक्ष्य विश्वसनीय और स्वीकार्य पाया जाता है, तो क्या न्यायालय को अन्वेषक अधिकारी द्वारा अन्वेषण या असावधानीपूर्वक अभिलेख तैयार किए जाने के दौरान दर्शाए गए मशीनीकरण से सहमत होना चाहिए ? मार्गदर्शक सिद्धांत यह हो सकता है कि चूंकि अन्वेषण ऐसा एकमात्र क्षेत्र नहीं है जिसमें दांडिक विचारण के संबंध में न्यायिक संवीक्षा की जाए, इसलिए मामले में न्यायालय द्वारा निकाला गया निष्कर्ष मात्र अन्वेषण की सत्यनिष्ठा पर निर्भर किए जाने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है । यह लगभग सुस्थापित है कि यदि अन्वेषण अवैध या संदिग्ध है, तब भी शेष साक्ष्य की संवीक्षा इस बात से हटकर की जानी चाहिए । अन्यथा दांडिक विचारण मनमानी करने वाले अन्वेषक अधिकारी के हाथों में रह जाएगा । न्यायालय को अन्वेषक अधिकारियों द्वारा की गई कार्रवाई की तुलना में दांडिक विचारण को प्रधानता और अग्रता देनी चाहिए । अन्वेषक अधिकारियों द्वारा मामले में कारित की गई गलतियों के लिए दंड न्याय को अभिशाप नहीं बनना चाहिए । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि यदि न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि

घटना के साक्षी का परिसाक्ष्य सत्य है, तब न्यायालय उसके आधार पर कार्यवाही करने के लिए स्वतंत्र है भले ही मामले में अन्वेषक अधिकारी की भूमिका संदिग्ध हो ।"

27. राम बली **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य [(2004) 10 एस. सी. 598] वाले मामले में करनैल सिंह **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य [(1995) 5 एस.सी. सी. 518] वाला निर्णय दोहराया गया और इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि त्रुटिपूर्ण अन्वेषण के मामले में साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय न्यायालय को सतर्क रहना चाहिए । किंतु केवल त्रुटि के आधार पर अभियुक्त को दोषमुक्त करना उचित नहीं होगा ; यदि अन्वेषण अकल्पिक रूप से त्रुटिपूर्ण है तब अभियुक्त को दोषमुक्त करना अन्वेषक अधिकारी के हाथों की कठपुतली बनने की कोटि में आएगा ।

28. जहां हमारे दांडिक न्याय तंत्र के अंतर्गत निष्पक्ष विचारण किए जाने और दोषी साबित किए जाने तक अभियुक्त को निर्दोष मानने के सुरक्षोपाय का उपबंध किया गया है वहीं यह भी अनुध्यात किया गया है कि दांडिक विचारण का अर्थ अभियुक्त और समाज अर्थात् सभी के साथ न्याय करना है और अभियोजन पक्ष को अपना पक्ष कथन साबित करने के लिए निष्पक्ष रूप से अवसर दिया जाना है । केवल तब ही कानून और व्यवस्था बनी रहेगी । न्यायालय का मात्र यही कर्तव्य नहीं है कि वह यह सुनिश्चित करे कि किसी भी निर्दोष व्यक्ति को दंडित न किया जाए अपितु उसका यह भी कर्तव्य है कि दोषी व्यक्ति बचकर न निकल जाए । दोनों कार्य न्यायाधीश के लोक कर्तव्य हैं । विचारण के दौरान विद्वान् पीठासीन न्यायाधीश से यह प्रत्याशा की जाती है कि वे वस्तुपरक रूप से कार्य करें और सही दृष्टिकोण अपनाए । यदि अभियोजन पक्ष बिना सोचे समझे किए गए या अकल्पित त्रुटिपूर्ण अन्वेषण के आधार पर विचारण का विमार्ग दर्शन करे तब न्यायालय को अत्यधिक सावधानी बरतनी चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि ऐसे प्रयास के बावजूद निश्चयात्मक प्रक्रिया सहायक नहीं है । 'निष्पक्ष विचारण' के उद्देश्य को सही मायनों में पूरा करने के लिए न्यायालय को न्याय करने तथा समाज के हित की संरक्षा करने के लिए कोई भी कमी नहीं करनी चाहिए ।

29. इससे हमारा ध्यान आनुषंगिक मुद्दे की ओर जाता है कि न्यायालय को ऐसे मामलों में किस प्रकार साक्ष्य का मूल्यांकन करना

चाहिए । प्रदर्शों, चिकित्सीय और प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य में कुछ विभिन्नताओं के आ जाने से इनकार नहीं किया जा सकता है । किंतु ऐसा नहीं है कि छोटी-मोटी प्रत्येक विभिन्नता या असंगतता से अभियुक्त के पक्ष में न्याय हो जाएगा । निःसंदेह, जहां विरोधाभास और विषमताएं ऐसी गंभीर प्रकृति की हों, जो स्पष्ट या विवक्षित रूप से साबित किए जाने वाले सारभूत मामले के लिए हानिकर हों, उनसे अभियुक्त को लाभ पहुंच सकता है । आम तौर पर न्यायालय विशेषज्ञ द्वारा दिए गए साक्ष्य को यूं ही स्वीकार कर लेते हैं किंतु यह भी उतना ही सत्य है कि न्यायालय विशेषज्ञों की रिपोर्ट से पूरी तरह सहमत नहीं होते हैं विशेषकर यदि ऐसी रिपोर्टें सरसरी, न टिक सकने वाली हों और अभियोजन पक्ष का विमार्ग दर्शन करके प्राप्त की गई हों । कमलजीत सिंह **बनाम** पंजाब राज्य [2004 क्रि. ला ज. 28] वाले मामले में, प्रत्यक्षदर्शी और चिकित्सीय साक्ष्य के बीच फर्कों पर विचार करते समय न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है, 'सुज्ञात विधि यह है कि चिकित्सीय साक्ष्य और प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य के बीच तुच्छ विरोधाभास होने से प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य का महत्व कम नहीं हो जाता । जब तक कि चिकित्सीय साक्ष्य इतना भिन्न न हो कि प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों द्वारा बताई गई रीति से भिन्न रीति में क्षतियां कारित की गई हों, तब तक प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के परिसाक्ष्य को त्यक्त नहीं किया जा सकता ।'

30. जहां प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का साक्ष्य विश्वसनीय और विश्वासप्रद पाया जाए, वहां आनुकल्पिक संभाव्यता की ओर इशारा करने वाली चिकित्सीय राय को निश्चायक के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है । यह प्रत्याशा की जाती है कि विशेषज्ञ साक्षी से वह ऐसी सभी सामग्री न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करें जिसके आधार पर उसने अपना निष्कर्ष निकाला है और जिसके आधार पर उसने विज्ञान के शब्दों की परिभाषा देते हुए मामले के तकनीकी पहलू पर न्यायालय को समझाया है ताकि न्यायालय यद्यपि वह विशेषज्ञ नहीं है, विशेषज्ञ की राय को महत्व देते हुए सभी सामग्रियों पर स्वयं अपना निर्णय दे सके क्योंकि जब एक बार विशेषज्ञ की राय स्वीकार कर ली जाती है, तब वह राय किसी चिकित्सा अधिकारी की राय नहीं रह जाती है अपितु वह न्यायालय की राय बन जाती है । मदन

गोपाल काकड **बनाम** नवल दूबे और एक अन्य [(1992) 2 एस. सी. आर. 921 = (1992) 3 एस. सी. सी. 2004] वाला मामला देखिए ।"

21. जब उपरोक्त सिद्धांतों के आधार पर वर्तमान मामले पर विचार किया जाता है, तब यह स्पष्ट हो जाता है कि अन्वेषण में की गई त्रुटि या अन्वेषक अधिकारी द्वारा किए गए लोप से अभियुक्त को कोई भी लाभ नहीं पहुंच सकता है । निःसंदेह अन्वेषक अधिकारी को प्रदर्श 2 और प्रदर्श क- 5 के संबंध में सीरम विज्ञानी द्वारा तैयार की गई रिपोर्ट प्राप्त करनी चाहिए थी और मृतक के रक्त ग्रुप के साथ उसका मिलान करना चाहिए था । इस तथ्य के बावजूद कि अभियुक्त की ओर से दी गई दलील में कोई सार नहीं है यह निश्चित है कि यह अन्वेषक अधिकारी द्वारा की गई गलती है जिसे न्यायालय द्वारा अनदेखा नहीं किया जा सकता ।

22. ऊपर अभिलिखित कारणों के आधार पर, हम गुणता के अभाव में यह अपील खारिज करते हैं । तथापि, हम पुलिस महानिदेशक, उत्तराखंड को यह निदेश देते हैं कि वे अन्वेषण के दौरान की गई गंभीर गलतियों के लिए पुलिस उपनिरीक्षक ब्रह्म सिंह (अभि. सा. 6) के विरुद्ध अनुशासनिक कार्रवाई करें चाहे वह सेवा में हो या सेवानिवृत्त हो गया हो ।

23. पुलिस महानिदेशक उक्त अधिकारी के विरुद्ध अनुशासनिक कार्रवाई करें और यदि वह सेवानिवृत्त हो गया है तब सेवा नियमों के अनुसार उसकी पेंशन में कटौती करने/या रोक लगाने के संबंध में कार्रवाई करें । यदि सुसंगत नियमों में परिसीमा का उल्लेख है, तब भी वह लागू नहीं होगा क्योंकि इस न्यायालय के निदेशाधीन जांच की जा रही है ।

अपील खारिज की गई ।

अस./अनू.

———

[2013] 4 उम. नि. प. 42

राजेश अवस्थी

बनाम

नन्द लाल जायसवाल और अन्य

19 अक्तूबर, 2012

न्यायमूर्ति के. एस. राधाकृष्णन् और न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा

विद्युत अधिनियम, 2003 (2003 का 36) – धारा 85(5) – राज्य विद्युत विनियामक आयोग – अध्यक्ष की नियुक्ति – इस संबंध में समाधान कर लेने का उत्तरदायित्व चयन समिति का है कि राज्य विद्युत विनियामक बोर्ड के अध्यक्ष/सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिए जिस व्यक्ति के नाम की सिफारिश की गई है उसका ऐसा कोई वित्तीय या अन्य हित नहीं है जिससे अध्यक्ष के रूप में उसके कृत्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है और चयन समिति द्वारा यह कृत्य सरकार को नहीं सौंपा जा सकता है ।

इस मामले में प्रश्न यह है कि क्या उच्च न्यायालय का यह अभिनिर्धारित करते हुए अधिकार-पृच्छा की रिट जारी करना न्यायोचित था कि अपीलार्थी को इस आधार पर उत्तर प्रदेश विद्युत विनियामक आयोग के अध्यक्ष के रूप में बने रहने का कोई प्राधिकार नहीं है कि चयन समिति ने विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 85 की उपधारा (5) का अनुपालन नहीं किया था । आयोग के अध्यक्ष का पद तारीख 21 अक्तूबर, 2008 को खाली हुआ था । उत्तर प्रदेश सरकार ने अधिनियम की धारा 85(1) के अधीन प्रदत्त अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए उत्तर प्रदेश विद्युत विनियामक आयोग के अध्यक्ष के रिक्त पद पर नियुक्ति करने के लिए अधिसूचना द्वारा अध्यक्ष के चयन को अंतिम रूप देने के लिए एक चयन समिति का गठन किया था जिसमें तीन सदस्य थे, जिसका अध्यक्ष उच्च न्यायालय का एक सेवानिवृत्त न्यायाधीश था और उसमें दो अन्य सदस्य, अर्थात्, उत्तर प्रदेश राज्य के मुख्य सचिव और केन्द्रीय विद्युत आयोग के अध्यक्ष थे । विभिन्न प्राधिकारियों को सूचित करते हुए आवेदन आमंत्रित किए गए थे । अपीलार्थी सहित तीस व्यक्तियों ने इस पद के लिए आवेदन किया था । चयन समिति ने योग्यता के आधार पर दो व्यक्तियों का चयन किया था और उसके द्वारा दो नामों का पैनल उत्तर प्रदेश सरकार के पास

भेजा गया था जिसमें अपीलार्थी के नाम के सामने तारकचिह्न लगाकर यह कथन किया गया था कि यदि उसे नियुक्त किया जाता है तो सरकार प्रथमतः यह सुनिश्चित करेगी कि अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (5) के उपबंधों का अनुपालन किया जाए । सरकार ने अपीलार्थी को आयोग के अध्यक्ष के रूप में नियुक्त कर दिया । अपीलार्थी ने उसी तारीख को राज्य सरकार को एक पत्र भेजा जिसमें यह कहा गया था कि उसने अपनी पूर्व नियुक्ति से त्यागपत्र दे दिया था और जैसा कि अधिनियम की धारा 85 के अधीन अपेक्षित है, उसने प्राइवेट सेक्टर के साथ अपने सभी संबंध समाप्त कर दिए थे । प्रस्तुत मामले में प्रथम प्रत्यर्थी ने, जो कि जल विद्युत यूनिट का महासचिव था, इलाहाबाद उच्च न्यायालय की लखनऊ पीठ के समक्ष एक रिट याचिका फाइल की जिसके द्वारा अपीलार्थी की नियुक्ति को विभिन्न आधारों पर चुनौती देते हुए अधिकार-पृच्छा की रिट जारी करने की ईप्सा की गई थी । इस दलील के अलावा कि चयन समिति ने अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (5) में अंतर्विष्ट उपबंधों का अनुसरण नहीं किया था, यह भी अभिकथित किया गया था कि अपीलार्थी का चयन नहीं किया जा सकता था चूंकि वह चयन के समय जे. पी. पावर वेंचर लिमिटेड के संयुक्त अध्यक्ष के रूप में कार्य कर रहा था, इसलिए उस कंपनी में उसके वित्तीय और अन्य हित थे जिनसे आयोग के अध्यक्ष के रूप में उसके कृत्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा । इसके अलावा, यह भी इंगित किया गया था कि चयन प्रक्रिया आरंभ करने से पूर्व उत्तर प्रदेश विद्युत विनियामक आयोग (अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति और सेवा की शर्तें) नियम, 1999 में अधिकथित प्रक्रिया का भी अनुपालन नहीं किया गया था । अपीलार्थी ने प्रथम प्रत्यर्थी के सुने जाने के अधिकार को प्रश्नगत किया और यह दलील दी कि वह इस पद के लिए प्रत्याशी नहीं था और यह कि रिट याचिका आयोग के अध्यक्ष के रूप में कार्यभार ग्रहण करने के दो वर्ष से अधिक की अवधि के पश्चात् फाइल की गई थी । चयन समिति के तारीख 26 दिसम्बर, 2008 के कार्यवृत्त के प्रति निर्देश करते हुए यह उल्लेख किया गया था कि चयन वैध रूप से किया गया था और योग्यता के आधार पर बनाए गए पैनल में अपीलार्थी का रैंक प्रथम था और धारा 85 की उपधारा (5) का भी अनुपालन किया गया था । इसके अलावा, यह कथन किया गया था कि अपीलार्थी का जे. पी. पावर वेंचर लिमिटेड में वित्तीय या कोई अन्य हित नहीं था जिससे कि अध्यक्ष के रूप में उसके कृत्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सके । किसी भी दृष्टि से यह इंगित किया गया था कि उसने उस पद से पहले ही त्यागपत्र दे दिया था । उच्च न्यायालय ने परस्पर-

विरोधी दलीलों पर विचार करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि चयन समिति अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (5) के उपबंधों का अनुसरण करने में असफल रही थी, इसलिए वह नियुक्ति दूषित थी और अपीलार्थी को अध्यक्ष का पद धारण करने का कोई प्राधिकार नहीं था । इसके अतिरिक्त, यह भी निष्कर्ष निकाला गया था कि चयन समिति को अधिनियम की धारा 85(5) के अधीन उसे प्रदत्त शक्तियों को राज्य सरकार को प्रत्यायोजित करने की कोई शक्ति नहीं थी । न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि प्रथम प्रत्यर्थी को रिट याचिका फाइल करने का पर्याप्त विधिक अधिकार था और न्यायालय में समावेदन करने में विलंब कोई आधार नहीं था, चूंकि ऐसे व्यक्ति को जिसे कानूनी उपबंधों के प्रतिकूल नियुक्त किया गया था, उस पद को धारण करने का कोई विधिक अधिकार नहीं था । अतः, उच्च न्यायालय ने रिट याचिका मंजूर कर ली, अधिकार-पृच्छा की रिट जारी कर दी और अपीलार्थी की नियुक्ति को अवैध और शून्य घोषित करते हुए उसे अभिखंडित कर दिया । इसके विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में प्रस्तुत अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – (न्यायमूर्ति के एस. राधाकृष्णन् के मतानुसार) – विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 85 के अनुसार, चयन समिति को अध्यक्ष के पद को भरने के लिए दो नामों के पैनल की सिफारिश करनी होती है किन्तु चयन समिति को अध्यक्ष के रूप में नियुक्ति के लिए किसी व्यक्ति की सिफारिश करने से पूर्व अपना यह समाधान करना होता है कि ऐसे व्यक्ति का कोई वित्तीय या अन्य हित नहीं है जिससे अध्यक्ष के रूप में उसके कृत्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है । राज्य सरकार को अधिनियम की धारा 82(5) के अधीन चयन समिति की सिफारिश पर अध्यक्ष को नियुक्त करना होता है । (पैरा 11)

अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (5) में प्रयुक्त भाषा के बारे में कोई भी संदेह नहीं है, जिसका निर्वचन करने की आवश्यकता नहीं है । उसके शब्द अत्यंत स्पष्ट, निसंदिग्ध हैं और जब उन्हें शाब्दिक रूप से पढ़ा जाता है तो हमें इस संबंध में कोई संदेह नहीं है कि अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (5) के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग चयन समिति द्वारा और केवल समिति द्वारा न कि सरकार द्वारा किया जाना होता है । धारा 85 की उपधारा (5) में प्रयुक्त कुछ शब्दों का पर्याप्त महत्व है, अतः हम उन शब्दों पर कुछ जोर देते हैं, जैसे "सिफारिश करने से पूर्व", "चयन

समिति यह समाधान करेगी" और "अपना" । विधान-मंडल ने इस तथ्य पर जोर दिया है कि 'चयन समिति को अपना समाधान करना है', इसका अभिप्राय यह है कि अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (5) में जो कुछ परिकल्पित है वह सरकार का समाधान नहीं है बल्कि चयन समिति का समाधान है । यह प्रश्न कि क्या उन व्यक्तियों का जिनके नाम पैनल में दिए गए हैं, कोई वित्तीय या अन्य हित है जिससे अध्यक्ष के रूप में उसके कृत्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है, ऐसा मामला है जो चयन समिति के समाधान पर निर्भर करता है और वह समाधान किसी व्यक्ति की अध्यक्ष के रूप में नियुक्ति करने के लिए राज्य सरकार को सिफारिश करने से पूर्व किया जाना चाहिए । सरकार चयन समिति से अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (5) का सम्यक् अनुपालन करने के पश्चात् सिफारिशें प्राप्त करने के पश्चात् ही अपनी शक्तियों का प्रयोग कर सकेगी । चयन समिति ने उस उपबंध को पूर्णतः अनदेखा कर दिया है और वह कार्य राज्य सरकार को सौंप दिया है जो कि विधिक रूप से अननुज्ञेय है । राज्य सरकार ने भी, विवेक का प्रयोग किए बिना और उस कानूनी उपबंध को अनदेखा करके अपीलार्थी को नियुक्त कर दिया है । (पैरा 15)

अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (5) का अननुपालन कोई प्रक्रियात्मक अतिक्रमण नहीं है क्योंकि इससे नियुक्ति का आधार ही प्रभावित होता है जो कि एक ऐसी आज्ञापक अपेक्षा है जिसका चयन समिति को किसी व्यक्ति की अध्यक्ष के पद पर सिफारिश करने से पूर्व पालन करना होता है । हमारा यह मत है कि अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (5) के अननुपालन से संपूर्ण चयन प्रक्रिया दूषित हो जाएगी चूंकि राज्य सरकार को सिफारिश करने से पूर्व इसका अनुसरण किया जाना आशयित है । आज्ञापक अपेक्षाओं के अननुपालन के परिणामस्वरूप चयन प्रक्रिया अकृत हो जाती है जब तक कि यह दर्शित नहीं कर दिया जाता है कि उस अपेक्षा का पालन करना असंभव था या कानूनी रूप से उसका अधित्यजन किया जा सकता था । "किसी व्यक्ति की सिफारिश करने से पूर्व" अभिव्यक्ति से स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित होता है कि यह एक ऐसी आज्ञापक अपेक्षा है जिसका अनुसरण चयन समिति को अध्यक्ष के पद पर किसी व्यक्ति के नाम की सिफारिश करने से पूर्व करना होता है । "पूर्व" अभिव्यक्ति से स्पष्ट रूप से विधान-मंडल का आशय उपदर्शित करती है । अतः, न्यायालय विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल की इस दलील को स्वीकार करने में कठिनाई महसूस करता है कि चूंकि यह एक प्रक्रियात्मक उपबंध है और अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (5) का अननुपालन एक ऐसी त्रुटि है

जिसे सिफारिश को चयन समिति के पास अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (5) का अनुपालन करने के लिए वापस भेजकर सुधारा जा सकता है । अतः, न्यायालय उच्च न्यायालय से इस बारे में सहमत है कि अपीलार्थी की नियुक्ति अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (5) का स्पष्टतः अतिक्रमण करते हुए की गई थी और परिणामस्वरूप उसे आयोग के अध्यक्ष का पद धारण करने का कोई प्राधिकार नहीं है और उच्च न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित करके सही किया है । (पैरा 21 और 22)

(**न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा के मतानुसार**) – कोई नागरिक अधिकार-पृच्छा की रिट का दावा कर सकता है और उसकी स्थिति वक्ता की होती है । यह आवश्यक नहीं है कि उसका कोई विशेष हित या व्यक्तिगत हित हो । वास्तविक परीक्षण यह देखना है कि क्या पद धारण करने वाला व्यक्ति उस पद को विधि के अनुसार धारित करने के लिए प्राधिकृत है अथवा नहीं । विलंब और अतिविलंब मुकदमे के संबंध में गुणागुण के आधार पर कार्यवाही करने के लिए कोई अड़चन पैदा नहीं करते हैं । (पैरा 28)

धारा 85(5) का विश्लेषण करने पर यह सुस्पष्ट है कि चयन समिति, राज्य आयोग के अध्यक्ष या किसी सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिए किसी व्यक्ति की सिफारिश करने से पूर्व अपना यह समाधान करेगी कि ऐसे व्यक्ति का ऐसा कोई वित्तीय या अन्य हित नहीं है जिससे, यथास्थिति, अध्यक्ष या सदस्य के रूप में उसके कृत्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है । जैसा कि चयन समिति की कार्यवाहियों से प्रकट होगा, उसने दो अभ्यर्थियों के नामों की सिफारिश करने से पूर्व अपना समाधान लेखबद्ध नहीं किया था । यह सुस्पष्ट है कि चयन समिति ने अपने कृत्य का परित्याग कर दिया और राज्य सरकार के पास केवल फाइल भेज दी । इस उपबंध के स्पष्ट पठन से यह पूर्णतः स्पष्ट होता है कि चयन समिति विधि की दृष्टि से अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (5) के अधीन यथा-अनुबद्ध विभिन्न पहलुओं के संबंध में अपना समाधान करने के लिए आबद्ध है । यह स्पष्ट है कि उक्त कार्यवाही नहीं की गई है । अधिनियम की प्रस्तावना और राज्य आयोग पर आरोपित महत्वपूर्ण कृत्यों का परिशीलन करने पर इस संबंध में लेशमात्र भी संदेह नहीं है कि अध्यक्ष या किसी सदस्य का चयन अत्यंत महत्वपूर्ण होता है, विशेषकर तब जब उस रीति के बारे में कानूनी आदेश हो जिसमें चयन समिति को कार्यवाही करनी है । अधिनियम की धारा 85(5) में अंतर्निहित अनतिक्रमणीयता है और उसमें प्रयुक्त प्रत्येक शब्द का अर्थ उस संदर्भ में करना होता है जिसमें

विधायी आशय को ध्यान में रखा जाए । विधान के प्रयोजन और भाषा के पाठ पर ध्यान संकेन्द्रित होना चाहिए क्योंकि इसका विचलन करने से खतरनाक परिणाम निकलने की संभावना होती है । विनियामक आयोग एक विशेषज्ञीय निकाय है और ऐसी स्थिति में चयन आत्यंतिक रूप से अधिनियम की धारा 85 के अधीन प्रतिष्ठापित आज्ञापक प्रक्रिया के अनुसार ही करना होता है । (पैरा 33, 34, 36, 40 और 43)

प्रस्तुत मामले में चयन समिति उपबंध के अनुसार, जब विधान-मंडल ने "समाधान" शब्द का प्रयोग किया है, अपना समाधान करने के लिए बाध्य थी । इसमें समिति को एक सकारात्मक कार्य करने के लिए आदिष्ट किया गया है । इसके लिए समाधान उपदर्शित करने वाले कारण लेखबद्ध किए जाने चाहिए, जो कि युक्तियुक्त हो सकता है । समाधान लेखबद्ध करने का अभाव विधि की आज्ञा/आदेश के प्रतिकूल है और इससे वह विनिश्चय सूक्ष्म रूप से अतिसंवेदनशील बन जाता है । यह स्मरण रखना होगा कि राज्य आयोग को प्रदत्त शक्ति को ध्यान में रखते हुए, चयन का उत्तरदायित्व एक उच्च शक्तिप्राप्त चयन समिति को सौंपा गया है । चयन समिति यह लेखबद्ध करने के लिए वैध रूप से आबद्ध है कि उसका यह समाधान हो गया है कि अभ्यर्थी का कोई वित्तीय या अन्य हित नहीं है जिससे, यथास्थिति, अध्यक्ष या सदस्य के रूप में उसके कृत्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है । उक्त समाधान किसी व्यक्ति की नियुक्ति के लिए सिफारिश करने से पूर्व हो जाना चाहिए । यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि उक्त शक्ति का अधित्याग विधिसम्मत शासन का उल्लंघन करने की कोटि में आता है क्योंकि इससे न केवल विधि की आज्ञा की अवज्ञा होती है बल्कि विधि की मूलभूत निर्देशिका पर प्रहार-चिह्न का सृजन भी होता है । अतः, यह चयन दूषित है और यह कभी भी उपशम्यता के क्षेत्र के अंतर्गत नहीं आ सकता, क्योंकि चयन के प्रारंभ से ही कानून का अननुपालन हुआ है । (पैरा 45)

विधायिका ने कई अधिनियमितियों में विनियामक निकायों का सृजन किया है । कोई भी इस तथ्य को भुला नहीं सकता कि वैश्विक अर्थव्यवस्था में विनियामकों की आस्था पर जोर दिया गया है । शासन की विश्वसनीयता काफी हद तक इन विनियामक निकायों के कामकाज पर निर्भर करती है और इसलिए इनका चयन कानूनी उपबंधों के पूर्णतः अनुरूप होना चाहिए । इससे लोक आस्था को प्रोत्साहन मिलता है और यह अर्थव्यवस्था के क्रमबद्ध विकास में सहायक है । ऐसी संस्थाओं में विश्वास

करना प्रगति में सहायक होता है और अविश्वास से असाध्य अनिष्ट की तरह इसका क्षय होता है । प्रगति तभी होती है जब सुशासन होता है और सुशासन इस बात पर निर्भर करता है कि विधि किस प्रकार कार्यान्वित की जाती है । अधिनियम के उदेश्यों और कारणों और प्रस्तावना और आयोग के कृत्यों को ध्यान में रखते हुए निश्चयपूर्वक यह कहा जा सकता है कि कोई उदारता नहीं दिखाई जा सकती और जब चयन से संबंधित कानूनी उपबंध का पूर्ण रूप से अतिक्रमण किया गया हो तब शिथिलता अनुज्ञात नहीं की जा सकती । चिरकाल से यह कहा गया कि "कोई समाज तब सुशासित होता है जब वे लोग जो कर्णधार हैं, विधि की आज्ञा का पालन करते हैं"। किन्तु प्रस्तुत मामले में चयन समिति विधि की आज्ञा का पालन करने में असफल रही है जिसके परिणामस्वरूप अपीलार्थी का चयन किया गया है और इसलिए अंतिम परिणाम के रूप में चयन कायम रखे जाने योग्य नहीं रह जाता है । अपीलार्थी के चयन से यह स्पष्ट होता है कि विनिश्चय करने की प्रक्रिया में "बौद्धिक वस्तुपरकता" का अभाव है । यह स्मरणीय है कि रचनात्मक प्रज्ञा से उचित तर्काधार उत्पन्न होता है और उससे प्रदत्त शक्ति का विवेकपूर्ण प्रयोग प्रतिबिंबित होता है । इस प्रकृति की चयन प्रक्रिया में प्रज्ञा और उद्योग का सम्मिलित प्रभाव प्रतिबिंबित होना चाहिए । ऐसा इस कारण है कि जब दोनों का संयोग होता है तो उपबंध में यथा-प्रयुक्त सिफारिशें न केवल "अध्ययन-कक्ष में दीप" का बल्कि ऐसे "प्रकाश-स्तम्भ" का प्रयोजन पूरा करती हैं, जो कि चमकीला, स्पष्ट और पारदर्शी है । (पैरा 46 और 47)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2011]	(2011) 12 एस. सी. सी. 400 : **उत्तर प्रदेश पावर कारपोरेशन लिमिटेड** बनाम **नेशनल थर्मल पावर कारपोरेशन लिमिटेड और अन्य** ;	41
[2011]	(2011) 7 एस. सी. सी. 493 : **आई. टी. सी. लिमिटेड** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** ;	42
[2011]	(2011) 4 एस. सी. सी. 1 : **सेंटर फार पब्लिक इंटरेस्ट लिटीगेशन और एक अन्य** बनाम **भारत संघ और एक अन्य** ;	30

[2010]	(2010) 9 एस. सी. सी. 655 : **हरी बंश लाल** बनाम **सहोदर प्रसाद महतो और अन्य** ;	6, 16
[2009]	(2009) 8 एस. सी. सी. 273 : **महेश चन्द्र गुप्ता** बनाम **भारत संघ** ;	6
[2006]	(2006) 11 एस. सी. सी. 731 : **बी. श्रीनिवास रेड्डी** बनाम **कर्नाटक अर्बन वाटर सप्लाई एंड ड्रेनेज बोर्ड एम्पलाइज़ एसोसिएशन** ;	7, 16
[2006]	(2006) 11 एस. सी. सी. 731(I) : **सेवानिवृत्त सशस्त्र बल चिकित्सा संगम और अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य** ;	29
[2005]	(2005) 7 एस. सी. सी. 484 : **संगीता सिंह** बनाम **भारत संघ और अन्य** ;	39
[2003]	(2003) 4 एस. सी. सी. 712 : **गुजरात उच्च न्यायालय** बनाम **गुजरात किसान मजदूर पंचायत** ;	29
[2002]	(2002) 8 एस. सी. सी. 715 : **पश्चिमी बंगाल विद्युत विनियामक आयोग** बनाम **सी. ई. एस. सी. लिमिटेड** ;	41
[2002]	(2002) 6 एस. सी. सी. 269 : **मोर माडर्न को-आपरेटिव ट्रांसपोर्ट सोसाइटी लिमिटेड** बनाम **हरियाणा सरकार** ;	16
[2001]	ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 3435 : **बी. आर. कपूर** बनाम **तमिलनाडु राज्य और एक अन्य** ;	26
[1993]	(1993) 4 एस. सी. सी. 119 : **आर. के. जैन** बनाम **भारत संघ** ;	30
[1993]	ए. आई. आर. 1993 एस. सी. 1873 : **डा. काशीनाथ जी. जालमी और एक अन्य** बनाम **अध्यक्ष और अन्य** ;	28

[1988] [1988] 1 उम. नि. प. 353 =
ए. आई. आर. 1987 एस. सी. 1454 :
उत्कल कंट्रेक्टर्स जायनरी प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम **उड़ीसा राज्य और अन्य** ; 36

[1988] (1988) 4 एस. सी. सी. 284 :
आत्मा राम मित्तल बनाम **ईश्वर सिंह पुनिया** ; 37

[1982] (1982) 1 डब्ल्यू. एल. आर. 1155 :
चीफ कांस्टेबल आफ दि नार्थ वेल्स पुलिस बनाम **इवान्स** ; 48

[1981] (1981) 4 एस. सी. सी. 82 :
स्टेट बैंक आफ ट्रावनकोर बनाम **मोहम्मद** ; 21

[1975] (1975) ए. सी. 591 :
ब्लैक-क्लासन इंटरनेशनल लिमिटेड बनाम **पेपियरवेरके वाल्डोफ-एसचैफनबर्ग ए. जी.** ; 38

[1975] ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 1922 :
ए. पांडुरंगम राव बनाम **आन्ध्र प्रदेश राज्य और अन्य** ; 45

[1964] [1964] 4 एस. सी. आर. 575 =
ए. आई. आर. 1965 एस. सी. 491 :
मैसूर विश्वविद्यालय और एक अन्य बनाम **सी. डी. गोविन्द राव और एक अन्य** ; 6,27

[1953] [1953] एस. सी आर. 677 =
ए. आई. आर. 1953 एस. सी. 274 :
पोपटलाल शाह बनाम **मद्रास राज्य** ; 38

[1940] (1940) 3 आल इंग्लैंड ला रिपोर्ट्स 549 :
नोक्स बनाम **डेनकास्टर अमलगमेटेड कोलियरीज़ लिमिटेड** ; 14

[1916] (1916) 1 के. बी. 595 :
आर. बनाम **स्पेयर** ; 20

[1914-15] (1914-15) आल इंग्लैंड ला रिपोर्ट्स 1061 :
अटर्नी जनरल बनाम **मिल्ने** ; 14

[1846] (1846) 6 मूरे पी. सी. 1 :
क्राफोर्ड बनाम **स्पूनर** । 14

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2012 की सिविल अपील सं. 7600.

2011 की रिट याचिका सं. 1428 (एम/बी) में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की लखनऊ पीठ के तारीख 10 जनवरी, 2012 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

उपस्थित होने वाले पक्षकारों की ओर से सर्वश्री एल. नागेश्वर राव और रवीन्द्र श्रीवास्तव, ज्येष्ठ अधिवक्ता, गौरव भाटिया, अपर महाधिवक्ता, शैल कुमार द्विवेदी, गुन्ना वेंकटेश्वर राव, संजय कुमार विसेन, संतोष कृष्णन्, प्रशांत भूषण, देवव्रत, सी. डी. सिंह, (सुश्री) अइशा चौधरी, प्रशांत चौधरी, अनूप जैन और अंशुमन श्रीवास्तव

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति के. एस. राधाकृष्णन् ने दिया ।

न्या. राधाकृष्णन् – इजाजत दी जाती है ।

2. इस मामले में हमारा संबंध इस प्रश्न से है कि क्या उच्च न्यायालय का यह अभिनिर्धारित करते हुए अधिकार-पृच्छा की रिट जारी करना न्यायोचित था कि अपीलार्थी को इस आधार पर उत्तर प्रदेश विद्युत विनियामक आयोग (जिसे संक्षेप में 'आयोग' कहा गया है) के अध्यक्ष के रूप में बने रहने का कोई प्राधिकार नहीं है कि चयन समिति ने विद्युत अधिनियम, 2003 (जिसे संक्षेप में 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 85 की उपधारा (5) का अनुपालन नहीं किया था ।

3. आयोग के अध्यक्ष का पद तारीख 21 अक्तूबर, 2008 को खाली हुआ था । उत्तर प्रदेश सरकार ने अधिनियम की धारा 85(1) के अधीन प्रदत्त अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए तारीख 22 दिसम्बर, 2008 की अधिसूचना द्वारा अध्यक्ष के चयन को अंतिम रूप देने के लिए एक चयन समिति का गठन किया था जिसमें तीन सदस्य थे, जिसका अध्यक्ष उच्च न्यायालय का एक सेवानिवृत्त न्यायाधीश था और उसमें दो अन्य सदस्य,

अर्थात्, उत्तर प्रदेश राज्य के मुख्य सचिव और केन्द्रीय विद्युत आयोग के अध्यक्ष थे । विभिन्न प्राधिकारियों को, जिनमें भारत सरकार के मंत्रालय, नियंत्रक महालेखा परीक्षक, केन्द्रीय विद्युत प्राधिकरण, देश के विभिन्न राज्यों में कार्यरत विद्युत सचिव, केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड, विद्युत क्षेत्र के लोक सेक्टर उपक्रम भी हैं, सूचित करते हुए आवेदन आमंत्रित किए गए थे । अपीलार्थी सहित तीस व्यक्तियों ने इस पद के लिए आवेदन किया था । चयन समिति की बैठक तारीख 26 दिसम्बर, 2008 को हुई थी और चयन समिति ने योग्यता के आधार पर दो व्यक्तियों का चयन किया था, अर्थात्, अपीलार्थी और श्री अमित कुमार अस्थाना । चयन समिति द्वारा दो नामों का पैनल उत्तर प्रदेश सरकार के पास भेजा गया था जिसमें अपीलार्थी के नाम के सामने तारकचिह्न लगाकर यह कथन किया गया था कि यदि उसे नियुक्त किया जाता है तो सरकार प्रथमतः यह सुनिश्चित करेगी कि अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (5) के उपबंधों का अनुपालन किया जाए । सरकार ने अपीलार्थी को तारीख 29 दिसम्बर, 2008 को आयोग के अध्यक्ष के रूप में नियुक्त कर दिया । अपीलार्थी ने उसी तारीख को राज्य सरकार को एक पत्र भेजा जिसमें यह कहा गया था कि उसने अपनी पूर्व नियुक्ति से तारीख 27 दिसम्बर, 2008 को त्यागपत्र दे दिया था और जैसा कि अधिनियम की धारा 85 के अधीन अपेक्षित है, उसने प्राइवेट सेक्टर के साथ अपने सभी संबंध समाप्त कर दिए थे ।

4. प्रस्तुत मामले में प्रथम प्रत्यर्थी ने, जो कि जल विद्युत यूनिट का महासचिव था, इलाहाबाद उच्च न्यायालय की लखनऊ पीठ के समक्ष एक रिट याचिका फाइल की जिसके द्वारा अपीलार्थी की नियुक्ति को विभिन्न आधारों पर चुनौती देते हुए अधिकार-पृच्छा की रिट जारी करने की ईप्सा की गई थी । इस दलील के अलावा कि चयन समिति ने अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (5) में अंतर्विष्ट उपबंधों का अनुसरण नहीं किया था, यह भी अभिकथित किया गया था कि अपीलार्थी का चयन नहीं किया जा सकता था चूंकि वह चयन के समय जे. पी. पावर वेंचर लिमिटेड के संयुक्त अध्यक्ष के रूप में कार्य कर रहा था, इसलिए उस कंपनी में उसके वित्तीय और अन्य हित थे जिनसे आयोग के अध्यक्ष के रूप में उसके कृत्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा । इसके अलावा, यह भी इंगित किया गया था कि चयन प्रक्रिया आरंभ करने से पूर्व उत्तर प्रदेश विद्युत विनियामक आयोग (अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति और सेवा की शर्तें) नियम, 1999 (जिन्हें संक्षेप में '1999 के नियम' कहा गया है) में अधिकथित प्रक्रिया का भी अनुपालन नहीं किया गया था । अपीलार्थी ने प्रथम प्रत्यर्थी के सुने जाने के

अधिकार को प्रश्नगत किया और यह दलील दी कि वह इस पद के लिए प्रत्याशी नहीं था और यह कि रिट याचिका आयोग के अध्यक्ष के रूप में कार्यभार ग्रहण करने के दो वर्ष से अधिक की अवधि के पश्चात् फाइल की गई थी । चयन समिति के तारीख 26 दिसम्बर, 2008 के कार्यवृत्त के प्रति निर्देश करते हुए यह उल्लेख किया गया था कि चयन वैध रूप से किया गया था और योग्यता के आधार पर बनाए गए पैनल में अपीलार्थी का रैंक प्रथम था और धारा 85 की उपधारा (5) का भी अनुपालन किया गया था । इसके अलावा, यह कथन किया गया था कि अपीलार्थी का जे. पी. पावर वेंचर लिमिटेड में वित्तीय या कोई अन्य हित नहीं था जिससे कि अध्यक्ष के रूप में उसके कृत्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सके । किसी भी दृष्टि से यह इंगित किया गया था कि उसने उस पद से तारीख 27 दिसम्बर, 2008 को त्यागपत्र दे दिया था ।

5. उच्च न्यायालय ने परस्पर-विरोधी दलीलों पर विचार करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि चयन समिति अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (5) के उपबंधों का अनुसरण करने में असफल रही थी, इसलिए वह नियुक्ति दूषित थी और अपीलार्थी को अध्यक्ष का पद धारण करने का कोई प्राधिकार नहीं था । इसके अतिरिक्त, यह भी निष्कर्ष निकाला गया था कि चयन समिति को अधिनियम की धारा 85(5) के अधीन उसे प्रदत्त शक्तियों को राज्य सरकार को प्रत्यायोजित करने की कोई शक्ति नहीं थी । न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि प्रथम प्रत्यर्थी को रिट याचिका फाइल करने का पर्याप्त विधिक अधिकार था और न्यायालय में समावेदन करने में विलंब कोई आधार नहीं था, चूंकि ऐसे व्यक्ति को जिसे कानूनी उपबंधों के प्रतिकूल नियुक्त किया गया था, उस पद को धारण करने का कोई विधिक अधिकार नहीं था । अतः, उच्च न्यायालय ने रिट याचिका मंजूर कर ली, अधिकार-पृच्छा की रिट जारी कर दी और अपीलार्थी की नियुक्ति को अवैध और शून्य घोषित करते हुए उसे अभिखंडित कर दिया ।

6. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल श्री एल. नागेश्वर राव ने यह दलील दी कि उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करके त्रुटि कारित की है कि अपीलार्थी की नियुक्ति अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (5) का अतिक्रमण करते हुए की गई थी । विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल ने हमारा ध्यान तारीख 26 दिसम्बर, 2008 को हुई समिति की बैठक के कार्यवृत्त की ओर दिलाया और यह इंगित

किया कि चयन समिति ने 30 अभ्यर्थियों के जीवन-वृत्तों की परीक्षा करने के पश्चात् एक पैनल तैयार किया जिसमें अपीलार्थी का नाम योग्यता-क्रम में पहले स्थान पर था । विद्वान् काउन्सेल के अनुसार, चयन समिति इस तथ्य से पूर्णतः भिज्ञ थी कि अपीलार्थी जे. पी. पावर वेंचर लिमिटेड का संयुक्त उपाध्यक्ष था और इसलिए उसके नाम के सामने तारकचिह्न लगाया था और राज्य सरकार को यह स्मरण कराया था कि यदि उसकी नियुक्ति की जाती है तो सर्वप्रथम अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (5) के उपबंधों का पालन सुनिश्चित किया जाना चाहिए । अतः, विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल ने यह दलील दी कि उस उपबंध का सारवान् अनुपालन किया गया था और यह हर दृष्टि से सुधार्य त्रुटि है जो कि प्रक्रियात्मक प्रकृति की है और अधिकार-पृच्छा की रिट जारी न की जाए, जो कि एक वैवेकिक उपचार है । **मैसूर विश्वविद्यालय और एक अन्य** बनाम **सी. डी. गोविन्द राव और एक अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय के प्रति निर्देश करते हुए विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल ने यह दलील दी कि समिति द्वारा पाई गई उपयुक्तता ऐसा मामला नहीं है जो अधिकार-पृच्छा की रिट के अधीन आने वाली कार्यवाही के अध्यधीन आता हो । विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल ने **महेश चन्द्र गुप्ता** बनाम **भारत संघ**[2], **हरी बंश लाल** बनाम **सहोदर प्रसाद महतो और अन्य**[3] वाले मामलों में इस न्यायालय के निर्णयों के प्रति भी निर्देश किया ।

7. विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल ने यह दलील दी कि मामले को किसी भी दृष्टि से देखते हुए अधिकार-पृच्छा की रिट वहां उद्भूत नहीं होगी जहां प्रश्नगत उल्लंघन सुधार्य, अतः, प्रक्रियात्मक प्रकृति का हो । मान लीजिए अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (5) का अननुपालन हुआ है, मामला चयन समिति के पास उस उपबंध का सम्यक् अनुपालन करने के लिए वापस भेजा जा सकता है । विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल ने यह दलील भी दी कि अधिकार-पृच्छा की रिट एक वैवेकिक उपचार है और इसलिए इस न्यायालय द्वारा यह मार्ग अपनाया जा सकता है । **बी. श्रीनिवास रेड्डी** बनाम **कर्नाटक अर्बन वाटर सप्लाई एंड ड्रेनेज बोर्ड एम्पलाइज़ एसोसिएशन**[4] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय के प्रति भी निर्देश किया गया था ।

---

[1] [1964] 4 एस. सी. आर. 575 = ए. आई. आर. 1965 एस. सी. 491.

[2] (2009) 8 एस. सी. सी. 273.

[3] (2010) 9 एस. सी. सी. 655.

[4] (2006) 11 एस. सी. सी. 731.

8. प्रथम प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउन्सेल श्री प्रशांत भूषण ने यह दलील दी कि उच्च न्यायालय यह निष्कर्ष निकालने के पश्चात् कि नियुक्ति अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (5) का घोर अतिक्रमण करके की गई थी, अधिकार-पृच्छा की रिट जारी करके सही किया था । विद्वान् काउन्सेल ने यह दलील दी कि 1999 के नियमों में अधिकथित प्रक्रिया का भी अनुपालन नहीं किया गया था । विद्वान् काउन्सेल ने अध्यक्ष के पद के लिए आवेदकों के जीवन-वृत्त के प्रति निर्देश करते हुए अन्य अभ्यर्थियों की योग्यता के साथ तुलना करने का प्रयास किया और यह दलील दी कि कई अभ्यर्थी, जिन्होंने आवेदन किया था, अपीलार्थी से काफी श्रेष्ठ थे । विद्वान् काउन्सेल ने यह भी दलील दी कि अपीलार्थी की नियुक्ति बाहरी कारणों से की गई थी और अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (5) और 1999 के नियमों का अननुपालन करने के अलावा योग्यता का निर्धारण उचित रूप से नहीं किया गया था । विद्वान् काउन्सेल ने यह भी इंगित किया है कि चूंकि अपीलार्थी चयन के समय जे. पी. पावर वेंचर लिमिटेड का, जो कि एक प्राइवेट कंपनी है, संयुक्त अध्यक्ष था, इसलिए वह अध्यक्ष का पद ग्रहण करने के लिए निरर्हित था चूंकि उसका वित्तीय और अन्य हित था जिससे अध्यक्ष के रूप में उसके कृत्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा । उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल श्री रवीन्द्र श्रीवास्तव ने यह दलील दी कि अपीलार्थी की नियुक्ति अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (5) और 1999 के नियमों का अतिक्रमण करके की गई थी और राज्य अधिनियम और 2008 के नियमों के, जो कि प्रवृत्त हैं, उपबंधों का अनुपालन करने के पश्चात् नए सिरे से चयन करने के लिए कदम उठा रहा है ।

9. हमने दोनों पक्षों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउन्सेलों को सुना है । हमारे समक्ष प्रथम प्रत्यर्थी को सुने जाने के अधिकार या अधिकार-पृच्छा की रिट की ईप्सा करते हुए रिट न्यायालय में समावेदन करने में हुए विलंब को गंभीरता से प्रश्नगत नहीं किया गया था या उस पर जोर नहीं दिया गया था । संपूर्ण बहस इस प्रश्न पर केन्द्रित है कि क्या अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (5) के उपबंधों का अनुपालन किया गया था अथवा नहीं । सुगम निर्देश के लिए धारा 85 इस प्रकार है :–

> "**धारा 85 – राज्य आयोग के सदस्यों का चयन करने के लिए चयन समिति का गठन** –
>
> (1) राज्य सरकार, राज्य आयोग के सदस्यों का चयन करने के

प्रयोजनों के लिए एक चयन समिति का गठन करेगी, जिसमें निम्नलिखित होंगे –

(क) एक व्यक्ति, जो उच्च न्यायालय का न्यायाधीश रहा है - अध्यक्ष

(ख) संबद्ध राज्य का मुख्य सचिव - सदस्य

(ग) प्राधिकरण का अध्यक्ष या केन्द्रीय आयोग का अध्यक्ष - सदस्य

परन्तु इस धारा की कोई बात अध्यक्ष के रूप में किसी ऐसे व्यक्ति, जो उच्च न्यायालय का न्यायाधीश है या रहा है, की नियुक्ति को लागू नहीं होगी ।

(2) राज्य सरकार, किसी अध्यक्ष या सदस्य की मृत्यु, त्यागपत्र या उसके हटाए जाने के कारण हुई किसी रिक्ति की तारीख से एक मास के भीतर और किसी अध्यक्ष या सदस्य की अधिवर्षिता या कालावधि की समाप्ति के छह मास पूर्व, रिक्ति को भरने के लिए चयन समिति को निर्देश करेगी ।

(3) चयन समिति, उसको निर्देश किए जाने की तारीख से तीन मास के भीतर अध्यक्ष और सदस्यों के चयन को अंतिम रूप देगी ।

(4) चयन समिति, उसे निर्देशित प्रत्येक रिक्ति के लिए दो नामों के एक पैनल की सिफारिश करेगी ।

(5) चयन समिति, राज्य आयोग के अध्यक्ष या अन्य सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिए किसी व्यक्ति की सिफारिश करने से पूर्व अपना यह समाधान करेगी कि ऐसे व्यक्ति का ऐसा कोई वित्तीय या अन्य हित नहीं है जिससे, यथास्थिति, अध्यक्ष या सदस्य के रूप में उसके कृत्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है ।

(6) अध्यक्ष या अन्य सदस्य की कोई नियुक्ति, केवल इस आधार पर अविधिमान्य नहीं होगी कि चयन समिति में कोई रिक्ति है ।"

10. विद्युत अधिनियम, 2003 विद्युत के उत्पादन, पारेषण, वितरण, व्यापार और उसके उपयोग और साधारणतः विद्युत उद्योग के विकास, उसमें प्रतिस्पर्धा के संवर्धन, उपभोक्ताओं के हित के संरक्षण और सभी

क्षेत्रों में विद्युत के प्रदाय के, विद्युत टैरिफ को युक्तिसंगत बनाने इत्यादि से संबंधित विधियों का समेकन करने के लिए अधिनियमित एक अधिनियम है । इस अधिनियम में केन्द्रीय विद्युत प्राधिकरण, विनियामक आयोग और अपील अधिकरण की स्थापना भी परिकल्पित है । राज्य विद्युत विनियामक आयोग (जिसे संक्षेप में 'राज्य आयोग' कहा गया है) का गठन अधिनियम की धारा 82 की उपधारा (1) के अधीन किया जाता है । अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (5) में यह कहा गया है कि राज्य आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा अधिनियम की धारा 85 के अनुसार चयन समिति की सिफारिश पर की जाएगी । अधिनियम की धारा 84 राज्य आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति के लिए अर्हताओं के संबंध में है, जो कि निम्नलिखित रूप में है :–

> "84. **राज्य आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति के लिए अर्हताएं** –
>
> (1) राज्य आयोग का अध्यक्ष और सदस्य योग्यता, कर्तव्यनिष्ठा और अनुभव रखने वाले ऐसे व्यक्ति होंगे जिनके पास इंजीनियरी, वित्त, वाणिज्य, अर्थशास्त्र, विधि या प्रबंध से संबंधित समस्याओं के बारे में कार्रवाई करने का पर्याप्त ज्ञान हो और उन्होंने उसमें क्षमता प्रदर्शित की हो ।
>
> (2) उपधारा (1) में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, राज्य सरकार ऐसे व्यक्तियों में से जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश हैं या रहे हैं, किसी व्यक्ति को अध्यक्ष के रूप में नियुक्त कर सकेगी ।"

11. अतः, अध्यक्ष योग्यता, कर्तव्यनिष्ठा और अनुभव रखने वाला व्यक्ति होगा और उसके पास इंजीनियरी, वित्त, वाणिज्य, अर्थशास्त्र, विधि या प्रबंध से संबंधित समस्याओं के बारे में कार्रवाई करने का पर्याप्त ज्ञान हो और उसने उसमें क्षमता प्रदर्शित की हो । धारा 85 के अनुसार, चयन समिति को अध्यक्ष के पद को भरने के लिए दो नामों के पैनल की सिफारिश करनी होती है किन्तु चयन समिति को अध्यक्ष के रूप में नियुक्ति के लिए किसी व्यक्ति की सिफारिश करने से पूर्व अपना यह समाधान करना होता है कि ऐसे व्यक्ति का कोई वित्तीय या अन्य हित नहीं है जिससे अध्यक्ष के रूप में उसके कृत्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की

संभावना है । राज्य सरकार को अधिनियम की धारा 82(5) के अधीन चयन समिति की सिफारिश पर अध्यक्ष को नियुक्त करना होता है ।

12. हमने चयन समिति की तारीख 26 दिसम्बर, 2008 को हुई बैठक के कार्यवृत्त का और राज्य आयोग के अध्यक्ष के पद के लिए आवेदकों के जीवन-वृत्त का भी परिशीलन किया है । कुछ अभ्यर्थियों के जीवन-वृत्तों के प्रति निर्देश करना उपयोगी है, अतः उसे नीचे दिया जाता है :–

उत्तर प्रदेश विद्युत विनियामक आयोग के अध्यक्ष पद के लिए आवेदकों के जीवन-वृत्त

क्रम सं. और नाम	जन्म की तारीख	शैक्षणिक अर्हता			कहां से सेवानिवृत्त	धारित पद	अनुभव
		शैक्षिक	वृत्तिक	विशेषज्ञता			
1. एस. के. शुक्ला	01-01-1950		बी. ई. (मेके. इंजी.)	एम. ई. (प्रोड. इंजी.)		निदेशक (तकनीकी) टेहरी हाइड्रो डेवेल्प. कारपोरेशन	33 वर्ष टी. एच. जी. सी. में
3. अनिल कुमार अरथाना	29-07-1952		बी. टैक. (इलैक्ट्रीकल)	एम. टैक. (पावर अप. एंड सिस्टम्स)		मुख्य इंजीनियर सिस्टम प्लानिंग एंड प्रोजेक्ट अप्रैज़ल के. वि. प्रा.	के. वि. प्रा. ट्रांसमिशन एंड ब्रिड आपरेशन में 33 वर्ष
18. यू. सी. मिश्रा	31-07-1949	बी. ई. (इलैक्ट्रीकल इंजी.)				अध्यक्ष, भाखड़ा ब्यास प्रबंध बोर्ड	4.5 वर्ष यू.पी.एस. ई. बी., 15 वर्ष एन. एच. पी. सी., 16 वर्ष पी. जी. सी. आई. एल., 3 वर्ष अध्यक्ष बी. बी. एम. बी.

24. जा. मनमोहन	21. एस. एम. अग्रवाल	20. राजेश अवस्थी
01-08-1946	15-06-1949	19-01-1950
बी. ई. (इलैक्ट्रीकल)	बी. एस-सी. (इलैक्ट्रीकल इंजी.)	सिविल एंड म्युनिसिपल इंजीनियरिंग ग्रेजुएट
एम. ई. (पावर सिस्टम)	एम. एस-सी. (इलैक्ट्रीकल इंजी.)	
पी-एच.डी. (विद्युत संयंत्र का वाणिज्यिक उपलभ्यता सूचकांक)		
सदस्य(तकनीकी) गुजरात ई. आर. सी.	महानिदेशक (प्रशिक्षण और मानव संसाधन विभाग) यू.पी.पी.सी.एल.	संयुक्त अध्यक्ष, जे. पी. पावर वेंचर्स
29.5 वर्ष के. वि. प्रा. 3 वर्ष एन. टी. पी. सी., 2 वर्ष लीबिया सरकार में ग्रेड 1 इंजीनियर के रूप में, चार वर्ष गुजरात ई. आर. सी. में	36 वर्ष यू. पी. एस. ई. बी./यू. पी. पी. सी. एल.	3 वर्ष केन्द्रीय डिजाइन संगठन, महाराष्ट्र, 7.5 वर्ष माइनिंग एंड एलाइड मशीनरी कं. लि. पश्चिमी बंगाल, 24.5 वर्ष एन. टी. पी. सी., 17.11.08 से संयुक्त अध्यक्ष जे. पी. पावर वेंचर्स लि.

13. कुछ अभ्यर्थियों के निदर्शी जीवन-वृत्तों से उनकी शैक्षिक अर्हताएं, वृत्तिक अनुभव, जिसमें विशेषज्ञता-क्षेत्र भी है, उपदर्शित होगा । अपीलार्थी की अर्हता, अनुभव और इस तथ्य को भी उपदर्शित किया गया है कि वह जे. पी. पावर वैंचर्स लिमिटेड का संयुक्त अध्यक्ष था । चयन समिति ने उसके नाम के सामने तारकचिह्न लगाया है और अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (5) का अनुपालन सुनिश्चित करने का काम सरकार पर छोड़ दिया है ।

14. हम धारा 85(5) के अर्थ और अंतर्वस्तु तथा इस बात की परीक्षा करेंगे कि उसका कोई निर्वचन किया जाना अपेक्षित है । लार्ड ब्रोघम ने **क्राफोर्ड** बनाम **स्पूनर**[1] वाले मामले में यह कहा है कि "हमें शब्दों को उसी रूप में लेना होता है जिसमें उन्हें विधान-मंडल ने दिया है और तब तक उसका वही अर्थ लगाना होता है जो उन शब्दों से स्वाभाविक रूप से विवक्षित होता है जब तक कि उन शब्दों का अर्थान्वयन या तो प्रस्तावना द्वारा या प्रश्नगत शब्दों के संदर्भ द्वारा नियंत्रित न हो या उसमें परिवर्तन न किया गया हो ।" विस्काउंट हलडेन ने **अटर्नी जनरल** बनाम **मिल्ने**[2] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि प्रयुक्त भाषा का "एक स्वाभाविक अर्थ है, हम उस अर्थ से तब तक विचलन नहीं कर सकते जब तक कानून को समग्र रूप से पढ़ने पर संदर्भ हमें ऐसा करने के लिए निदेशित न करता हो ।" विस्काउंट साइमन, एल. सी. ने **नोक्स** बनाम **डेनकास्टर अमलगमेटेड कोलियरीज़ लिमिटेड**[3] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है "स्वर्णिम नियम यह है कि किसी कानून के शब्दों को प्रथमदृष्ट्या उनका साधारण अर्थ प्रदान किया जाना चाहिए" । हाउस आफ लार्ड्स और इस न्यायालय द्वारा उक्त सिद्धांतों को अनेकों बार दोहराया गया है और इसलिए इन्हें और अधिक स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं है ।

15. हमें अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (5) में प्रयुक्त भाषा के बारे में कोई भी संदेह नहीं है, जिसका निर्वचन करने की आवश्यकता नहीं है । उसके शब्द अत्यंत स्पष्ट, निःसंदिग्ध हैं और जब उन्हें शाब्दिक रूप से पढ़ा जाता है तो हमें इस संबंध में कोई संदेह नहीं है कि अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (5) के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग चयन समिति द्वारा और केवल समिति द्वारा न कि सरकार द्वारा किया जाना होता है । धारा 85 की उपधारा (5) में प्रयुक्त कुछ शब्दों का पर्याप्त महत्व है, अतः हम उन शब्दों पर कुछ जोर देते हैं, जैसे "सिफारिश करने से पूर्व", "चयन समिति यह समाधान करेगी" और "अपना" । विधान-मंडल ने इस तथ्य पर जोर दिया है कि 'चयन समिति को अपना समाधान करना है', इसका अभिप्राय यह है कि अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (5) में जो कुछ परिकल्पित है वह सरकार का समाधान नहीं है बल्कि चयन समिति का समाधान है । यह प्रश्न कि क्या उन व्यक्तियों का जिनके नाम पैनल में

---

[1] (1846) 6 मूरे पी. सी. 1.

[2] (1914-15) आल इंग्लैंड ला रिपोर्ट्स 1061.

[3] (1940) 3 आल इंग्लैंड ला रिपोर्ट्स 549.

दिए गए हैं, कोई वित्तीय या अन्य हित है जिससे अध्यक्ष के रूप में उसके कृत्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है, ऐसा मामला है जो चयन समिति के समाधान पर निर्भर करता है और वह समाधान किसी व्यक्ति की अध्यक्ष के रूप में नियुक्ति करने के लिए राज्य सरकार को सिफारिश करने से पूर्व किया जाना चाहिए । सरकार चयन समिति से अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (5) का सम्यक् अनुपालन करने के पश्चात् सिफारिशें प्राप्त करने के पश्चात् ही अपनी शक्तियों का प्रयोग कर सकेगी । चयन समिति ने उस उपबंध को पूर्णतः अनदेखा कर दिया है और वह कार्य राज्य सरकार को सौंप दिया है जो कि विधिक रूप से अननुज्ञेय है । राज्य सरकार ने भी, विवेक का प्रयोग किए बिना और उस कानूनी उपबंध को अनदेखा करके अपीलार्थी को नियुक्त कर दिया है ।

16. अधिकार-पृच्छा की रिट तभी उद्भूत होगी जब नियुक्ति कानूनी उपबंधों के प्रतिकूल की जाती है । इस न्यायालय ने **मोर माडर्न को-आपरेटिव ट्रांसपोर्ट सोसाइटी लिमिटेड** बनाम **हरियाणा सरकार**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि अधिकार-पृच्छा की रिट तभी जारी की जा सकती है जब नियुक्ति कानूनी उपबंधों के प्रतिकूल की जाती है । **बी. श्रीनिवास रेड्डी** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने इस विधिक स्थिति को दोहराया है कि अधिकार-पृच्छा की रिट जारी करने की उच्च न्यायालय की अधिकारिता सीमित है और वह केवल तभी जारी की जा सकती है यदि नियुक्ति कानूनी नियमों के प्रतिकूल हो । इस न्यायालय ने **हरी बंश लाल** (उपर्युक्त) वाले मामले में उक्त स्थिति पर जोर दिया है जिसमें इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अधिकार-पृच्छा की रिट जारी करने के लिए उच्च न्यायालय को यह समाधान करना होता है कि नियुक्ति कानूनी नियमों के प्रतिकूल है ।

17. हमारा यह मत है कि इस न्यायालय द्वारा ऊपर उल्लिखित निर्णय में अधिकथित सिद्धांत इस मामले के तथ्यों को भी समान रूप से लागू होता है । हमारी सुविचारित राय में, प्रथम प्रत्यर्थी की नियुक्ति से अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (5) का अतिक्रमण हुआ है । परिणामस्वरूप, उसे उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत विनियामक आयोग के अध्यक्ष का पद धारण करने का कोई प्राधिकार नहीं है ।

18. हम प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा दी गई इन दलीलों के संबंध में कोई राय अभिव्यक्त नहीं करते हैं कि अपीलार्थी के जे. पी. पावर वेंचर्स लिमिटेड से

---

[1] (2002) 6 एस. सी. सी. 269.

संबंध थे । प्रथम प्रत्यर्थी के अनुसार, अपीलार्थी ने अपने तारीख 27 अगस्त, 2010 के आदेश द्वारा मैसर्स जे. पी. पावर वेंचर्स लिमिटेड के पक्ष में उच्चतर टैरिफ अधिकार का अनुमोदन किया था । हमने पहले ही यह निष्कर्ष निकाला है कि यह प्रश्न कि क्या अपीलार्थी का जे. पी. पावर के उपाध्यक्ष होने के कारण कोई वित्तीय या अन्य हित था जिससे अध्यक्ष के रूप में उसके कृत्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा, ऐसा मुद्दा था जिस पर चयन समिति को विचार करना चाहिए था । हम यह उल्लेख कर सकते हैं कि जब चयन समिति का गठन किया गया था, तब 1999 के नियम प्रवर्तन में थे और प्रस्तुत 2008 के नियम तारीख 1 जनवरी, 2009 को ही प्रवृत्त हुए थे । अधिनियम की धारा 85 के निबंधनानुसार, तत्समय विद्यमान 1999 के नियमों का भी बचाव किया गया था । 1999 के नियमों का नियम 3 अध्यक्ष के पद के लिए चयन प्रक्रिया के संबंध में है जो कि तात्विक रूप से 2008 के नियमों के लगभग समरूप है । नियम 3 का उपनियम (3) कुछ सुसंगत है इसलिए हम उसे उद्धृत करते हैं : –

> *"3(3) संयोजक, उपर्युक्त पदों के लिए किसी सदस्य का चयन करने के लिए, राज्य सरकारों और केन्द्रीय सरकार के विभिन्न विभागों, लोक और प्राइवेट उपक्रमों, औद्योगिक उद्यमों और विद्युत के उत्पादन, वितरण और प्रदाय में लगे संगठन, वित्तीय संस्थाओं, शैक्षणिक संस्थाओं और उच्च न्यायालय को अध्यपेक्षा भेजेगा और रिक्ति को राजपत्र में अधिसूचित करके पात्र व्यक्तियों से सीधे आवेदन भी आमंत्रित करेगा । पात्र व्यक्ति अपने आवेदन सीधे या उस अधिकारी या प्राधिकारी के माध्यम से, जिसके अधीन वे तत्समय कार्य कर रहे हैं, भेज सकेंगे ।"

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है : –

> "3(3) The convener shall send requisition for the selection of any member for the aforesaid posts to different departments of State Governments and Central Govt., Public and Private Undertakings, Industrial Enterprieses and to Organisation engaged in generation, distribution and supply of electricity, financial institutions, educational institutions and to the High Court and shall also invite applications directly from eligible persons by notifying the vacancy in the Government Gazette. The eligible persons may send their applications directly or through an officer or authority under whom he is for the time being working."

19. वर्तमान मामले में, अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (5) के अननुपालन के अलावा ऊपर उल्लिखित कानूनी अपेक्षाओं का भी पालन नहीं किया गया था ।

20. हम अपीलार्थी के विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल से इस संबंध में पूर्णतः सहमत हैं कि नियुक्ति के लिए किसी अभ्यर्थी की उपयुक्तता अधिकार-पृच्छा की रिट के क्षेत्र के अंतर्गत नहीं आती है और विधिक प्रतिपादना के संबंध में कोई विवाद नहीं हो सकता है । विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल ने यह भी दलील दी कि मान लीजिए कि चयन समिति ने अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (5) के अधीन अपने कृत्यों का निर्वहन नहीं किया था, तो भी यह केवल एक ऐसा लोप था जिसे चयन समिति को यह निदेश देकर सुधारा जा सकता था कि वह अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (5) की अपेक्षा का अनुपालन करे । विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल ने यह दलील दी कि चूंकि यह एक सुधार्य त्रुटि थी इसलिए अधिकार-पृच्छा की रिट जारी न की जाए चूंकि अधिकार-पृच्छा की रिट जारी करना इस न्यायालय के विवेकाधीन है । विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल ने **आर.** बनाम **स्पेयर**[1] वाले मामले में के निर्णय के प्रति निर्देश किया ।

21. हमारा यह मत है कि अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (5) का अननुपालन कोई प्रक्रियात्मक अतिक्रमण नहीं है क्योंकि इससे नियुक्ति का आधार ही प्रभावित होता है जो कि एक ऐसी आज्ञापक अपेक्षा है जिसका चयन समिति को किसी व्यक्ति की अध्यक्ष के पद पर सिफारिश करने से पूर्व पालन करना होता है । हमारा यह मत है कि अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (5) के अननुपालन से संपूर्ण चयन प्रक्रिया दूषित हो जाएगी चूंकि राज्य सरकार को सिफारिश करने से पूर्व इसका अनुसरण किया जाना आशयित है । आज्ञापक अपेक्षाओं के अननुपालन के परिणामस्वरूप चयन प्रक्रिया अकृत हो जाती है जब तक कि यह दर्शित नहीं कर दिया जाता है कि उस अपेक्षा का पालन करना असंभव था या कानूनी रूप से उसका अधित्यजन किया जा सकता था । "किसी व्यक्ति की सिफारिश करने से पूर्व" अभिव्यक्ति से स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित होता है कि यह एक ऐसी आज्ञापक अपेक्षा है जिसका अनुसरण चयन समिति को अध्यक्ष के पद पर किसी व्यक्ति के नाम की सिफारिश करने से पूर्व करना होता है । "पूर्व" अभिव्यक्ति से स्पष्ट रूप से विधान-मंडल का आशय उपदर्शित करती है । "पूर्व" अभिव्यक्ति के अर्थान्वयन पर इस

---

[1] (1916) 1 के. बी. 595.

न्यायालय के समक्ष **स्टेट बैंक आफ ट्रावनकोर** बनाम **मोहम्मद**[1] वाले मामले में विचार किया गया था जिसमें केरल एग्रीकल्चरिस्ट डेट रिलीफ ऐक्ट, 1970 की धारा 4(1) में आने वाले "किसी बैंककारी कंपनी को इस अधिनियम के प्रारंभ पर और उससे पूर्व देय कोई ऋण" शब्दों का उच्चतम न्यायालय द्वारा इस प्रकार अर्थान्वयन किया गया था कि उससे "इस अधिनियम के प्रारंभ पर और उससे पूर्व देय कोई ऋण" अभिप्रेत है । अतः, हम विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल की इस दलील को स्वीकार करने में कठिनाई महसूस करते हैं कि चूंकि यह एक प्रक्रियात्मक उपबंध है और अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (5) का अननुपालन एक ऐसी त्रुटि है जिसे सिफारिश को चयन समिति के पास अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (5) का अनुपालन करने के लिए वापस भेजकर सुधारा जा सकता है ।

22. अतः, हम उच्च न्यायालय से इस बारे में सहमत हैं कि अपीलार्थी की नियुक्ति अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (5) का स्पष्टतः अतिक्रमण करते हुए की गई थी और परिणामस्वरूप उसे आयोग के अध्यक्ष का पद धारण करने का कोई प्राधिकार नहीं है और उच्च न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित करके सही किया है । अतः, इस अपील में कोई सार नहीं है और वह खारिज की जाती है तथा खर्चे के संबंध में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा के मतानुसार

23. मैं अपने विद्वान् बंधु न्यायमूर्ति राधाकृष्णन् द्वारा निकाले गए निष्कर्ष और अभिव्यक्त विचारों से सादर सहमत हूं । तथापि, मामले के महत्व को ध्यान में रखते हुए मैं इसके अतिरिक्त अपने विचार लेखबद्ध करना चाहता हूं ।

24. जैसा कि तथ्यात्मक प्रतिपादना से प्रदर्शित होता है, इलाहाबाद उच्च न्यायालय की लखनऊ न्यायपीठ द्वारा अधिकार-पृच्छा की रिट जारी की गई है जिसके द्वारा यह घोषणा की गई है कि अपीलार्थी उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत विनियामक आयोग (जिसे संक्षेप में 'राज्य आयोग' कहा गया है) के अध्यक्ष के रूप में बने रहने का इस आधार पर हकदार नहीं है कि विद्युत अधिनियम, 2003 (जिसे संक्षेप में 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 85 की उपधारा (5) के अधीन प्रतिष्ठापित कानूनी उपबंध का पूर्णतः अननुपालन किया गया था ।

---

[1] (1981) 4 एस. सी. सी. 82.

25. चूंकि मेरे विद्वान् बंधु ने तथ्यों का वर्णन विस्तार से कर दिया है इसलिए उन्हें दोहराना आवश्यक नहीं है । यह कहना पर्याप्त है कि सुने जाने के अधिकार और विलंब और अतिविलंब संबंधी अभिवाकों को स्वीकार नहीं किया गया है और उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि अपीलार्थी के चयन से अधिनियम के उपबंधों का घोर अतिक्रमण हुआ था और इसलिए विधि की दृष्टि से उसका इस पद पर बने रहना अननुज्ञेय है ।

26. इससे पूर्व कि मैं उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश की न्यायौचित्य के संबंध में कार्यवाही करूं, ऐसी कतिपय नजीरों के प्रति निर्देश करना उपयुक्त समझा गया जिनमें मूल रूप से अधिकार-पृच्छा की रिट की संकल्पना पर विचार किया गया है । **बी. आर. कपूर** बनाम **तमिलनाडु राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में न्यायमूर्ति ब्रजेश कुमार ने अधिकार-पृच्छा की रिट की संकल्पना के संबंध में कार्यवाही करते समय अपनी समवर्ती राय में वड्र्स एंड फरेज़ेज़ परमानेंट एडीशन, खंड 35 के पृष्ठ 647 में एक लेखांश के प्रति निर्देश किया जिसे नीचे उद्धृत किया जाता है :–

> "'अधिकार-पृच्छा' की रिट न तो परमादेश या व्यादेश का और न ही अपील या त्रुटि संबंधी रिट का अनुकल्प है और उसका प्रयोग विधिपूर्वक धारित शक्ति का अनुचित प्रयोग निवारित करने के लिए नहीं किया जा सकता है और उसका प्रयोजन एकमात्र रूप से उस अधिकारी या निगम या इस रूप में कार्य करने के लिए तात्पर्यित व्यक्तियों को ऐसी किसी शक्ति का अनधिकार ग्रहण करने से निवारित करना है जो उनके पास नहीं है । राज्य एक्स इन्फ. मैक. किटरिक **बनाम** मूर्ति (148 एस. डब्ल्यू. सेकेंड 527, 529, 530, 347 मो. 484" (जोर देने के लिए रेखांकित)

> "'अधिकार-पृच्छा' की प्रकृति की जानकारी ऐसे किसी अधिकारी द्वारा शासकीय कृत्यों का निर्वहन करना आदिष्ट नहीं करती है जिसे यह दी जाती है चूंकि यह अधिकारी को इस प्रकार नहीं दी जाती है, बल्कि यह ऐसे व्यक्ति को दी जाती है जो पद धारण करते हैं या विशेषाधिकार का प्रयोग करते हैं और यह शासकीय कर्तव्यों का आदेश देने या विहित करने के प्रयोजन के लिए नहीं दी जाती है बल्कि यह अभिनिश्चित करने के लिए दी जाती है कि क्या वह

[1] ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 3435.

दावाकृत कृत्यों का निर्वहन करने के लिए न्यायपूर्ण रूप से हकदार है । स्टेट एक्स, इन्फ. वाल्श **बनाम** थैचर, 102 एस. डब्ल्यू, सेकेंड 937, 938, 340 मो. 865" (जोर देने के लिए रेखांकित)

27. **मैसूर विश्वविद्यालय और एक अन्य** बनाम **सी. डी. गोविन्दा राव और एक अन्य**[1] वाले मामले में अधिकार-पृच्छा की रिट की प्रकृति के संबंध में विचार करते हुए न्यायमूर्ति गजेन्द्रगडकर ने इस प्रकार कहा :–

"व्यापक रूप से, अधिकार-पृच्छा की कार्यवाही ऐसी न्यायिक जांच का अवसर प्रदान करती है जिसमें ऐसे व्यक्ति से जो कोई स्वतंत्र सारवान् लोक पद या विशेषाधिकार या स्वतंत्रता धारण करता है, यह दर्शित करने की अपेक्षा की जाती है कि वह किस अधिकार से उक्त पद, विशेषाधिकार या स्वतंत्रता धारण करता है ; यदि जांच के परिणामस्वरूप यह निष्कर्ष निकलता है कि पद के धारक के पास उसे धारण करने का कोई विधिमान्य हक नहीं है तो अधिकार-पृच्छा की रिट जारी करके उसे उस पद से हटाया जा सकता है । दूसरे शब्दों में, अधिकार-पृच्छा की प्रक्रिया न्यायपालिका को लोक पदों पर सुसंगत कानूनी उपबंधों के विरुद्ध नियुक्तियां करने के मामले में कार्यपालिका की कार्यवाही को नियंत्रित करने के लिए अधिकारिता और प्राधिकार प्रदान करती है ; यह किसी नागरिक को ऐसे लोक पद से वंचित किए जाने से भी संरक्षण प्रदान करती है जिसके लिए उसे अधिकार प्राप्त हो सकता है । अतः यह दृष्टव्य होगा कि यदि इन कार्यवाहियों को उस निमित्त मान्य शर्तों के अधीन रहते हुए अंगीकार किया जाता है तो वे जनता को लोक पद के बलात्ग्राहियों से बचाने के लिए है ; कुछ मामलों में ऐसे व्यक्तियों को जो लोक पद के हकदार नहीं हैं, कार्यपालिका की मौनानुकूलता के परिणामस्वरूप या उसकी सक्रिय सहायता से उनका अधिभोग करने और उन्हें धारित करते रहने के लिए अनुज्ञात किया जाता है और ऐसे मामलों में, यदि अधिकार-पृच्छा की रिट जारी करने संबंधी न्यायालयों की अधिकारिता का उचित रूप से अवलंब लिया जाता है तो बलात्ग्राही को बाहर निकाला जा सकता है और उस पद के लिए हकदार व्यक्ति को उसका अधिभोग करने के लिए अनुज्ञात किया जा सकता है । अतः यह स्पष्ट है कि इससे पूर्व कि कोई नागरिक अधिकार-पृच्छा की रिट

[1] [1964] 4 एस. सी. आर. 575 = ए. आई. आर. 1965 एस. सी. 491.

का दावा कर सके, उसे न्यायालय का अन्य बातों के साथ-साथ यह समाधान अवश्य करना चाहिए कि प्रश्नगत पद लोक पद है और उसे बलात्ग्राही विधिक प्राधिकार के बिना धारण किए हुए है और इसके परिणामस्वरूप यह जांच करनी आवश्यक हो जाती है कि क्या उक्त अभिकथित बलात्ग्राही की नियुक्ति विधि के अनुसार की गई है अथवा नहीं ।"

28. उपर्युक्त निर्णयों से यह सुलिखित रूप से स्पष्ट होता है कि कोई नागरिक अधिकार-पृच्छा की रिट का दावा कर सकता है और उसकी स्थिति वक्ता की होती है । यह आवश्यक नहीं है कि उसका कोई विशेष हित या व्यक्तिगत हित हो । वास्तविक परीक्षण यह देखना है कि क्या पद धारण करने वाला व्यक्ति उस पद को विधि के अनुसार धारित करने के लिए प्राधिकृत है अथवा नहीं । विलंब और अतिविलंब मुकदमे के संबंध में गुणागुण के आधार पर कार्यवाही करने के लिए कोई अड़चन पैदा नहीं करते हैं और **डा. काशीनाथ जी. जालमी और एक अन्य** बनाम **अध्यक्ष और अन्य**[1] वाले मामले में इसी प्रकार कथन किया गया है ।

29. **गुजरात उच्च न्यायालय** बनाम **गुजरात किसान मजदूर पंचायत**[2] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा यह अधिकथित किया गया है कि अधिकार-पृच्छा की रिट तब जारी की जा सकती है जब कानूनी उपबंधों/ नियमों का अतिक्रमण किया गया हो । उक्त सिद्धांत **सेवानिवृत्त सशस्त्र बल चिकित्सा संगम और अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य**[3] वाले मामले में दोहराया गया है ।

30. **सेंटर फार पब्लिक इंटरेस्ट लिटीगेशन और एक अन्य** बनाम **भारत संघ और एक अन्य**[4] वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने **आर. के. जैन** बनाम **भारत संघ**[5] वाले मामले में के विनिश्चय के प्रति निर्देश करने के पश्चात् इस प्रकार मत व्यक्त किया है :–

"आर. के. जैन वाले मामले में भी इस न्यायालय ने पैरा 73 में यह मत व्यक्त किया था कि न्यायिक पुनर्विलोकन का संबंध इस

---

[1] ए. आई. आर. 1993 एस. सी. 1873.

[2] (2003) 4 एस. सी. सी. 712.

[3] (2006) 11 एस. सी. सी. 731(I).

[4] (2011) 4 एस. सी. सी. 1.

[5] (1993) 4 एस. सी. सी. 119.

प्रश्न से है कि क्या पदधारी के पास नियुक्ति के लिए अर्हताएं थीं और क्या वह रीति, जिसमें नियुक्ति की गई थी या वह प्रक्रिया जो अपनाई गई थी, ऋजु, न्यायसंगत और युक्तिसंगत थी । हम इस बात पर जोर देना चाहते हैं कि सरकार किए गए चयन के लिए न्यायालयों के प्रति जवाबदेह नहीं है किन्तु सरकार अपने विनिश्चयों की विधिपूर्णता/वैधता की बाबत न्यायालयों के प्रति तब जवाबदेह है जब उन्हें न्यायिक पुनर्विलोकन अधिकारिता के अधीन आक्षेपित किया जाता है ।"

यह भी उल्लेखनीय है कि उक्त मामले में यह मत व्यक्त किया गया है कि न्यायिक अवधारण कानूनी उपबंधों के निबंधनानुसार विनिश्चय करने की प्रक्रिया की सत्यनिष्ठा तक सीमित किया जा सकता है ।

31. अधिकार-पृच्छा की उपर्युक्त संकल्पना को ध्यान में रखते हुए मैं कानूनी उपबंधों की संवीक्षा कर सकता हूं । अधिनियम की धारा 84 राज्य आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति के लिए अर्हताओं के संबंध में है । धारा 85 में राज्य आयोग के सदस्यों का चयन करने के लिए चयन समिति का गठन करने के लिए उपबंध किया गया है । धारा 85 की उपधारा (4) और (5), जो कि प्रस्तुत प्रयोजन के लिए सुसंगत हैं, निम्नलिखित रूप में हैं :–

"(4) चयन समिति, उसे निर्देशित प्रत्येक रिक्ति के लिए दो नामों के एक पैनल की सिफारिश करेगी ।

(5) चयन समिति, राज्य आयोग के अध्यक्ष या अन्य सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिए किसी व्यक्ति की सिफारिश करने से पूर्व अपना यह समाधान करेगी कि ऐसे व्यक्ति का ऐसा कोई वित्तीय या अन्य हित नहीं है जिससे, यथास्थिति, अध्यक्ष या सदस्य के रूप में उसके कृत्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है ।"

32. चयन समिति की रिपोर्ट का परिशीलन करने पर यह स्पष्ट होता है कि समिति ने अधिनियम की धारा 85(5) में अंतर्विष्ट तत्वों के संबंध में अपना समाधान लेखबद्ध नहीं किया है और उसे राज्य सरकार के पूर्ण विवेकाधिकार पर छोड़ दिया है ।

33. धारा 85(5) का विश्लेषण करने पर यह सुस्पष्ट है कि चयन समिति, राज्य आयोग के अध्यक्ष या किसी सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिए किसी व्यक्ति की सिफारिश करने से पूर्व अपना यह समाधान करेगी

कि ऐसे व्यक्ति का ऐसा कोई वित्तीय या अन्य हित नहीं है जिससे, यथास्थिति, अध्यक्ष या सदस्य के रूप में उसके कृत्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है । जैसा कि चयन समिति की कार्यवाहियों से प्रकट होगा, उसने दो अभ्यर्थियों के नामों की सिफारिश करने से पूर्व अपना समाधान लेखबद्ध नहीं किया था । यह सुस्पष्ट है कि चयन समिति ने अपने कृत्य का परित्याग कर दिया और राज्य सरकार के पास केवल फाइल भेज दी । अपीलार्थी के विद्वान् काउन्सेल श्री नागेश्वर राव द्वारा बलपूर्वक यह दलील दी गई है कि जब कतिपय व्यक्तियों में से दो नामों का चयन किया गया था तो यह निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए कि कानूनी अपेक्षा के अनुसार सम्यक् समाधान करने के पश्चात् ही सिफारिश की गई थी ।

34. इस उपबंध के स्पष्ट पठन से यह पूर्णतः स्पष्ट होता है कि चयन समिति विधि की दृष्टि से अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (5) के अधीन यथा-अनुबद्ध विभिन्न पहलुओं के संबंध में अपना समाधान करने के लिए आबद्ध है । यह स्पष्ट है कि उक्त कार्यवाही नहीं की गई है । यह उल्लेखनीय है कि अधिनियम का एक प्रयोजन है । यह विद्युत के उत्पादन, पारेषण, वितरण, व्यापार और उसके उपयोग और साधारणतः विद्युत उद्योग के विकास, उसमें प्रतिस्पर्धा के संवर्धन, उपभोक्ताओं के हित के संरक्षण और सभी क्षेत्रों में विद्युत के प्रदाय के, विद्युत टैरिफ को युक्तिसंगत बनाने, सहायिकियों के बारे में पारदर्शी नीतियां सुनिश्चित करने, तक्ष और पर्यावरण के लिए हितकर नीतियों के संवर्धन, केन्द्रीय विद्युत प्राधिकरण, विनियामक आयोगों के गठन और अपील अधिकरण की स्थापना में सहायक उपाय करने से संबंधित विधियों का समेकन करने और उनसे संबंधित या उनके आनुषंगिक विषयों के लिए अधिनियमित किया गया है । इसीलिए, अधिनियम में सन्निविष्ट उपबंधों की अपनी अलंघनीयता है ।

35. वर्तमान में, कुछ कानूनी उपबंधों का सर्वेक्षण करना अपेक्षित है । अधिनियम की धारा 82 में राज्य आयोग के गठन के लिए उपबंध है । धारा 2(64) में राज्य आयोग की परिभाषा दी गई है । वह निम्नलिखित रूप में है :–

> "(64) "राज्य आयोग" से धारा 82 की उपधारा (1) के अधीन गठित राज्य विद्युत विनियामक आयोग अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत धारा 83 की उपधारा (1) के अधीन गठित संयुक्त आयोग भी है ।"

धारा 86 राज्य आयोग के कृत्यों के संबंध में है । विधान-मंडल द्वारा राज्य

आयोग को सौंपे गए कृत्यों को ध्यान में रखते हुए, मैं उक्त उपबंध को समग्र रूप से उद्धृत करना उपयुक्त समझता हूं :–

"86. **राज्य आयोग के कृत्य** – (1) राज्य आयोग निम्नलिखित कृत्यों का निर्वहन करेगा, अर्थात् :–

(क) राज्य के भीतर, यथास्थिति, थोक, प्रपुंज या फुटकर विद्युत के उत्पादन, प्रदाय, पारेषण और चक्रण के लिए टैरिफ अवधारित करना :

परन्तु जहां उपभोक्ताओं के किसी प्रवर्ग के लिए धारा 42 के अधीन निर्बाध पहुंच अनुज्ञात की गई है, वहां राज्य आयोग उपभोक्ताओं के उक्त प्रवर्ग के लिए केवल चक्रण प्रभारों और उस पर अधिभार, यदि कोई हो, का ही अवधारण करेगा ।

(ख) वितरण अनुज्ञप्तिधारियों की विद्युत क्रय और उपापन प्रक्रिया को विनियमित करना जिसके अंतर्गत वह कीमत भी है जिस पर विद्युत, राज्य में वितरण और प्रदाय के लिए विद्युत क्रय के करारों के माध्यम से उत्पादन कंपनियों या अनुज्ञप्तिधारियों से या अन्य स्रोतों से उपाप्त की जाएगी ;

(ग) विद्युत के अंतःराज्यिक पारेषण और चक्रण को सुकर बनाना ;

(घ) ऐसे व्यक्तियों को, जो राज्य में अपनी संक्रियाओं की बाबत पारेषण अनुज्ञप्तिधारियों, वितरण अनुज्ञप्तिधारियों और विद्युत व्यापारियों के रूप में कार्य करने के इच्छुक हैं, अनुज्ञप्तियां जारी करना ;

(ङ) किसी व्यक्ति को, विद्युत की ग्रिड के साथ संयोजकता और उसके विक्रय के लिए उपयुक्त साधन उपलब्ध कराते हुए ऊर्जा के नवीकरणीय स्रोतों से सहउत्पादन और उत्पादन और ऐसे स्रोतों से विद्युत के क्रय के लिए किसी वितरण अनुज्ञप्तिधारी के क्षेत्र में विद्युत की कुल खपत का प्रतिशत भी विनिर्दिष्ट करना ;

(च) अनुज्ञप्तिधारियों और उत्पादन कंपनियों के बीच विवादों पर न्यायनिर्णयन करना और किसी विवाद को माध्यस्थम् के लिए निर्देशित करना ;

(छ) इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए फीस उद्गृहीत करना ;

(ज) धारा 79 की उपधारा (1) के खंड (ज) के अधीन विनिर्दिष्ट

ग्रिड कोड से संगत राज्य ग्रिड कोड विनिर्दिष्ट करना ;

(झ) अनुज्ञप्तिधारियों द्वारा सेवा की क्वालिटी, निरन्तरता और विश्वसनीयता की बाबत मानदंड विनिर्दिष्ट या प्रवर्तित करना ;

(ञ) विद्युत के अंतरराज्यिक व्यापार में, यदि आवश्यक समझा जाए, तो व्यापार लाभ मार्जन नियत करना ;

(ट) ऐसे अन्य कृत्यों का निर्वहन करना, जो इस अधिनियम के अधीन उसे समनुदेशित किए जाएं ।

(2) राज्य आयोग, निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों पर राज्य सरकार को सलाह देगा, अर्थात् –

(i) विद्युत उद्योग के क्रियाकलाप से प्रतिस्पर्धा, दक्षता और मितव्ययिता का संवर्धन ;

(ii) विद्युत उद्योग में विनिधान का संवर्धन ;

(iii) राज्य में विद्युत उद्योग का पुनर्गठन और पुनः संरचना ;

(iv) विद्युत के उत्पादन, पारेषण, वितरण और व्यापार से संबंधित विषयों या उस सरकार द्वारा राज्य आयोग को निर्देशित कोई अन्य विषय ।

(3) राज्य आयोग, अपनी शक्तियों का प्रयोग और अपने कृत्यों का निर्वहन करते समय पारदर्शिता सुनिश्चित करेगा ।

(4) राज्य आयोग, अपने कृत्यों के निर्वहन में धारा 3 के अधीन प्रकाशित राष्ट्रीय विद्युत नीति, राष्ट्रीय विद्युत योजना और टैरिफ नीति से मार्गदर्शित होगा ।"

36. अधिनियम की प्रस्तावना और राज्य आयोग पर आरोपित महत्वपूर्ण कृत्यों का परिशीलन करने पर मुझे इस संबंध में लेशमात्र भी संदेह नहीं है कि अध्यक्ष या किसी सदस्य का चयन अत्यंत महत्वपूर्ण होता है, विशेषकर तब जब उस रीति के बारे में कानूनी आदेश हो जिसमें चयन समिति को कार्यवाही करनी है । मैं यहां यह उल्लेख कर सकता हूं कि यद्यपि भाषा साधारण, असंदिग्ध, स्पष्ट है और उसके परिणामस्वरूप एक ही अर्थान्वयन निकलता है तथापि, मैं **उत्कल कंट्रेक्टर्स जायनरी प्राइवेट लिमिटेड और अन्य** बनाम **उड़ीसा राज्य और अन्य**[1] वाले निर्णय में से एक

[1] [1988] 1 उम. नि. प. 353 = ए. आई. आर. 1987 एस. सी. 1454.

लेखांश उद्धृत करना उपयुक्त समझता हूं जिसमें न्यायमूर्ति चिन्नप्पा रेड्डी ने इस प्रकार मत व्यक्त किया है :–

> "हमें किसी कानून का सर्वोत्तम बोध तभी हो सकता है, यदि हमें उसके अधिनियमित किए जाने के कारण की जानकारी हो । किसी कानून के अधिनियमित किए जाने का कारण उसके निर्वचन के लिए सबसे निरापद मार्गदर्शक है । किसी कानून के शब्द अपनी अर्थछटा उसके अधनियमित किए जाने के कारण से ही प्राप्त करते हैं । प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि हम ऐसे कारण का पता किस प्रकार लगाएं ? हमें इस संबंध में बाह्य और आंतरिक सहायक सामग्रियां उपलब्ध हैं । जब संसद् में विधेयक पेश किया जाता है, उस समय उद्देश्यों और कारणों का कथन, समितियों की ऐसी रिपोर्टें जो विधेयक की पूर्ववर्ती हैं तथा संसदीय समितियों की रिपोर्ट बाह्य सहायक सामग्रियां हैं । संसद् की बहस के सामयिक अध्ययन की अनुज्ञा दी जाती है । अधिनियम की उद्देशिका, स्कीम और उसके उपबंध आंतरिक सहायक सामग्री है । निर्वचनकर्ता कानून की अधिनियमिति के कारण का पता लगाने के बाद और हवा के अनुकूल पता लगाने के बाद आगे बढ़ सकता है । कानून के किसी उपबंध और शब्द का अर्थान्वयन वियुक्त रूप से नहीं किया जा सकता । इससे पूर्व कि किसी उपबंध अथवा शब्द का अर्थान्वयन करने का प्रयत्न किया जाए, प्रत्येक उपबंध और शब्द पर उसकी समग्रता में ध्यान दिया जाना चाहिए । विन्यास और ढांचा महत्वपूर्ण होते हैं ।"
>
> (जोर देने के लिए रेखांकित)

37. **आत्मा राम मित्तल** बनाम **ईश्वर सिंह पुनिया**[1] वाले मामले में न्यायमूर्ति सव्यसाची मुखर्जी ने (जैसे कि माननीय न्यायमूर्ति तब थे) विधान-मंडल के आशय पर जोर देते हुए, इस प्रकार कहा था :–

> "ब्लैकस्टोन ने हमें यह बताया है कि विधायिका की इच्छा का निर्वचन करने की ऋजुतापूर्ण और अत्यंत युक्तिसंगत पद्धति उस समय, जब विधि बनाई गई थी, अत्यंत स्वाभाविक और संभावित चिह्नों द्वारा उसके आशय का पता लगाना है । और ये चिह्न या तो शब्द, संदर्भ, विषयवस्तु, प्रभाव और परिणाम या विधि की भावना और कारण होते हैं ।"

---

[1] (1988) 4 एस. सी. सी. 284.

38. उक्त मामले में, **पोपटलाल शाह** बनाम **मद्रास राज्य**[1] वाले विनिश्चय के प्रति निर्देश किया गया था जिसमें यह अधिकथित किया गया था कि प्रत्येक शब्द, वाक्यांश या वाक्य का अर्थान्वयन अधिनियम के प्रयोजन के प्रकाश में किया जाना चाहिए । **ब्लैक-क्लासन इंटरनेशनल लिमिटेड** बनाम **पेपियरवेरके वाल्डोफ-एसचैफनबर्ग ए. जी.**[2] वाले मामले में लार्ड रीड की मताभिव्यक्तियों के प्रति निर्देश किया गया था जिसमें विद्वान् न्यायाधीश ने इस प्रकार मत व्यक्त किया है :–

> "हम प्रायः यह कहते हैं कि हम संसद् के आशय का पता लगा रहे हैं किन्तु वह पूर्णतः सही नहीं है । हम उन शब्दों का अर्थ ढूंढने की कोशिश कर रहे हैं जो संसद् ने प्रयुक्त किए हैं । हम इस बात का पता नहीं लगा रहे हैं कि संसद् का अभिप्राय क्या था बल्कि इस बात का पता लगा रहे हैं कि उन्होंने जो कुछ कहा है उनका सही अर्थ क्या है ।"

39. **संगीता सिंह** बनाम **भारत संघ और अन्य**[3] वाले मामले में कानून में प्रयुक्त भाषा पर जोर दिया गया था और उस संदर्भ में इस प्रकार मत व्यक्त किया गया है :–

> "5. विधि का यह सुस्थापित सिद्धांत है कि न्यायालय ऐसे किसी कानूनी उपबंध या अनुबद्ध शर्त का, जो कि स्पष्ट और असंदिग्ध है, अपना कोई अर्थ नहीं लगा सकता । कानून विधायिका का एक आदेश होता है । किसी कानून में प्रयुक्त भाषा विधायी आशय का निर्धारक तत्व होती है । विज्ञापनों में अनुबद्ध शर्तों के संबंध में भी यही स्थिति होती है ।"

40. मैने उपर्युक्त निर्णयों के प्रति निर्देश केवल इस बात पर विशेष बल देने के लिए किया है कि अधिनियम की धारा 85(5) में अंतर्निहित अनतिक्रमणीयता है और उसमें प्रयुक्त प्रत्येक शब्द का अर्थ उस संदर्भ में करना होता है जिसमें विधायी आशय को ध्यान में रखा जाए । विधान के प्रयोजन और भाषा के पाठ पर ध्यान संकेन्द्रित होना चाहिए क्योंकि इसका विचलन करने से खतरनाक परिणाम निकलने की संभावना होती है ।

41. इस प्रक्रम पर, मैं **उत्तर प्रदेश पावर कारपोरेशन लिमिटेड** बनाम

---

[1] [1953] एस. सी. आर. 677 = ए. आई. आर. 1953 एस. सी. 274.

[2] (1975) ए. सी. 591.

[3] (2005) 7 एस. सी. सी. 484.

नेशनल थर्मल पावर कारपोरेशन लिमिटेड और अन्य[1] वाले निर्णय के प्रति उपयोगी रूप से निर्देश कर सकता हूं जिसमें **पश्चिमी बंगाल विद्युत विनियामक आयोग** बनाम **सी. ई. एस. सी. लिमिटेड**[2] वाले विनिश्चय के प्रति निर्देश करने के पश्चात् इस न्यायालय ने इस प्रकार कथन किया है :–

> "12. इस न्यायालय द्वारा की गई इस आशय की मताभिव्यक्तियों को ध्यान में रखते हुए कि अधिनियम की धारा 3 के अधीन गठित केन्द्रीय आयोग एक विशेषज्ञीय निकाय है, जिसे टैरिफ के अवधारण का काम सौंपा गया है और चूंकि टैरिफ के अवधारण में उच्च तकनीकी प्रक्रिया अंतर्वलित होती है जिसमें न केवल विधि का कार्यसाधक ज्ञान बल्कि इंजीनियरी, वित्त, वाणिज्य, अर्थशास्त्र और प्रबंधन का ज्ञान भी अपेक्षित होता है, इसलिए इस न्यायालय का यह दृढ़ मत था कि टैरिफ के अवधारण से संबंधित मुद्दे उक्त विशेषज्ञीय निकाय पर छोड़ देने चाहिए और साधारणतया उच्च न्यायालय और इस न्यायालय को भी टैरिफ के अवधारण के संबंध में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए ।"

42. यह उल्लेखनीय है कि **आई. टी. सी. लिमिटेड** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[3] वाले मामले में विनियामक निकायों के कामकाज के संबंध में भी विशेष बल दिया गया है ।

43. मैने उपर्युक्त नजीरों के प्रति निर्देश एकमात्र इस प्रयोजन के लिए किया है कि विनियामक आयोग एक विशेषज्ञीय निकाय है और ऐसी स्थिति में चयन आत्यांतिक रूप से अधिनियम की धारा 85 के अधीन प्रतिष्ठापित आज्ञापक प्रक्रिया के अनुसार ही करना होता है ।

44. प्रस्तुत संदर्भ में, चयन समिति की भूमिका पर विचार करना आवश्यक हो गया है । अधिनियम की धारा 85(1) में राज्य आयोग के सदस्यों का चयन करने के लिए चयन समिति का गठन करने के लिए उपबंध किया गया है । उक्त समिति, जैसा कि संरचना से दर्शित होगा, एक उच्च शक्तिप्राप्त समिति है, जिसे सभी पहलुओं के संबंध में निर्णय करने के लिए प्राधिकृत किया गया है । मैं यह और जोड़ना चाहूंगा कि मैं किसी अभ्यर्थी की उपयुक्तता या पात्रता के क्षेत्र की गहराई से जांच बिल्कुल भी नहीं कर रहा हूं क्योंकि वर्तमान मामले में विवाद्यक केवल धारा 85(5) के अधीन यथा-प्रकल्पित कानूनी आज्ञा का पूर्ण अननुपालन करने

---

[1] (2011) 12 एस. सी. सी. 400.

[2] (2002) 8 एस. सी. सी. 715.

[3] (2011) 7 एस. सी. सी. 493.

के संबंध में है ।

45. यह कहना उचित है कि ऊपर उलिखित उपबंध में "सिफारिश" पद का प्रयोग किया गया है । इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने **ए. पांडुरंगम राव** बनाम **आन्ध्र प्रदेश राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में सिफारिश की संकल्पना का विचार करते हुए यह कहा है कि "सिफारिश करना" शब्दों का शाब्दिक अर्थ बिल्कुल साधारण है और इससे "नियोजन के लिए उपयुक्त व्यक्ति का सुझाव देना" अभिप्रेत है । प्रस्तुत मामले में चयन समिति उपबंध के अनुसार, जब विधान-मंडल ने "समाधान" शब्द का प्रयोग किया है, अपना समाधान करने के लिए बाध्य थी । इसमें समिति को एक सकारात्मक कार्य करने के लिए आदिष्ट किया गया है । इसके लिए समाधान उपदर्शित करने वाले कारण लेखबद्ध किए जाने चाहिए, जो कि युक्तियुक्त हो सकता है । समाधान लेखबद्ध करने का अभाव विधि की आज्ञा/आदेश के प्रतिकूल है और इससे वह विनिश्चय सूक्ष्म रूप से अतिसंवेदनशील बन जाता है । यह स्मरण रखना होगा कि राज्य आयोग को प्रदत्त शक्ति को ध्यान में रखते हुए, चयन का उत्तरदायित्व एक उच्च शक्तिप्राप्त चयन समिति को सौंपा गया है । चयन समिति यह लेखबद्ध करने के लिए वैध रूप से आबद्ध है कि उसका यह समाधान हो गया है कि अभ्यर्थी का कोई वित्तीय या अन्य हित नहीं है जिससे, यथास्थिति, अध्यक्ष या सदस्य के रूप में उसके कृत्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है । उक्त समाधान किसी व्यक्ति की नियुक्ति के लिए सिफारिश करने से पूर्व हो जाना चाहिए । यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि उक्त शक्ति का अधित्याग विधिसम्मत शासन का उल्लंघन करने की कोटि में आता है क्योंकि इससे न केवल विधि की आज्ञा की अवज्ञा होती है बल्कि विधि की मूलभूत निर्देशिका पर प्रहार-चिह्न का सृजन भी होता है । अतः, यह चयन दूषित है और यह कभी भी उपशम्यता के क्षेत्र के अंतर्गत नहीं आ सकता, क्योंकि चयन के प्रारंभ से ही कानून का अननुपालन हुआ है ।

46. यहां यह कथन करना आवश्यक है कि विधायिका ने कई अधिनियमितियों में विनियामक निकायों का सृजन किया है । कोई भी इस तथ्य को भुला नहीं सकता कि वैश्विक अर्थव्यवस्था में विनियामकों की आस्था पर जोर दिया गया है । शासन की विश्वसनीयता काफी हद तक इन विनियामक निकायों के कामकाज पर निर्भर करती है और इसलिए

---

[1] ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 1922.

इनका चयन कानूनी उपबंधों के पूर्णतः अनुरूप होना चाहिए । इससे लोक आस्था को प्रोत्साहन मिलता है और यह अर्थव्यवस्था के क्रमबद्ध विकास में सहायक है । ऐसी संस्थाओं में विश्वास करना प्रगति में सहायक होता है और अविश्वास से असाध्य अनिष्ट की तरह इसका क्षय होता है । प्रगति तभी होती है जब सुशासन होता है और सुशासन इस बात पर निर्भर करता है कि विधि किस प्रकार कार्यान्वित की जाती है । अधिनियम के उदेश्यों और कारणों और प्रस्तावना और आयोग के कृत्यों को ध्यान में रखते हुए निश्चयपूर्वक यह कहा जा सकता है कि कोई उदारता नहीं दिखाई जा सकती और जब चयन से संबंधित कानूनी उपबंध का पूर्ण रूप से अतिक्रमण किया गया हो तब शिथिलता अनुज्ञात नहीं की जा सकती । चिरकाल से यह कहा गया कि "कोई समाज तब सुशासित होता है जब वे लोग जो कर्णधार हैं, विधि की आज्ञा का पालन करते हैं" । किन्तु प्रस्तुत मामले में चयन समिति विधि की आज्ञा का पालन करने में असफल रही है जिसके परिणामस्वरूप अपीलार्थी का चयन किया गया है और इसलिए अंतिम परिणाम के रूप में चयन कायम रखे जाने योग्य नहीं रह जाता है ।

47. अपीलार्थी के चयन से यह स्पष्ट होता है कि विनिश्चय करने की प्रक्रिया में "बौद्धिक वस्तुपरकता" का अभाव है । यह स्मरणीय है कि रचनात्मक प्रज्ञा से उचित तर्काधार उत्पन्न होता है और उससे प्रदत्त शक्ति का विवेकपूर्ण प्रयोग प्रतिबिंबित होता है । इस प्रकृति की चयन प्रक्रिया में प्रज्ञा और उद्योग का सम्मिलित प्रभाव प्रतिबिंबित होना चाहिए । ऐसा इस कारण है कि जब दोनों का संयोग होता है तो उपबंध में यथा-प्रयुक्त सिफारिशें न केवल "अध्ययन-कक्ष में दीप" का बल्कि ऐसे "प्रकाश-स्तम्भ" का प्रयोजन पूरा करती हैं, जो कि चमकीला, स्पष्ट और पारदर्शी है ।

48. मैं विनिश्चय करने की प्रक्रिया पर जोर देता हूं क्योंकि ऐसे मामले में न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का प्रयोग होता है । **चीफ कांस्टेबल आफ दि नार्थ वेल्स पुलिस** बनाम **इवान्स**[1] वाले मामले में लार्ड ब्राइटमैन ने इस प्रकार मत व्यक्त किया था :–

> "…..न्यायिक पुनर्विलोकन, जैसा कि इन शब्दों से विवक्षित होता है, किसी विनिश्चय के विरुद्ध अपील नहीं होती है बल्कि उस रीति का पुनर्विलोकन करना होता है जिसमें वह विनिश्चय किया गया था ……..।"

---

[1] (1982) 1 डब्ल्यू. एल. आर. 1155.

49. उपर्युक्त विश्लेषण को ध्यान में रखते हुए, मेरा यह निष्कर्ष है कि चयन समिति द्वारा कानूनी उपबंध का पूर्ण रूप से अननुपालन किया गया है जिसके कारण विनिश्चय करने की प्रक्रिया भेद्य हो गई है और उसमें सांविधानिक न्यायालयों द्वारा हस्तक्षेप करना आवश्यक हो गया है और इसलिए, उच्च न्यायालय का यह अभिनिर्धारित करना न्यायोचित है कि यह नियुक्ति विधितः अस्तित्व में नहीं है ।

50. परिणामस्वरूप, चूंकि अपील में कोई सार नहीं है इसलिए वह खारिज की जाती है । खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

ग्रो.

[2013] 4 उम. नि. प. 77

विपुल शीतल प्रसाद अग्रवाल

बनाम

गुजरात राज्य और एक अन्य

6 नवम्बर, 2012

मुख्य न्यायमूर्ति अल्तमस कबीर, न्यायमूर्ति सुरिन्दर सिंह निज्जर और न्यायमूर्ति जे. चेलामेश्वर

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 167(2) और 173(8) – कानूनी जमानत – स्थानीय पुलिस द्वारा लेखबद्ध प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के अनुसरण में गिरफ्तार व्यक्ति के विरुद्ध नियत समय के भीतर अन्वेषण करके आरोप पत्र फाइल किया जाना किन्तु उच्चतम न्यायालय द्वारा उस अन्वेषण को स्वीकार न करके केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो को नए सिरे से जांच करने का आदेश दिया जाना – केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा अन्वेषण के लिए नई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज करना – इस आधार पर व्यतिक्रम जमानत के लिए किया गया दावा मान्य नहीं है कि प्रथम अन्वेषण को अस्वीकार किए जाने से स्थानीय पुलिस द्वारा फाइल किया गया आरोप पत्र भी अभिखंडित हो गया था क्योंकि आगे और कार्यवाही करने का अभिप्राय यह नहीं है कि पहले फाइल किए गए आरोप पत्र का

परित्याग कर दिया गया है तथा भले ही केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने नई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की हो तो भी उसके द्वारा किया गया अन्वेषण धारा 173(8) के अधीन आगे और अन्वेषण की प्रकृति में आता है ।

याची सुसंगत समय पर गुजरात के बानसकंथा में पुलिस अधीक्षक के रूप में तैनात था । तुलसीराम प्रजापति नामक व्यक्ति की एक मुठभेड़ में हत्या कर दी गई थी और गुजरात के बानसकंथा के अधीन अम्बाजी पुलिस थाने में अज्ञात व्यक्तियों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 307, 427 और 34, आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25(1)(क) और बाम्बे पुलिस ऐक्ट, 1951 की धारा 135 के अधीन एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई गई थी । इसके बाद, मृतक की माता ने उच्चतम न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका फाइल की जिसमें इस घटना की जांच केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा कराने की प्रार्थना की गई थी और जबकि वह याचिका लंबित थी, अभियोजन पक्ष ने अन्वेषण पूरा होने पर 12 पुलिस अधिकारियों के विरुद्ध, जिनमें याची भी शामिल है, आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25(1)(क) और 27 तथा बाम्बे पुलिस अधिनियम की धारा 135 के साथ-साथ भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302, 364, 307, 333, 334, 427, 365, 368, 193, 197, 201, 120-ख और 471 भी जोड़ दी । इसके परिणामस्वरूप, याची को गिरफ्तार कर लिया गया और इसके पश्चात् अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध, जिनमें याची भी शामिल है, आरोप पत्र फाइल किया गया था । इसी बीच, उच्चतम न्यायालय ने मृतक की माता द्वारा फाइल की गई रिट याचिका पर विचार करते हुए स्थानीय पुलिस द्वारा किए गए अन्वेषण को स्वीकार नहीं किया और मामले का अन्वेषण केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो को सौंपने का निदेश दिया । केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने उच्चतम न्यायालय के निदेशों के अनुसार एक पृथक् प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की और अन्वेषण प्रारंभ कर दिया । चूंकि अन्वेषण पूरा नहीं हुआ था और याची लम्बे समय से अभिरक्षा में था इसलिए उसकी ओर से सेशन न्यायाधीश के समक्ष जमानत के लिए आवेदन फाइल किया गया था, जिसने उस आवेदन को इस आधार पर नामंजूर कर दिया था कि वह आवेदन प्रथम श्रेणी न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष न कि सेशन न्यायालय के समक्ष फाइल किया जाना चाहिए था । तत्पश्चात्, याची ने प्रथम श्रेणी न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष जमानत के लिए आवेदन फाइल किया जो कि नामंजूर कर दिया गया था । इसके पश्चात्, याची ने प्रथम श्रेणी न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा पारित निर्णय और आदेश को अभिखंडित और अपास्त करने के लिए, उच्च न्यायालय में

समावेदन किया । याची की ओर से नियमित जमानत के लिए एक अन्य आवेदन भी, सेशन न्यायाधीश के समक्ष विचारण में विलंब के सीमित आधार पर फाइल किया गया था । उक्त जमानत आवेदन द्वितीय अपर सेशन न्यायाधीश द्वारा खारिज कर दिया गया था । उच्च न्यायालय ने भी मजिस्ट्रेट के आदेश को चुनौती देने वाले याची के आवेदन को नामंजूर कर दिया । द्वितीय अपर सेशन न्यायाधीश के आदेश को चुनौती देने वाला याची का दांडिक प्रकीर्ण आवेदन उच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था । उक्त आदेश के विरुद्ध ही प्रस्तुत विशेष इजाजत याचिका फाइल की गई है । उच्चतम न्यायालय द्वारा विशेष इजाजत याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – संबंधित पक्षकारों की ओर से दी गई दलीलों पर सावधानीपूर्वक विचार करने के पश्चात् इस न्यायालय को याची के काउन्सेल की दलीलों को नामंजूर करने में बिल्कुल भी कोई हिचकिचाहट नहीं है । इस मामले की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि याची की ओर से व्यतिक्रम जमानत के लिए प्रार्थना स्थानीय पुलिस द्वारा दर्ज की गई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में की गई थी हालांकि उसकी बाबत दलीलें केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा दर्ज की गई पश्चात्वर्ती प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के संबंध में दी गई हैं । यह स्पष्ट है कि याची जमानत मंजूर करने के लिए आवेदन करते समय इस स्थिति से पूर्णतः अवगत था और वह यह जानता था कि उसे पहली प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के संबंध में गिरफ्तार किया गया था न कि केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा दर्ज की गई द्वितीय प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के अधीन गिरफ्तार किया गया था । यदि द्वितीय अन्वेषण को नए सिरे से किया गया अन्वेषण माना जाता और याची को उसके संबंध में गिरफ्तार किया गया होता तो याची के काउन्सेल द्वारा दी गई दलीलें सुसंगत होतीं । तथापि, चूंकि व्यतिक्रम जमानत के लिए प्रार्थना पहली प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के संबंध में की गई थी जिसमें आरोप पत्र 90 दिन की नियत अवधि के भीतर फाइल कर दिया गया था इसलिए याची व्यतिक्रम जमानत के संबंध में तर्क प्रस्तुत नहीं कर सकता था और इसलिए ऐसे तर्क को नामंजूर करना होगा । याची के काउन्सेल की दूसरी इस दलील को भी कि चूंकि इस न्यायालय द्वारा नए सिरे से अन्वेषण करने का निदेश दिया गया था इसलिए पूर्ववर्ती आरोप पत्र के बारे में यह समझा जाना चाहिए कि वह अभिखंडित हो गया है, उसी आधार पर नामंजूर करना होगा । विचारण पूरा करने में हुए विलंब के प्रश्न के संबंध में भी यह स्पष्ट किया जाता है कि ऐसा विलंब अभियोजन प्राधिकारियों द्वारा कारित नहीं किया गया है बल्कि

एक सह-अभियुक्त द्वारा कारित किया गया है और याची द्वारा इसका लाभ नहीं लिया जा सकता है । (पैरा 18 और 19)

अन्वेषक अधिकारी द्वारा स्वप्रेरणा से या वरिष्ठ पुलिस अधिकारी के निदेशों पर या संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा, जिसे रिपोर्ट भेजी गई है, दिए गए किसी निदेश के अनुसरण में आगे और अन्वेषण करने का अर्थ यह नहीं है कि धारा 173(2) के अधीन प्रस्तुत की गई रिपोर्ट का परित्याग कर दिया गया है या वह नामंजूर कर दी गई है । इसका केवल यह अर्थ है कि या तो अन्वेषण अभिकरण या संबंधित न्यायालय का अन्वेषक अभिकरण द्वारा इकट्ठी की गई सामग्री से पूर्णतः समाधान नहीं हुआ है और उसकी यह राय है कि रिपोर्ट में उपदर्शित अपराध कारित किए जाने के अभिकथनों को कायम रखने की दृष्टि से संभवतः कुछ अतिरिक्त सामग्री की आवश्यकता है । अतः, याची के अधिवक्ता की ओर से दी गई यह दलील कि इस न्यायालय द्वारा इससे पूर्व दिए गए निदेशों का आवश्यक रूप से यह अभिप्राय होगा कि पुलिस द्वारा प्रस्तुत किया गया आरोप पत्र विवक्षित रूप से नामंजूर हो गया है, विधि की दृष्टि से निराधार और भ्रामक है । इस तथ्य से भी कि केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने तात्पर्यित रूप से एक नई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की थी, विधि की दृष्टि से यह निष्कर्ष नहीं निकलता है कि पूर्ववर्ती रिपोर्ट या गुजरात पुलिस (केन्द्रीय अन्वेषण विभाग) द्वारा इकट्ठी की गई वह सामग्री जिसके आधार पर उन्होंने आरोप पत्र फाइल किया था, अस्तित्व में नहीं रही है । इससे केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की केवल प्रशासनिक कार्यप्रणाली प्रदर्शित होती है । मेरी राय में, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की नई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज करने की कार्यप्रणाली के होते हुए भी, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा किया गया अन्वेषण इस न्यायालय के निदेश के अनुसरण में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173(8) के अधीन आगे और अन्वेषण करने की प्रकृति में आता है । (पैरा 24, 25 और 26)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1989]	[1989] 1 उम. नि. प. 195 = (1988) सप्ली. एस. सी. सी. 482 : **कश्मीरी देवी** बनाम **दिल्ली प्रशासन** ।	24

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2012 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 3672.

2011 के विशेष दांडिक आवेदन सं. 2698 में अहमदाबाद स्थित

गुजरात उच्च न्यायालय के तारीख 20 मार्च, 2012 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष इजाजत याचिका ।

याची की ओर से — सर्वश्री अजय वीर सिंह जैन, नितिन जैन, (सुश्री) अनिस्ता जैन, उदय राम, आशीष कुमार सैनी, अतुल अग्रवाल और मोहम्मद इरशाद हनीफ

प्रत्यर्थियों की ओर से — सर्वश्री तुषार मेहता, अपर महाधिवक्ता, (सुश्री) हेमन्तिका वाही, एस. पंडा, (सुश्री) जेसल, (सुश्री) नन्दिनी गुप्ता, महीन प्रधान, सुब्रमण्यम प्रसाद और वैभव श्रीवास्तव

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायमूर्ति अल्तमस कबीर ने दिया ।

मु. न्या. कबीर – यह विशेष इजाजत याचिका गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा पारित तारीख 20 मार्च, 2012 के उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा याची, डा. विपुल शीतल प्रसाद अग्रवाल द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के साथ पठित संविधान के अनुच्छेद 226 और अनुच्छेद 227 के अधीन फाइल की गई रिट याचिका, जो कि 2011 का विशेष दांडिक पुनरीक्षण प्रकीर्ण आवेदन सं. 2698 था, खारिज कर दी गई थी ।

2. इस मामले में कतिपय ऐसे विशेष लक्षण हैं जिन्हें इस मामले को विनिश्चित करने के लिए लेखबद्ध करना आवश्यक है ।

3. याची सुसंगत समय पर गुजरात के बानसकंथा में पुलिस अधीक्षक के रूप में तैनात था । तारीख 28 दिसम्बर, 2006 को तुलसीराम प्रजापति नामक व्यक्ति की एक मुठभेड़ में हत्या कर दी गई थी और गुजरात के बानसकंथा के अधीन अम्बाजी पुलिस थाने में अज्ञात व्यक्तियों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 307, 427 और 34, आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25(1)(क) और बाम्बे पुलिस ऐक्ट, 1951 की धारा 135 के अधीन एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट, जो कि 2006 की आई. सी. आर. सं. 115 थी, दर्ज कराई गई थी ।

4. वर्ष 2007 में, मृतक की माता निर्मला बाई ने इस न्यायालय के समक्ष 2007 की रिट याचिका (दांडिक) सं. 115 फाइल की जिसमें इस

घटना की जांच केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा कराने की प्रार्थना की गई थी और जबकि वह याचिका लंबित थी, अभियोजन पक्ष ने अन्वेषण पूरा होने पर 12 पुलिस अधिकारियों के विरुद्ध, जिनमें याची भी शामिल है, आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25(1)(क) और 27 तथा बाम्बे पुलिस अधिनियम की धारा 135 के साथ-साथ भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302, 364, 307, 333, 334, 427, 365, 368, 193, 197, 201, 120-ख, 471 भी जोड़ दी । इसके परिणामस्वरूप, याची को केन्द्रीय अन्वेषण विभाग, अपराध शाखा, द्वारा तारीख 3 मई, 2010 को गिरफ्तार कर लिया गया और इसके पश्चात् अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध, जिनमें याची भी शामिल है, तारीख 30 जुलाई, 2010 को आरोप पत्र फाइल किया गया था ।

5. अतः, इस मामले के अद्भुत लक्षणों में से एक लक्षण यह है कि उस मामले में, जो कि आहत व्यक्ति के विरुद्ध दर्ज किया गया था, 12 पुलिस अधिकारियों को, जिनमें याची भी शामिल था, अभियुक्त के रूप में अभ्यारोपित किया गया था जिसके बारे में यह अभिकथित किया गया था कि वह फर्जी मुठभेड़ थी । तथापि, वास्तविकता यह है कि 2006 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 115 अम्बाजी पुलिस थाने में तारीख 28 दिसम्बर, 2006 को दर्ज की गई थी, जिसके परिणामस्वरूप केन्द्रीय अन्वेषण विभाग, अपराध शाखा द्वारा याची को तारीख 3 मई, 2010 को गिरफ्तार किया गया था और उसकी गिरफ्तारी के 90 दिनों के भीतर तारीख 30 जुलाई, 2010 को आरोप पत्र फाइल किया गया था ।

6. इस न्यायालय ने मृतक की माता द्वारा फाइल की गई रिट याचिका [2007 की रिट याचिका (दांडिक) सं. 115] पर विचार करते हुए अपने तारीख 8 अप्रैल, 2011 के निर्णय और आदेश द्वारा उस अन्वेषण को स्वीकार करने से इनकार कर दिया जो राज्य के केन्द्रीय अन्वेषण विभाग द्वारा किया गया था और पूरा किया गया था और निम्न प्रकार निदेश दिया :–

> "39. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, गुजरात राज्य के पुलिस प्राधिकारियों को यह निदेश दिया जाता है कि वे प्रस्तुत मामले के सभी अभिलेख आज से दो सप्ताह के भीतर केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो को सौंप दें और केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो तुलसीराम प्रजापति की हत्या से संबंधित मामले के समस्त पहलुओं की जांच करेगा और राज्य पुलिस प्राधिकारियों से अन्वेषण कार्य ग्रहण करने की तारीख से छह मास की अवधि के भीतर अधिकारिता रखने वाले संबंधित

न्यायालय/विशेष न्यायालय में रिपोर्ट फाइल करेगा । हम गुजरात, राजस्थान और आन्ध्र प्रदेश राज्यों के पुलिस प्राधिकारियों को भी निदेश देते हैं कि वे अन्वेषण करने में केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के प्राधिकारियों के साथ सहयोग करें ।'

7. हमने इस न्यायालय के उपर्युक्त निदेश को जानबूझकर उद्धृत किया है चूंकि इस विशेष इजाजत याचिका में याची की ओर से किए गए निवेदनों का मुख्य आधार इसके निर्वचन पर निर्भर करता है ।

8. केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने इस न्यायालय द्वारा दिए गए निदेशों के अनुसरण में तारीख 29 अप्रैल, 2011 को एक पृथक् प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की, जो कि तारीख 29 अप्रैल, 2011 का आर. सी.-3(एस)/2011/ मुम्बई है । केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने तारीख 31 मई, 2011 को 2010 के सेशन मामला सं. 58 में गुजरात के बानसकंथा में पालनपुर के सेशन न्यायाधीश के न्यायालय के समक्ष निम्नलिखित निदेशों के लिए आवेदन किया :–

"अतः, विनम्रपूर्वक यह प्रार्थना की जाती है कि भारत के उच्चतम न्यायालय के तारीख 8 अप्रैल, 2011 के आदेशों को ध्यान में रखते हुए गुजरात पुलिस द्वारा तारीख 30 जुलाई, 2010 के सी. सी. सं. 1439/10 द्वारा तारीख 30 जुलाई, 2010 के आरोप पत्र सं. 50/2010 और जिला बानसकंथा के अम्बाजी पुलिस थाने की तारीख 28 दिसम्बर, 2006 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 115/2006 के मामले में अनुपूरक आरोप पत्रों के साथ संलग्न सूची के अनुसार (जैसी कि इस माननीय न्यायालय द्वारा वांछा की गई है) प्रस्तुत की गई वस्तुएं मुक्त कर दी जाएं और उन्हें केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो को नए सिरे से अन्वेषण करने के प्रयोजनार्थ सौंप दिया जाए ।

इसके अलावा यह प्रार्थना की जाती है कि भारत के माननीय उच्चतम न्यायालय के आदेश को ध्यान में रखते हुए इस मामले में केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो का अन्वेषण पूरा होने तक कोई अग्रिम कार्यवाही अनुज्ञात न की जाए । आवेदक इसके लिए सदैव आभारी रहेगा ।"

9. उक्त आवेदन सेशन न्यायाधीश द्वारा तारीख 9 जून, 2011 को मंजूर कर लिया गया था ।

10. चूंकि अन्वेषण पूरा नहीं हुआ था और याची लम्बे समय से अभिरक्षा में था इसलिए उसकी ओर से पालनपुर के विद्वान् सेशन न्यायाधीश के समक्ष

तारीख 16 अगस्त, 2011 को जमानत के लिए आवेदन फाइल किया गया था, जिसने उस आवेदन को इस आधार पर नामंजूर कर दिया था कि वह आवेदन दांता के प्रथम श्रेणी न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष न कि सेशन न्यायालय के समक्ष फाइल किया जाना चाहिए था ।

11. विद्वान् सेशन न्यायाधीश के आदेश को ध्यान में रखते हुए, याची ने तारीख 2 सितम्बर, 2011 को दांता के प्रथम श्रेणी न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष जमानत के लिए आवेदन फाइल किया जो कि तारीख 7 अक्तूबर, 2011 को नामंजूर कर दिया गया था । इसके पश्चात्, याची ने प्रथम श्रेणी न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा पारित तारीख 7 अक्तूबर, 2011 के उपर्युक्त निर्णय और आदेश को अभिखंडित और अपास्त करने के लिए, जिसके द्वारा जमानत संबंधी उसकी प्रार्थना नामंजूर कर दी गई थी, 2011 के विशेष दांडिक आवेदन सं. 2698 के रूप में गुजरात उच्च न्यायालय में समावेदन किया । याची की ओर से नियमित जमानत के लिए एक अन्य आवेदन भी, जो कि 2012 का दांडिक प्रकीर्ण आवेदन सं. 04 है, तारीख 2 जनवरी, 2012 को पालनपुर के सेशन न्यायाधीश के समक्ष विचारण में विलंब के सीमित आधार पर फाइल किया गया था । उक्त जमानत आवेदन द्वितीय अपर सेशन न्यायाधीश द्वारा तारीख 27 फरवरी, 2012 को खारिज कर दिया गया था । उच्च न्यायालय ने भी अपने तारीख 20 मार्च, 2012 के आदेश द्वारा मजिस्ट्रेट के आदेश को चुनौती देने वाले याची के आवेदन को नामंजूर कर दिया । तारीख 9 अप्रैल, 2012 को द्वितीय अपर सेशन न्यायाधीश के तारीख 27 फरवरी, 2012 के आदेश को चुनौती देने वाला याची का 2012 का दांडिक प्रकीर्ण आवेदन सं. 4729 उच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था । उक्त आदेश के विरुद्ध ही प्रस्तुत विशेष इजाजत याचिका फाइल की गई है ।

12. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री सुशील कुमार द्वारा दी गई दलीलों में मुख्यतः इस बात पर जोर दिया गया था कि याची दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 की उपधारा (2) के निबंधनानुसार कानूनी जमानत के फायदे का हकदार था । विद्वान् काउन्सेल ने इस बात पर जोर दिया कि चूंकि नई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज करने और नए सिरे से अन्वेषण प्रारंभ करने के पश्चात्, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा निदेश दिया गया था, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो 90 दिनों की नियत अवधि के भीतर इस प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के अनुसरण में आरोप पत्र फाइल करने में असफल रहा है, इसलिए याची दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167

की उपधारा (2) के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए ऐसे व्यतिक्रम के कारण जमानत का हकदार था । विद्वान् काउन्सेल ने इस बात पर जोर दिया कि याची तारीख 3 मई, 2010 को अपनी गिरफ्तारी के पश्चात् अभिरक्षा में था और दूसरी ओर, विचारण में विलंब किया जा रहा था ।

13. श्री सुशील कुमार ने इस बात पर जोर दिया कि चूंकि राज्य पुलिस द्वारा किए गए पूर्ववर्ती अन्वेषण को इस न्यायालय ने स्वीकार नहीं किया था और केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो को नए सिरे से अन्वेषण करने का निदेश दिया गया था इसलिए यह आवश्यक रूप से अपरिहार्य हो जाएगा कि आरंभिक जांच के आधार पर फाइल किया गया आरोप पत्र भी, इस न्यायालय द्वारा, भले ही स्पष्ट निबंधनों में नामंजूर न किया गया हो, नामंजूर हो गया था । श्री सुशील कुमार ने यह निवेदन किया कि एक ही घटना की बाबत दो प्रथम इत्तिला रिपोर्टों से उद्भूत होने वाले दो आरोप पत्र नहीं हो सकते थे और फाइल किए गए उक्त दो आरोप पत्रों में से किसी एक के आधार पर आरोप विरचित किए जाने होंगे और चूंकि प्रथम अन्वेषण को स्वीकार नहीं किया गया था इसलिए इसका तर्कसम्मत परिणाम यह होगा कि प्रथम आरोप पत्र भी अभिखंडित हो गया था जिससे द्वितीय आरोप पत्र को सम्यक् विधिसम्मतता प्रदान होगी । तदनुसार, चूंकि 90 दिनों की अवधि के भीतर द्वितीय प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की बाबत, जैसा कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधीन अनुबद्ध है, आरोप पत्र फाइल नहीं किया गया था इसलिए याची अधिकार के तौर पर व्यतिक्रम जमानत के आधार पर छोड़े जाने का हकदार था ।

14. श्री सुशील कुमार ने यह स्पष्ट किया है कि वह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधीन उपलब्ध आधार और इस तथ्य पर अपनी दलीलों को आधारित कर रहा है कि विचारण में लम्बी अवधि का विलंब हुआ था और इस दौरान याची अभिरक्षा में रहा है ।

15. केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री विवेक तंखा ने यह दलील दी कि श्री सुशील कुमार की दलीलों में मूलभूत दोष है चूंकि याची को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के संबंध में, जो कि 2006 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 115 है, गिरफ्तार किया गया था जिसमें आरोप पत्र 90 दिनों की नियत अवधि के भीतर फाइल कर दिया गया था और यह कि उसे केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा फाइल की गई दूसरी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के संबंध में गिरफ्तार नहीं किया गया था । तदनुसार, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधीन व्यतिक्रम

जमानत का फायदा याची को उपलब्ध नहीं था । श्री तंखा ने यह भी दलील दी कि केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा आरंभ किया गया अन्वेषण अम्बाजी पुलिस थाने में फाइल की गई 2006 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 115 के आधार पर प्रारंभ में शुरू किए गए अन्वेषण के अनुसरण में था और यह कि केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा नई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज करना केवल केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के इस न्यायालय द्वारा दिए गए निदेशों के निबंधनों के अनुसार राज्य पुलिस से अन्वेषण ग्रहण करने के प्रयोजन के लिए समर्थ बनाना था ।

16. विचारण में विलंब के प्रश्न के संबंध में श्री तंखा ने यह इंगित किया कि एक सह-अभियुक्त के अनुरोध पर उस पर रोक लगा दी गई थी और इसलिए जहां तक विचारण में विलंब का संबंध है, इसके लिए केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो जिम्मेदार नहीं है । श्री तंखा के अनुसार, किसी भी हालत में आरोप पत्र द्वितीय प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के आधार पर भी पहले ही फाइल कर दिया गया था जिसे 2006 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 115 में फाइल किए गए मूल आरोप पत्र के अनुपूरक आरोप पत्र के रूप में मानना होगा । श्री तंखा ने इंगित किया कि यह भी महत्वपूर्ण था कि याची की ओर से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के निबंधनानुसार व्यतिक्रम जमानत के लिए प्रार्थना अम्बाजी पुलिस थाने में तारीख 28 दिसम्बर, 2006 को दर्ज 2006 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 115 के संबंध में न कि केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा फाइल की गई 9 अप्रैल, 2011 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. आर.सी.-3(एस)/2011/मुम्बई के संबंध में की गई थी ।

17. अतः, श्री तंखा ने यह दलील दी कि याची द्वारा फाइल की गई विशेष इजाजत याचिका पूर्णतः भ्रामक थी और वह खारिज किए जाने योग्य थी ।

18. हमने संबंधित पक्षकारों की ओर से दी गई दलीलों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है और हमें श्री सुशील कुमार की दलीलों को नामंजूर करने में बिल्कुल भी कोई हिचकिचाहट नहीं है । इस मामले की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि याची की ओर से व्यतिक्रम जमानत के लिए प्रार्थना अम्बाजी पुलिस थाने की स्थानीय पुलिस द्वारा दर्ज की गई 2006 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 115 में की गई थी हालांकि उसकी बाबत दलीलें केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा दर्ज की गई पश्चात्वर्ती प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के संबंध में दी गई हैं । यह स्पष्ट है कि याची जमानत मंजूर करने के लिए आवेदन करते समय इस स्थिति से पूर्णतः अवगत था

और वह यह जानता था कि उसे पहली प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के संबंध में गिरफ्तार किया गया था न कि केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा दर्ज की गई द्वितीय प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के अधीन गिरफ्तार किया गया था । यदि द्वितीय अन्वेषण को नए सिरे से किया गया अन्वेषण माना जाता और याची को उसके संबंध में गिरफ्तार किया गया होता तो श्री सुशील कुमार द्वारा दी गई दलीलें सुसंगत होतीं । तथापि, चूंकि व्यतिक्रम जमानत के लिए प्रार्थना 2006 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 115 के संबंध में की गई थी जिसमें आरोप पत्र 90 दिन की नियत अवधि के भीतर फाइल कर दिया गया था इसलिए याची व्यतिक्रम जमानत के संबंध में तर्क प्रस्तुत नहीं कर सकता था और इसलिए ऐसे तर्क को नामंजूर करना होगा । श्री सुशील कुमार की दूसरी इस दलील को भी कि चूंकि इस न्यायालय द्वारा नए सिरे से अन्वेषण करने का निदेश दिया गया था इसलिए पूर्ववर्ती आरोप पत्र के बारे में यह समझा जाना चाहिए कि वह अभिखंडित हो गया है, उसी आधार पर नामंजूर करना होगा ।

19. विचारण पूरा करने में हुए विलंब के प्रश्न के संबंध में भी यह स्पष्ट किया जाता है कि ऐसा विलंब अभियोजन प्राधिकारियों द्वारा कारित नहीं किया गया है बल्कि एक सह-अभियुक्त द्वारा कारित किया गया है और याची द्वारा इसका लाभ नहीं लिया जा सकता है ।

20. चूंकि याची की ओर से मामले के गुणागुण के संबंध में कोई तर्क नहीं दिया गया था इसलिए हम उनकी परीक्षा करने से विरत रहते हैं और हमारी उपर्युक्त मताभिव्यक्तियों के आधार पर हम इस बात से संतुष्ट नहीं हैं कि 2012 की दांडिक प्रकीर्ण याचिका सं. 11364 के साथ-साथ विशेष इजाजत याचिका में इस न्यायालय द्वारा कोई हस्तक्षेप किया जाना अपेक्षित है । अतः, विशेष इजाजत याचिका और दांडिक प्रकीर्ण याचिका खारिज की जाती हैं ।

न्या. चेलामेश्वर –

21. जबकि मैं भारत के माननीय मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा निकाले गए निष्कर्ष से सहमत हूं फिर भी मैं कुछ पंक्तियां जोड़ना चाहता हूं ।

22. माननीय मुख्य न्यायमूर्ति के निर्णय में आवश्यक तथ्यों और याची की ओर से विद्वान् काउन्सेल की दलीलों को स्पष्ट रूप से उपवर्णित किया गया है । मैं याची की ओर से दी गई केवल एक दलील पर विचार करना चाहता हूं – कि 2007 की रिट याचिका (दांडिक) सं. 115 में इस

न्यायालय के तारीख 8 अप्रैल, 2011 के पूर्ववर्ती निर्णय और आदेश का, जिसके द्वारा केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो को तुलसीराम प्रजापति की हत्या के समस्त पहलुओं से संबंधित जांच करने का निदेश दिया गया था, आवश्यक रूप से यह अभिप्राय होगा कि गुजरात पुलिस (केन्द्रीय अन्वेषण विभाग) द्वारा फाइल किया गया आरोप पत्र खारिज हो गया था । मेरी राय में, यह दलील निम्नलिखित कारणों से भ्रामक है ।

23. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 173 किसी मामले का अन्वेषण करने वाली पुलिस पर यह बाध्यता डालती है कि वह मजिस्ट्रेट को उस अपराध का संज्ञान करने के लिए, जो कि अन्वेषण की विषयवस्तु है, एक रिपोर्ट करे । उपधारा (2) में जानकारी के ऐसे विभिन्न भाग उपदर्शित किए गए हैं जिनका उक्त रिपोर्ट में अंतर्विष्ट होना आवश्यक है । धारा 173(2)(i)(घ) में यह अनुबंधित है कि उक्त रिपोर्ट में यह कथित होना चाहिए कि क्या कोई अपराध किया गया प्रतीत होता है और यदि किया गया प्रतीत होता है तो किसके द्वारा । धारा 173(2)(i)(घ) इस प्रकार है :–

> "धारा 173(2)(i) – जैसे ही वह पूरा होता है, वैसे ही पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी, पुलिस रिपोर्ट पर उस अपराध का संज्ञान करने के लिए सशक्त मजिस्ट्रेट को राज्य सरकार द्वारा विहित प्ररूप में एक रिपोर्ट भेजेगा, जिसमें निम्नलिखित बातें कथित होंगी –
>
> (घ) क्या कोई अपराध किया गया प्रतीत होता है और यदि किया गया प्रतीत होता है तो किसके द्वारा ।"

यदि अन्वेषण अधिकारी उक्त रिपोर्ट में यह राय देता है कि कोई अपराध उसमें नामित व्यक्तियों द्वारा किया गया प्रतीत होता है तो वह मजिस्ट्रेट को ऐसी सभी दस्तावेज़ें भेजने के लिए भी आबद्ध है जिन पर निर्भर करने का अभियोजन का विचार है और इसके साथ उन सभी व्यक्तियों के, जिनकी साक्षियों के रूप में परीक्षा करना अभियोजन का विचार है, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन अभिलिखित कथन भी भेजने होंगे । धारा 173(5) निम्न प्रकार है :–

> "धारा 173(5) – जब ऐसी रिपोर्ट का संबंध ऐसे मामले से है जिसको धारा 170 लागू होती है, तब पुलिस अधिकारी को रिपोर्ट के साथ-साथ निम्नलिखित भी भेजेगा –
>
> (क) वे सब दस्तावेज़ या उनके सुसंगत उद्धरण, जिन पर निर्भर करने का अभियोजन का विचार है और जो उनसे भिन्न हैं जिन्हें

अन्वेषण के दौरान मजिस्ट्रेट को पहले ही भेज दिया गया है ;

(ख) उन सब व्यक्तियों के, जिनकी साक्षियों के रूप में परीक्षा करने का अभियोजन का विचार है, धारा 161 के अधीन अभिलिखित कथन ।"

उपधारा (8) में इस तथ्य के होते हुए भी कि धारा 173 की उपधारा (2) के अधीन अनुध्यात रिपोर्ट पहले ही प्रस्तुत कर दी गई थी, किसी अपराध की बाबत कोई अतिरिक्त अन्वेषण करने संबंधी अन्वेषक अधिकारी/अभिकरण के प्राधिकार को मान्यता दी गई है । धारा 173(8) निम्न प्रकार है :–

"धारा 173(8) – इस धारा की कोई बात किसी अपराध के बारे में उपधारा (2) के अधीन मजिस्ट्रेट को रिपोर्ट भेज दी जाने के पश्चात् आगे और अन्वेषण को प्रवारित करने वाली नहीं समझी जाएगी तथा जहां ऐसे अन्वेषण पर पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को कोई अतिरिक्त मौखिक या दस्तावेज़ी साक्ष्य मिले वहां वह ऐसे साक्ष्य के संबंध में अतिरिक्त रिपोर्ट या रिपोर्टें मजिस्ट्रेट को विहित प्ररूप में भेजेगा और उपधारा (2) से (6) तक के उपबंध ऐसी रिपोर्ट या रिपोर्टों के बारे में, जहां तक हो सके, ऐसे लागू होंगे, जैसे वे उपधारा (2) के अधीन भेजी गई रिपोर्ट के संबंध में लागू होते हैं ।"

यह अवेक्षा करना लाभप्रद हो सकता है कि उपधारा (3) के अधीन दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 158 के अधीन नियुक्त कोई वरिष्ठ पुलिस अधिकारी प्रस्तुत की गई रिपोर्ट पर संबंधित मजिस्ट्रेट का आदेश होने तक के लिए अन्वेषक अधिकारी को यह निदेश दे सकेगा कि वह आगे और अन्वेषण करे । यह स्थापित विधि है कि वह मजिस्ट्रेट, जिसे धारा 173(2) के अधीन रिपोर्ट प्रस्तुत की जाती है, अन्वेषण अधिकारी को मामले में आगे और अन्वेषण करने का निदेश दे सकता है । **कश्मीरी देवी** बनाम **दिल्ली प्रशासन**[1] वाले निर्णय में निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया गया है :–

"7. चूंकि प्रत्यर्थियों के अनुसार आरोप पत्र मजिस्ट्रेट को पहले ही पेश किया जा चुका है, इसलिए हम विचारण न्यायालय को, जिसके समक्ष आरोप पत्र पेश किया गया है, मामले का उचित और गहराई से अन्वेषण करने के लिए केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो को निदेश देने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173(8) के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करने के लिए निदेश देते हैं । ऐसा निदेश जारी

---

[1] [1989] 1 उम. नि. प. 195 = (1988) सप्ली. एस. सी. सी. 482, पृ. 7.

होने पर केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो स्वतंत्र और वस्तुपरक रीति में मामले का अन्वेषण करेगा और वह विधि के अनुसार अतिरिक्त आरोप पत्र, यदि कोई हो, पेश करेगा । अपील का तदनुसार निपटारा किया जाता है ।"

24. मेरी राय में, अन्वेषक अधिकारी द्वारा स्वप्रेरणा से या वरिष्ठ पुलिस अधिकारी के निदेशों पर या संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा, जिसे रिपोर्ट भेजी गई है, दिए गए किसी निदेश के अनुसरण में आगे और अन्वेषण करने का अर्थ यह नहीं है कि धारा 173(2) के अधीन प्रस्तुत की गई रिपोर्ट का परित्याग कर दिया गया है या वह नामंजूर कर दी गई है । इसका केवल यह अर्थ है कि या तो अन्वेषण अभिकरण या संबंधित न्यायालय का अन्वेषक अभिकरण द्वारा इकट्ठी की गई सामग्री से पूर्णतः समाधान नहीं हुआ है और उसकी यह राय है कि रिपोर्ट में उपदर्शित अपराध कारित किए जाने के अभिकथनों को कायम रखने की दृष्टि से संभवतः कुछ अतिरिक्त सामग्री की आवश्यकता है ।

25. अतः, याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री सुशील कुमार की यह दलील कि इस न्यायालय द्वारा इससे पूर्व 2007 की रिट याचिका (दांडिक) सं. 115 में दिए गए निदेशों का आवश्यक रूप से यह अभिप्राय होगा कि पुलिस द्वारा प्रस्तुत किया गया आरोप पत्र विवक्षित रूप से नामंजूर हो गया है, विधि की दृष्टि से निराधार और भ्रामक है । मेरी राय में, इस तथ्य से भी कि केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने तात्पर्यित रूप से एक नई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की थी, विधि की दृष्टि से यह निष्कर्ष नहीं निकलता है कि पूर्ववर्ती रिपोर्ट या गुजरात पुलिस (केन्द्रीय अन्वेषण विभाग) द्वारा इकट्ठी की गई वह सामग्री जिसके आधार पर उन्होंने आरोप पत्र फाइल किया था, अस्तित्व में नहीं रही है । इससे केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की केवल प्रशासनिक कार्यप्रणाली प्रदर्शित होती है ।

26. मेरी राय में, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की नई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज करने की कार्यप्रणाली के होते हुए भी, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा किया गया अन्वेषण इस न्यायालय के निदेश के अनुसरण में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173(8) के अधीन आगे और अन्वेषण करने की प्रकृति में आता है ।

याचिका खारिज की गई ।

ग्रो.

———

[2013] 4 उम. नि. प. 91

सी. के. जाफर शरीफ

बनाम

राज्य (केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के माध्यम से)

9 नवम्बर, 2012

न्यायमूर्ति पी. सदाशिवम् और न्यायमूर्ति रंजन गोगोई

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49) – धारा 13(1)(घ) – लोक सेवक द्वारा आपराधिक अवचार – मंत्री के विरुद्ध विदेश में अपने उपचार के संबंध में अपने कर्मचारियों को साथ भेजने के लिए लोक सेक्टर उपक्रमों को प्रेरित करके उन लोक सेक्टर उपक्रमों को हानि कारित करने का अभिकथन – चूंकि मंत्री सुसंगत समय पर प्रश्नगत लोक सेक्टर उपक्रमों का भी प्रधान था और संबंधित कर्मचारियों ने मंत्री के विदेश में उपचार के दौरान उसके शासकीय कर्तव्यों का पालन करने में उसे सहायता प्रदान की थी इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि मंत्री ने स्वयं को या अन्य व्यक्तियों को धनीय लाभ पहुंचाने की दृष्टि से अपनी स्थिति का दुरुपयोग किया था ।

पुलिस अधीक्षक, सी.बी.आई./ए.सी.यू.एक्स एक्स/नई दिल्ली द्वारा एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल की गई थी जिसमें अपीलार्थी द्वारा 21 जून, 1991 से 13 अक्तूबर, 1995 तक केन्द्रीय रेल मंत्री के रूप में अपने कार्यकाल के दौरान भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(1)(घ) के साथ पठित धारा 13(2) के अधीन अपराध कारित करने का अभिकथन किया गया था । अभिकथन इस आधार पर किया गया था कि अपीलार्थी ने राइट्स (रेल इंडिया टेक्नीकल एंड इकोनामिक्स सर्विसेज़ लिमिटेड) और इरकान (इंडियन रेलवे कंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड) के प्रबंध निदेशकों से बेईमानी से अपने चार कर्मचारियों की अपीलार्थी के चिकित्सीय उपचार के संबंध में लंदन की यात्राओं को अनुमोदित कराया था । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में यह अभिकथन किया गया था कि सुसंगत समय पर दोनों लोक सेक्टर उपक्रमों का लंदन में कोई कारबार लंबित नहीं था और उपर्युक्त चार व्यक्तियों द्वारा एकमात्र रूप से अपीलार्थी के आदेश पर यात्राएं की गई थीं जिसने इस बात के लिए बाध्य किया था कि संबंधित कर्मचारियों की सेवाएं प्रश्नगत दो उपक्रमों में रखी जाएं । अतः,

अपीलार्थी के सदोष कार्यों द्वारा लोक सेक्टर उपक्रमों को धनीय हानि कारित हुई थी । उपर्युक्त प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के आधार पर मामला दर्ज किया गया था और उसका अन्वेषण किया गया था । उस अन्वेषण की अंतिम रिपोर्ट विशेष न्यायाधीश के न्यायालय में प्रस्तुत की गई थी । उक्त अंतिम रिपोर्ट में अन्य बातों के साथ-साथ यह कथन किया गया था कि "मामले के ऊपर यथा-कथित तथ्यों और उसकी परिस्थितियों को साबित करने के लिए पर्याप्त दस्तावेज़ी और मौखिक साक्ष्य विद्यमान था जिनसे भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(1)(घ) के साथ पठित धारा 13(2) के अधीन दंडनीय अपराध गठित होता है ।" तथापि, सक्षम प्राधिकारी द्वारा अधिनियम की धारा 19 के अधीन अभियोजन के लिए मंजूरी देने से इनकार कर दिया गया था । तदनुसार, अंतिम रिपोर्ट में यह उल्लेख किया गया था कि अभियुक्त अपीलार्थी के विरुद्ध कार्यवाहियां वापस ले ली गई थीं । विचारण न्यायालय ने अन्वेषक अभिकरण की ओर से फाइल की गई समापन रिपोर्ट को स्वीकार करने से इनकार कर दिया था और यह मत व्यक्त किया था कि अधिनियम की धारा 13(1)(घ) के साथ पठित धारा 13(2) के अधीन अपराध कारित करने के संबंध में प्रथमदृष्ट्या साक्ष्य प्रतीत होता है और संभवतः, अन्वेषण के अनुक्रम में संगृहीत समस्त सामग्री मंजूरी प्राधिकारी के समक्ष नहीं रखी गई थी । विचारण न्यायालय के आदेश के अनुसरण में अन्वेषण अभिकरण द्वारा मामले की पुनः परीक्षा की गई थी जिसने एक अन्य रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें यह कहा गया था कि अन्वेषण के दौरान संगृहीत सभी सामग्री मंजूरी प्रदान करने के लिए सक्षम प्राधिकारी के समक्ष रखी गई थी जिसमें ऐसे स्पष्टीकरण हैं जिनकी समय-समय पर ईप्सा की गई थी । उपर्युक्त रिपोर्ट प्राप्त होने पर विचारण न्यायालय ने अधिनियम की धारा 13(1)(घ) के साथ पठित धारा 13(2) के अधीन दंडनीय अपराध का संज्ञान किया । इसके पश्चात्, अभियुक्त विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ और उन्मोचन की ईप्सा करते हुए एक आवेदन फाइल किया जिससे विचारण न्यायालय द्वारा इनकार कर दिए जाने पर अपीलार्थी ने विशेष न्यायाधीश, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा पारित आदेश को अपास्त करने के लिए और उक्त न्यायालय के समक्ष लंबित दांडिक कार्यवाही को अभिखंडित करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के साथ पठित संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन दिल्ली उच्च न्यायालय में समावेदन किया । उपर्युक्त आवेदन दिल्ली उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा खारिज कर दिए जाने के कारण प्रस्तुत अपील फाइल की गई है ।

उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(1)(घ) के पठन मात्र से यह दर्शित होगा कि उसमें अनुध्यात अपराध तब कारित किया जाता है यदि कोई लोक सेवक भ्रष्ट या अवैध साधनों द्वारा या लोक सेवक के रूप में अपनी स्थिति का दुरुपयोग करके या किसी लोक हित के बिना अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई मूल्यवान चीज़ या धन संबंधी फायदा अभिप्राप्त करता है । अपीलार्थी के विरुद्ध एकमात्र अभिकथन यह है कि उसने राइट्स और इरकान पर इस बात के लिए दबाव डाला कि प्रश्नगत चार कर्मचारियों को अपीलार्थी के चिकित्सीय उपचार के संबंध में लन्दन भेजे जाने के एकमात्र प्रयोजन के लिए प्रतिनियुक्ति पर रखा जाए । यह भी अभिकथित किया गया है कि न तो राइट्स और न ही इरकान का लन्दन में कोई कारबार लंबित था और इन चार व्यक्तियों में से किसी ने भी राइट्स या इरकान से संबंधित कोई कार्य नहीं किया था जब कि वे लन्दन में थे; फिर भी सभी चार व्यक्तियों के आने-जाने के किराए का भुगतान उक्त दो लोक सेक्टर उपक्रमों द्वारा किया गया था । उक्त आधार पर यह अभिकथन किया गया है कि अभियुक्त अपीलार्थी ने अपने पद का दुरुपयोग किया था और किसी लोक हित के बिना प्रश्नगत चार व्यक्तियों की लन्दन यात्राओं की व्यवस्था करके दो लोक सेक्टर उपक्रमों को धनीय हानि कारित की थी । अभियुक्त-अपीलार्थी के विरुद्ध सारतः यही मामला है । (पैरा 14 और 15)

अपीलार्थी सुसंगत समय पर रेल मंत्री के रूप में कार्य करने के अलावा प्रश्नगत दो लोक सेक्टर उपक्रमों का प्रधान था । अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री से यह भी प्रतीत होता है कि इन चार व्यक्तियों ने लन्दन में रहते हुए अपीलार्थी की मंत्री के रूप में कर्तव्यों का निर्वहन करने से संसक्त कतिपय कार्यों का पालन करने में सहायता की थी । इस बात की कल्पना करना कठिन है कि अन्वेषण के अनुक्रम में प्रकट हुई सामग्री द्वारा प्रदर्शित किए गए उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए अपीलार्थी के बारे में यह कैसे अनुमान लगाया जा सकता है कि उसने भ्रष्ट या अवैध साधन अपनाए थे या उसने या तो अपने लिए या उपर्युक्त चार व्यक्तियों में से किसी के लिए कोई मूल्यवान चीज़ या धन संबंधी फायदा अभिप्राप्त करने के लिए लोक सेवक के रूप में अपनी स्थिति का दुरुपयोग किया था । यदि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन परीक्षित साक्षियों के कथनों से यह दर्शित होता है कि उपर्युक्त चार व्यक्तियों ने मंत्री को उसके

लोक कर्तव्यों का निर्वहन करने में सहायता प्रदान करने के लिए कतिपय कार्य किए थे, चाहे ऐसे कार्य कितने ही तुच्छ क्यों न हों, तो किन्हीं भ्रष्ट या अवैध साधनों द्वारा या लोक सेवक के रूप में अपीलार्थी की स्थिति का दुरुपयोग करके कोई धन संबंधी फायदा अभिप्राप्त करने का कोई प्रश्न उद्भूत नहीं हो सकता है । अपीलार्थी मंत्री के रूप में ऐसे पदाधिकारियों और सहायक कर्मचारिवृन्द की संख्या और नामों के बारे में विनिश्चय करने के लिए स्वतंत्र था जो लन्दन में उसके साथ जाने चाहिए थे, यदि यह प्रत्याशा थी कि लन्दन में रहते हुए उसे अपने शासकीय कर्तव्यों का निर्वहन करना होगा । यदि इस प्रक्रिया में लागू नियमों या मानकों का अतिक्रमण किया गया था या किए गए विनिश्चय से अनावश्यक फिजूल-खर्ची का प्रदर्शन दर्शित होता है तो अपीलार्थी का आचरण और कार्य अनुचित या विभागीय मानकों के प्रतिकूल हो सकता है । किन्तु यह कहना सही नहीं होगा कि वह अनुचित धन संबंधी फायदा अभिप्राप्त करने के बेईमान आशय द्वारा प्रेरित था । वह बेईमान आशय धारा 13(1)(घ) के अधीन अपराध का सार है जो कि उसमें प्रयुक्त शब्दों से स्पष्ट है, अर्थात् भ्रष्ट या अवैध साधन और लोक सेवक के रूप में स्थिति का दुरुपयोग । (पैरा 17)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[1963] [1963] सप्ली. (2) एस. सी. आर. 724 :
एम. नारायणन् नाम्बियार बनाम **केरल राज्य** । 17

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2012 की दांडिक अपील सं. 1804.

2010 की रिट याचिका (दांडिक) सं. 262 में दिल्ली उच्च न्यायालय के तारीख 11 अप्रैल, 2012 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री पी. पी. राव, राजीव दत्ता, ज्येष्ठ अधिवक्ता और गोपाल सिंह

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री मोहन जैन, अपर महासालिसिटर, डी. के. ठाकुर, एम. तातिया, बी. वी. बी. दास और अरविन्द कुमार शर्मा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति रंजन गोगोई ने दिया ।

न्या. गोगोई - इजाजत दी जाती है ।

2. प्रस्तुत अपील में दिल्ली उच्च न्यायालय के तारीख 11 अप्रैल,

2012 के उस निर्णय और आदेश को चुनौती दी गई है जिसके द्वारा विद्वान् विचारण न्यायालय के उस आदेश को पुष्ट किया गया था जिसके द्वारा अपीलार्थी की ओर से उसके विरुद्ध संस्थित दांडिक अभियोजन में उन्मोचन के लिए फाइल किया गया आवेदन नामंजूर कर दिया गया था ।

3. उच्च न्यायालय का उपरोक्त आदेश, जिसे प्रस्तुत कार्यवाही में चुनौती दी गई है, निम्नलिखित तथ्यों के आधार पर पारित किया गया था ।

पुलिस अधीक्षक, सी.बी.आई./ए.सी.यू.एक्स.एक्स/नई दिल्ली द्वारा तारीख 3 जून, 1998 की एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल की गई थी जिसमें अपीलार्थी द्वारा 21 जून, 1991 से 13 अक्तूबर, 1995 तक केन्द्रीय रेल मंत्री के रूप में अपने कार्यकाल के दौरान भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 13(1)(घ) के साथ पठित धारा 13(2) के अधीन अपराध कारित करने का अभिकथन किया गया था । अधिनियम के उपर्युक्त उपबंध के अधीन अपराध कारित करने का अभिकथन इस आधार पर किया गया था कि अपीलार्थी ने राइट्स (रेल इंडिया टेक्नीकल एंड इकोनमिक्स सर्विसेज़ लिमिटेड) और इरकान (इंडियन रेलवे कंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड) के प्रबंध निदेशकों से बेईमानी से सर्वश्री बी. एन. नगेश, रेल मंत्री के तत्कालीन अपर निजी सचिव, एस. एम. मस्तान और मुरलीधरन, रेलवे सैल में आशुलिपिक और श्री समुउल्ला (अपीलार्थी का घरेलू नौकर) की अपीलार्थी के चिकित्सीय उपचार के संबंध में लंदन की यात्राओं को अनुमोदित कराया था । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में यह अभिकथन किया गया था कि सुसंगत समय पर दोनों लोक सेक्टर उपक्रमों का लंदन में कोई कारबार लंबित नहीं था और उपर्युक्त चार व्यक्तियों द्वारा एकमात्र रूप से अपीलार्थी के आदेश पर यात्राएं की गई थीं जिसने इस बात के लिए बाध्य किया था कि संबंधित कर्मचारियों की सेवाएं प्रश्नगत दो उपक्रमों में रखी जाएं । अतः, अपीलार्थी के सदोष कार्यों द्वारा लोक सेक्टर उपक्रमों को धनीय हानि कारित हुई थी ।

4. उपर्युक्त प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के आधार पर मामला सं. आर. सी. 2(ए)/98-ए.सी.यू. IX दर्ज किया गया था और उसका अन्वेषण किया गया था । उस अन्वेषण की अंतिम रिपोर्ट पटियाला हाउस, नई दिल्ली के विद्वान् विशेष न्यायाधीश के न्यायालय में तारीख 22 अक्तूबर, 2005 को प्रस्तुत की गई थी । उक्त अंतिम रिपोर्ट में अन्य बातों के साथ-साथ यह कथन किया गया था कि "मामले के ऊपर यथा-कथित तथ्यों और उसकी

परिस्थितियों को साबित करने के लिए पर्याप्त दस्तावेज़ी और मौखिक साक्ष्य विद्यमान था जिनसे भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(1)(घ) के साथ पठित धारा 13(2) के अधीन दंडनीय अपराध गठित होता है ।" तथापि, सक्षम प्राधिकारी द्वारा अधिनियम की धारा 19 के अधीन अभियोजन के लिए मंजूरी देने से इनकार कर दिया गया था । तदनुसार, अंतिम रिपोर्ट में यह उल्लेख किया गया था कि अभियुक्त अपीलार्थी के विरुद्ध कार्यवाहियां वापस ले ली गई थीं ।

5. विद्वान् विचारण न्यायालय ने तारीख 25 अगस्त, 2006 के अपने आदेश द्वारा अन्वेषक अभिकरण की ओर से फाइल की गई समापन रिपोर्ट को स्वीकार करने से इनकार कर दिया था और यह मत व्यक्त किया था कि अधिनियम की धारा 13(1)(घ) के साथ पठित धारा 13(2) के अधीन अपराध कारित करने के संबंध में प्रथमदृष्ट्या साक्ष्य प्रतीत होता है और संभवतः, अन्वेषण के अनुक्रम में संगृहीत समस्त सामग्री मंजूरी प्राधिकारी के समक्ष नहीं रखी गई थी ।

6. विद्वान् विचारण न्यायालय के आदेश के अनुसरण में अन्वेषण अभिकरण द्वारा मामले की पुनः परीक्षा की गई थी जिसने तारीख 1 अगस्त, 2007 की एक अन्य रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें यह कहा गया था कि अन्वेषण के दौरान संगृहीत सभी सामग्री मंजूरी प्रदान करने के लिए सक्षम प्राधिकारी के समक्ष रखी गई थी जिसमें ऐसे स्पष्टीकरण हैं जिनकी समय-समय पर ईप्सा की गई थी ।

7. तारीख 1 अगस्त, 2007 की उपर्युक्त रिपोर्ट प्राप्त होने पर विद्वान् विचारण न्यायालय ने तारीख 26 जुलाई, 2008 के अपने आदेश द्वारा अधिनियम की धारा 13(1)(घ) के साथ पठित धारा 13(2) के अधीन दंडनीय अपराध का संज्ञान किया ।

8. इसके पश्चात्, अभियुक्त विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ और उन्मोचन की ईप्सा करते हुए एक आवेदन फाइल किया जिससे विचारण न्यायालय द्वारा तारीख 27 जनवरी, 2010 के आदेश द्वारा इनकार कर दिए जाने पर अपीलार्थी ने विद्वान् विशेष न्यायाधीश, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो, रोहिणी, नई दिल्ली द्वारा पारित तारीख 27 जनवरी, 2010 के आदेश को अपास्त करने के लिए और उक्त न्यायालय के समक्ष लंबित दांडिक कार्यवाही को अभिखंडित करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के साथ पठित संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन दिल्ली उच्च

न्यायालय में समावेदन किया । उपर्युक्त आवेदन दिल्ली उच्च न्यायालय के तारीख 11 अप्रैल, 2012 के आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा खारिज कर दिए जाने के कारण प्रस्तुत अपील फाइल की गई है ।

9. हमने अपीलार्थी की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल श्री पी. पी. राव और राज्य की ओर से विद्वान् अपर महासालिसिटर श्री मोहन जैन को सुना है ।

10. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल श्री राव ने यह दलील दी है कि वह उच्च न्यायालय के आक्षेपित आदेश को अपेक्षित मंजूरी न होने के आधार पर न तो अधिनियम के उपबंधों के अधीन और न ही दंड प्रक्रिया संहिता के उपबंधों के अधीन चुनौती देगा । श्री राव ने यह दलील दी है कि प्रस्तुत अपील में उपर्युक्त मुद्दे की परीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है चूंकि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में किए गए अभिकथनों और अन्वेषक अभिकरण की रिपोर्टों से प्रकट होने वाले तथ्यों से प्रत्यक्षतः अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा अधिनियम की धारा 13(1)(घ) के अधीन कोई अपराध किया जाना साबित नहीं होता है जिससे की उसके विरुद्ध अभियोजन चालू करने की आवश्यकता हो । न्यायालय का ध्यान उच्च न्यायालय द्वारा अन्वेषण के अनुक्रम में परीक्षित साक्षियों के कथनों, विशेषकर श्री बी. एन. नगेश (अभि. सा. 33), श्री मुरलीधरन (अभि. सा. 34) और श्री एस. एम. मस्तान के कथनों पर विचार करने की ओर आकर्षित करते हुए यह दलील दी जाती है कि उपर्युक्त व्यक्तियों के कथनों से यह पूर्णतः स्पष्ट होता है कि अपीलार्थी के साथ जाने वाले व्यक्तियों ने लन्दन में रहते समय विभिन्न शासकीय कर्तव्यों का पालन किया था । यह दलील दी गई है कि अभियुक्त-अपीलार्थी लन्दन में चिकित्सा उपचार कराते समय रेल मंत्री ही था और अपीलार्थी ने अपने उपचार की अवधि के दौरान मंत्रालय तथा राइट्स और इरकान से संबंधित कार्य और कर्तव्य किए थे जिन निकायों का अपीलार्थी, रेल मंत्री के रूप में प्रधान था । इस प्रकार, उन व्यक्तियों ने, जो अपीलार्थी के साथ लन्दन गए थे जिसके कारण लोक सेक्टर उपक्रमों को अभिकथित धनीय हानि कारित हुई थी, वास्तव में मंत्री के विदेश में रहने के दौरान उसके कर्तव्यों के सम्यक् निर्वहन में उसकी सहायता की थी । श्री राव के अनुसार, चूंकि उक्त तथ्य दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन अन्वेषक प्राधिकारी द्वारा लेखबद्ध व्यक्तियों के कथनों से प्रतीत होता है इसलिए प्रत्यक्षतः धारा 13(1)(घ) के अधीन अपराध गठित करने के लिए आवश्यक घटक विद्यमान नहीं हैं । अतः, यह दलील दी

जाती है कि उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी के विरुद्ध दांडिक कार्यवाही अभिखंडित न करके और उसका जारी रखना अनुज्ञात करके घोर गलती की थी ।

11. विद्वान् अपर महासालिसिटर श्री जैन ने अभियुक्त-अपीलार्थी की ओर से दी गई दलीलों का विरोध करते हुए इस बात पर जोर दिया है कि अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष जिस एकमात्र मुद्दे पर जोर दिया गया था वह अधिनियम के उपबंधों के अधीन या दंड प्रक्रिया संहिता के उपबंधों के अधीन मंजूरी के अभाव में अभियोजन जारी रखने की अधिकारिता की अंतर्निहित कमी के संबंध में था । उच्च न्यायालय के समक्ष विद्वान् विचारण न्यायालय के तारीख 27 जनवरी, 2010 के उस आदेश की विधिमान्यता के बारे में प्रश्न उठाया गया था जिसके द्वारा अभियुक्त को उन्मोचित करने से इनकार कर दिया गया था । अतः, अपीलार्थी चुनौती देने की परिधि को आक्षेपित दांडिक कार्यवाही की समग्र विधिमान्यता तक विस्तारित करने के लिए स्वतंत्र नहीं है । इस संबंध में, विद्वान् अपर महासालिसिटर ने अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा उन्मोचन के लिए फाइल किया गया आवेदन; विचारण न्यायालय का तारीख 27 जनवरी, 2010 वाला आदेश तथा उच्च न्यायालय के तारीख 11 अप्रैल, 2012 वाले आदेश का सुसंगत भाग हमारे समक्ष रखा है । श्री जैन ने इसके अलावा यह दलील दी है कि प्रस्तुत मामले में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में किए गए उन विनिर्दिष्ट अभिकथनों को ध्यान में रखते हुए, जिनका संबंध अधिनियम की धारा 13(1)(घ) के साथ पठित धारा 13(2) के अधीन अपराध कारित करने से है, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के अधीन मंजूरी अभिप्राप्त करने की अपेक्षा उद्भूत नहीं होती है । स्वीकृततः, यह दलील दी गई है कि चूंकि अभियुक्त-अपीलार्थी तारीख 10 नवम्बर, 2000 से मंत्री तथा संसद् सदस्य नहीं रहा है इसलिए प्रस्तुत मामले में धारा 19 के अधीन मंजूरी अभिप्राप्त करने का कोई प्रश्न उद्भूत नहीं हो सकता है । श्री जैन ने यह दलील भी दी कि बहरहाल इस प्रक्रम पर अभिलेख पर लाई गई सामग्री से निश्चित रूप से यह साबित नहीं हो सकता है कि अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा अभिकथित अपराध कारित नहीं किया गया है । इस मामले का अवधारण विचारण के अनुक्रम में करना होगा जिसे जारी रखने की अनुज्ञा दी जा सकती है और उसे उसके तर्कसम्मत निष्कर्ष तक पहुंचाया जा सकता है ।

12. प्रारंभ में, हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि हम विद्वान् अपर

महासालिसिटर द्वारा इस संबंध में दी गई दलील से सहमत नहीं हैं कि अपीलार्थी द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष उठाया गया एकमात्र मुद्दा आक्षेपित अभियोजन के लिए मंजूरी न होने के संबंध में था । जबकि विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष कार्यवाही का उक्त स्वरूप हो सकता है तथापि, अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष फाइल किए गए आवेदन में समग्र रूप से दांडिक कार्यवाही जारी रखने की विधिमान्यता को अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर प्रश्नगत किया गया था कि जो अभिकथन किए गए हैं उनसे प्रत्यक्षतः धारा 13(1)(घ) के अधीन अपराध के संघटक साबित नहीं होते हैं । हमने पहले ही यह अपेक्षा की है कि अपीलार्थी द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष दो उपचारों के लिए प्रार्थना की गई थी, अर्थात्, विद्वान् विचारण न्यायालय के तारीख 27 जनवरी, 2010 के आदेश में हस्तक्षेप तथा दांडिक कार्यवाही को अभिखंडित करना । सुसंगत अभिलेखों द्वारा प्रदर्शित उपर्युक्त स्थिति को ध्यान में रखते हुए हम प्रस्तुत अपील की परिधि को मंजूरी के प्रश्न तक सीमित करने के लिए कोई कारण नहीं पाते हैं और विद्वान् विचारण न्यायालय के तारीख 27 जनवरी, 2010 के आदेश और उच्च न्यायालय के तारीख 11 अप्रैल, 2012 के आक्षेपित आदेश की केवल उस आधार पर विधिक विधिमान्यता की परीक्षा करते हैं । इसके बजाय, हमारा यह मत है कि चूंकि अभियुक्त-अपीलार्थी ने इस आधार पर समग्र कार्यवाही की विधिमान्यता से संबंधित मुद्दे उठाए हैं कि प्रत्यक्षतः कोई अपराध प्रकट नहीं होता है इसलिए अपीलार्थी प्रस्तुत अपील में उक्त प्रश्न उठाने के लिए स्वतंत्र है ।

13. अब अधिनियम की धारा 13(1)(घ) को नीचे उद्धृत किया जाता है :–

> "धारा 13 : लोक सेवक द्वारा आपराधिक अवचार – (1) कोई लोक सेवक आपराधिक अवचार का अपराध करने वाला कहा जाता है, –
>
> (क) .....
>
> (ख) .....
>
> (ग) .....
>
> (घ) यदि वह, –
>
> (i) भ्रष्ट या अवैध साधनों से अपने लिए या किसी

अन्य व्यक्ति के लिए कोई मूल्यवान चीज़ या धन संबंधी फायदा अभिप्राप्त करता है; या

(ii) लोक सेवक के रूप में अपनी स्थिति का अन्यथा दुरुपयोग करके अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई मूल्यवान चीज़ या धन संबंधी फायदा अभिप्राप्त करता है; या

(iii) लोक सेवक के रूप में पद धारण करके किसी व्यक्ति के लिए कोई मूल्यवान चीज़ या धन संबंधी फायदा बिना किसी लोक हित के अभिप्राप्त करता है; या

(ङ) ....."

14. अधिनियम के उपर्युक्त उपबंध के पठन मात्र से यह दर्शित होगा कि उसमें अनुध्यात अपराध तब कारित किया जाता है यदि कोई लोक सेवक भ्रष्ट या अवैध साधनों द्वारा या लोक सेवक के रूप में अपनी स्थिति का दुरुपयोग करके या किसी लोक हित के बिना अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई मूल्यवान चीज़ या धन संबंधी फायदा अभिप्राप्त करता है । अधिनियम के उपर्युक्त उपबंध, अर्थात् धारा 13(1)(घ) भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 5(1)(घ) के अधीन आने वाले अपराध के किंचित समरूप हैं ।

15. प्रस्तुत मामले के तथ्यों का उल्लेख करते हुए यह पहले ही अवेक्षा की जा चुकी है कि अपीलार्थी के विरुद्ध एकमात्र अभिकथन यह है कि उसने राइट्स और इरकान पर इस बात के लिए दबाव डाला कि प्रश्नगत चार कर्मचारियों को अपीलार्थी के चिकित्सीय उपचार के संबंध में लन्दन भेजे जाने के एकमात्र प्रयोजन के लिए प्रतिनियुक्ति पर रखा जाए । यह भी अभिकथित किया गया है कि न तो राइट्स और न ही इरकान का लन्दन में कोई कारबार लंबित था और इन चार व्यक्तियों में से किसी ने भी राइट्स या इरकान से संबंधित कोई कार्य नहीं किया था जब कि वे लन्दन में थे; फिर भी सभी चार व्यक्तियों के आने-जाने के किराए का भुगतान उक्त दो लोक सेक्टर उपक्रमों द्वारा किया गया था । उक्त आधार पर यह अभिकथन किया गया है कि अभियुक्त अपीलार्थी ने अपने पद का दुरुपयोग किया था और किसी लोक हित के बिना प्रश्नगत चार व्यक्तियों की लन्दन यात्राओं की व्यवस्था करके दो लोक सेक्टर उपक्रमों को धनीय हानि कारित की थी । अभियुक्त-अपीलार्थी के विरुद्ध सारतः यही मामला है ।

16. किसी अभियुक्त के दायित्व के संबंध में दांडिक न्यायशास्त्र का वह मूल सिद्धांत जो प्रस्तुत मामले को लागू हो सकता है, के. डा. गौड़ की कृति "क्रिमिनल ला" में पाया जाता है । उपर्युक्त कृति में से सुसंगत लेखांश नीचे उद्धृत किए जा सकते हैं :–

> "किसी व्यक्ति को दांडिक विधि के अतिक्रमण के कारण आपराधिक दोषिता लागू होगी । तथापि, यह नियम आत्यांतिक नहीं है और वह लेटिन सूत्र 'एक्टस नान फेसिट रेयम, निसी मेंन्स सिट रिया' (केवल कार्य किसी को अपराधी नहीं बनाता यदि उसका मन भी अपराधी न हो) में उपदर्शित परिसीमाओं के अध्यधीन है । इससे यह प्रकट होता है कि किसी अपराधी मन के बिना कोई अपराध नहीं हो सकता है । किसी व्यक्ति को आपराधिक दृष्टि से उत्तरदायी बनाने के लिए यह अवश्य ही साबित किया जाना चाहिए कि कोई ऐसा कार्य, जो विधि द्वारा निषिद्ध है, उसके आचरण द्वारा कारित हुआ है और यह कि उस आचरण के साथ विधिक रूप से मन का दोषी रुख भी जुड़ा हुआ था । इस प्रकार, प्रत्येक अपराध के दो संघटक होते हैं, एक भौतिक तत्व और दूसरा मानसिक तत्व जिन्हें प्राय क्रमशः एक्टस रेयस (अपराधी कार्य) और मेन्स रिया (अपराधी मन) कहा जाता है ।"

17. यह पहले ही अवेक्षा की जा चुकी है कि अपीलार्थी सुसंगत समय पर रेल मंत्री के रूप में कार्य करने के अलावा प्रश्नगत दो लोक सेक्टर उपक्रमों का प्रधान था । अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री से यह भी प्रतीत होता है कि इन चार व्यक्तियों ने लन्दन में रहते हुए अपीलार्थी की मंत्री के रूप में कर्तव्यों का निर्वहन करने से संसक्त कतिपय कार्यों का पालन करने में सहायता की थी । इस बात की कल्पना करना कठिन है कि अन्वेषण के अनुक्रम में प्रकट हुई सामग्री द्वारा प्रदर्शित किए गए उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए अपीलार्थी के बारे में यह कैसे अनुमान लगाया जा सकता है कि उसने भ्रष्ट या अवैध साधन अपनाए थे या उसने या तो अपने लिए या उपर्युक्त चार व्यक्तियों में से किसी के लिए कोई मूल्यवान चीज़ या धन संबंधी फायदा अभिप्राप्त करने के लिए लोक सेवक के रूप में अपनी स्थिति का दुरुपयोग किया था । यदि धारा 161 के अधीन परीक्षित साक्षियों के कथनों से यह दर्शित होता है कि उपर्युक्त चार व्यक्तियों ने मंत्री को उसके लोक कर्तव्यों का निर्वहन करने में सहायता प्रदान करने के लिए कतिपय कार्य किए थे, चाहे ऐसे कार्य कितने ही तुच्छ क्यों न हों, तो

किन्हीं भ्रष्ट या अवैध साधनों द्वारा या लोक सेवक के रूप में अपीलार्थी की स्थिति का दुरुपयोग करके कोई धन संबंधी फायदा अभिप्राप्त करने का कोई प्रश्न उद्भूत नहीं हो सकता है । अपीलार्थी मंत्री के रूप में ऐसे पदाधिकारियों और सहायक कर्मचारिवृन्द की संख्या और नामों के बारे में विनिश्चय करने के लिए स्वतंत्र था जो लन्दन में उसके साथ जाने चाहिए थे, यदि यह प्रत्याशा थी कि लन्दन में रहते हुए उसे अपने शासकीय कर्तव्यों का निर्वहन करना होगा । यदि इस प्रक्रिया में लागू नियमों या मानकों का अतिक्रमण किया गया था या किए गए विनिश्चय से अनावश्यक फिजूल-खर्ची का प्रदर्शन दर्शित होता है तो अपीलार्थी का आचरण और कार्य अनुचित या विभागीय मानकों के प्रतिकूल हो सकता है । किन्तु यह कहना सही नहीं होगा कि वह अनुचित धन संबंधी फायदा अभिप्राप्त करने के बेईमान आशय द्वारा प्रेरित था । वह बेईमान आशय धारा 13(1)(घ) के अधीन अपराध का सार है जो कि उसमें प्रयुक्त शब्दों से स्पष्ट है, अर्थात् भ्रष्ट या अवैध साधन और लोक सेवक के रूप में स्थिति का दुरुपयोग । इसी प्रकार का मत इस न्यायालय द्वारा **एम. नारायणन् नाम्बियार** बनाम **केरल राज्य**[1] वाले मामले में भी 1947 के अधिनियम की धारा 5 के उपबंधों पर विचार करते समय अभिव्यक्त किया गया था । यदि अभिलेख पर उपलब्ध समस्त सामग्री से उपर्युक्त स्थिति उपदर्शित होती है तो हमें अपीलार्थी के विरुद्ध अभियोजन जारी रखने की अनुज्ञा देने का कोई कारण प्रतीत नहीं होता है । हमारी राय में, ऐसा जारी रखना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा और अतः न्यायालय का यह स्पष्ट कर्तव्य है कि वह उस पर रोक लगाए ।

18. उपर्युक्त कारणों से हम यह अपील मंजूर करते हैं, उच्च न्यायालय के तारीख 11 अप्रैल, 2012 के निर्णय और आदेश तथा विद्वान् विचारण न्यायालय के तारीख 27 जनवरी, 2010 के आदेश को अपास्त करते हैं और अभियुक्त-अपीलार्थी के विरुद्ध रजिस्ट्रीकृत कार्यवाहियों को अभिखंडित करते हैं ।

अपील मंजूर की गई ।

ग्रो.

---

[1] [1963] सप्ली. (2) एस. सी. आर. 724.

पुलिस उप महानिरीक्षक

बनाम

समुतिराम

30 नवम्बर, 2012

न्यायमूर्ति के. एस. राधाकृष्णन् और न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 311 – अनुशासनिक कार्यवाही और दांडिक विचारण का साथ-साथ चलना – अपचारी अधिकारी की दांडिक विचारण में दोषमुक्ति – अनुशासनिक कार्यवाही का प्रभावित न होना – इस संबंध में कोई भी सेवा नियम न होने के कारण यदि अपचारी की दोषमुक्ति ससम्मान की जाए तब भी वह इस आधार पर सेवा संबंधी कोई भी फायदा पाने का हकदार नहीं होगा – प्रत्यर्थी की दोषमुक्ति अभियोजन पक्ष द्वारा महत्वपूर्ण साक्षियों की परीक्षा न कराए जाने के कारण हुई है – ऐसी दोषमुक्ति को ससम्मान नहीं कहा जा सकता है – प्रत्यर्थी की पदच्युति के आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 21, 14 और 15 – महिलाओं के साथ छेड़छाड़ – गरिमा और सम्मान के साथ जीने के लिए नागरिक के अधिकार का अतिक्रमण – महिलाओं के साथ छेड़छाड़ करने से विनाशकारी परिणाम होना – सार्वजनिक विधि के अभाव में, महिलाओं के साथ छेड़छाड़ की बुराई को रोकने के लिए न्यायालय द्वारा किए गए निदेशों का पालन करना होगा ।

वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थी जब आरक्षित सशस्त्र बल, पलायमकोटई में ड्यूटी पर था तब उसने तारीख 9 जुलाई, 1999 को अपराह्न 8.30 बजे कोर्टआलम सीजन बंदोबस्त चौकी पर ड्यूटी पर आया था । अपराह्न लगभग 11.00 बजे, वह नशे की हालत में टेनकासी बस अड्डे पर गया और उसने एक विवाहित महिला के साथ दुर्व्यवहार किया और उसे छेड़ा जो अपने पति के साथ एक बस में चढ़ने के लिए प्रतीक्षा कर रही थी । प्रत्यर्थी उक्त महिला के पास बुरे आशय के साथ गया और उसने पति और पत्नी को यह कहते हुए धमकी दी कि यदि वह उसके साथ नहीं जाएगी तो वह पति के विरुद्ध एक मामला दर्ज करा देगा । इसके अतिरिक्त उसने

उन्हें अपनी पहचान एक पुलिसकर्मी के रूप में दी थी । पति और पत्नी दोनों भयभीत हो गए और उन्होंने एक पुलिसकर्मी अर्थात् हैड कांस्टेबल अदियोदी (सं. 1368) को शिकायत की जो कि बस स्टैंड के दूसरी ओर टेनकासी पुलिस थाने के हैड कांस्टेबल पीटर (सं. 1079) के साथ खड़ा हुआ था । वे बस स्टैंड पर रात्रि ड्यूटी पर थे । वे घटनास्थल की ओर दौड़े और उन्होंने प्रत्यर्थी को अभिरक्षा में ले लिया और उसे पति-पत्नी के साथ टेनकासी पुलिस थाना लेकर आए । इसके पश्चात् तारीख 10 जुलाई, 1999 को प्रत्यर्थी के विरुद्ध पुलिस थाने पर दंड संहिता, 1860 की धारा 509 और महिलाओं को छेड़े जाने पर प्रतिषेध अधिनियम, 1998 की धारा 4 के अधीन एक परिवाद सं. 625/1999 दर्ज की । इसके पश्चात् मामला सं. पी 1/34410/99 में डायरी सं. 1360/1999 के अनुसार तारीख 18 जुलाई, 1999 के आदेश के अधीन तारीख 10 जुलाई, 1999 (पूर्वाह्न) से प्रत्यर्थी को निलम्बनाधीन रखा गया था और तमिलनाडु पुलिस अधीनस्थ सेवा (अनुशासनात्मक और अपील) नियम, 1955 (संक्षेप में 'तमिलनाडु सेवा नियम' कहा गया है) के नियम 3(ख) के अधीन विभागीय कार्यवाहियां प्रारंभ की गई थीं और उसके विरुद्ध तारीख 9 जुलाई, 1999 को टेनकासी बस अड्डे पर शराब के नशे की हालत में एक विवाहित महिला से अभद्र व्यवहार जैसे अत्यंत अनुचित आचरण के संदर्भ में प्रारंभ की गई थीं । इसके अतिरिक्त यह भी अवेक्षा की गई थी कि वह तारीख 10 जुलाई, 1999 को पूर्वाह्न 7.00 बजे से अगले दिन 3.45 बजे तक ड्यूटी से अनुपस्थित पाया गया था । पदच्युति आदेश से व्यथित होकर प्रत्यर्थी ने तमिलनाडु प्रशासनिक ट्रायब्युनल, चेन्नई के समक्ष वर्ष 2000 की मूल आवेदन सं. 1144 फाइल की । जब आवेदन अधिकरण के समक्ष लंबित था, न्यायिक मजिस्ट्रेट, टेनकासी ने तारीख 20 नवम्बर, 2000 को वर्ष 2000 की एसटीएस सं. 613 में निर्णय दिया जिसके अधीन प्रत्यर्थी को सभी आरोपों से दोषमुक्त किया गया था । दांडिक न्यायालय के निर्णय को अधिकरण की अवेक्षा में लाया गया था और यह दलील दी गई थी कि उन्हीं तथ्यों के आधार पर अपचारी के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही नहीं की जानी चाहिए । अधिकरण ने यह अवेक्षा की कि पति और पत्नी दोनों ने जांच अधिकारी के समक्ष यह अभिसाक्ष्य दिया था कि प्रत्यर्थी ने अपराध कारित किया था और इस अभिसाक्ष्य का दो पुलिसकर्मियों, जिन्होंने प्रत्यर्थी को घटनास्थल से अभिरक्षा में लिया था, सहित अन्य अभियोजन साक्षियों द्वारा समर्थन किया गया । तदनुसार, मूल आवेदन अधिकरण द्वारा तारीख 23 मार्च, 2004 के आदेशानुसार खारिज किया गया था । आदेश को उच्च

न्यायालय मद्रास के समक्ष 2004 की रिट याचिका सं. 13726 में प्रत्यर्थी द्वारा चुनौती दी गई थी । उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि यदि किसी अधिकारी के विरुद्ध दांडिक मामला और विभागीय कार्यवाहियां एक ही तथ्यों और साक्ष्य पर आधारित हैं और दांडिक मामले की परिणति सम्मानजनक दोषमुक्ति में हुई है न कि तकनीकी आधारों पर, वहां पर घरेलू जांच के निष्कर्षों के आधार पर सेवा से अपचारी अधिकारी के पदच्युत किए जाने का दंड आधारित करना विधिक रूप से मान्य नहीं होगा । उच्च न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया कि उस चिकित्सक के अभिसाक्ष्य को जिसकी अभि. सा. 8 के रूप में परीक्षा की गई थी और उसके द्वारा जारी किए गए प्रमाणपत्र को, प्रत्यर्थी को दोषी अभिनिर्धारित करने के लिए पर्याप्त सामग्री नहीं माना जा सकता था और यह भी नहीं माना जा सकता था कि उसने शराब पी रखी थी अपितु वह सामान्य पाया गया था और उस पर शराब के नशे का प्रभाव नहीं पड़ा था । इसलिए उच्च न्यायालय ने रिट याचिका मंजूर की और उसे सेवा से पदच्युत करने वाला आक्षेपित आदेश अपास्त किया । इसके आगे यह आदेश किया गया था कि प्रत्यर्थी को तुरंत ही आपराधिक मामले में दोषमुक्ति की तारीख से संदाय किए जाने तक पिछली सभी मजदूरी/तनख्वाह तुरंत ही सेवा में उसकी निरंतरता पुनःस्थापित करते हुए प्रदान की जाए । राज्य ने उक्त निर्णय से व्यथित होकर पुलिस उपमहानिरीक्षक के माध्यम से विशेष इजाजत याचिका द्वारा यह अपील फाइल की है । राज्य की ओर से फाइल की गई अपील को मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय का यह मत है कि किसी दांडिक न्यायालय द्वारा किसी कर्मचारी की की गई मात्र दोषमुक्ति का विभाग द्वारा चलाई गई अनुशासनिक कार्यवाहियों पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता । यह उल्लेखनीय है कि प्रत्यर्थी अनुशासनिक बल का सदस्य है और दांडिक न्यायालय के समक्ष दो महत्वपूर्ण साक्षियों अर्थात् अदियोदी और पीटर की परीक्षा न किया जाना हमारे मतानुसार अभियोजन पक्ष द्वारा चलाए गए आपराधिक मामले में एक गंभीर त्रुटि है । मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए आपराधिक मामले में अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 को सिखाए-पढ़ाए जाने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है । हम यह नहीं समझ पा रहे हैं कि अभियोजन पक्ष ने पुलिस थाना टेनकासी के हैड कांस्टेबल सं. 1368 अर्थात् अदियोदी और हैड कांस्टेबल सं. 1079 अर्थात् पीटर की परीक्षा क्यों नहीं की है । यही वे दो हैड कांस्टेबल हैं जो पति

(अभि. सा. 1) और पत्नी (अभि. सा. 2) के साथ प्रत्यर्थी को घटनास्थल से पुलिस थाना टेनकासी लेकर गए थे और उन्हीं की मौजूदगी में वह शिकायत दर्ज कराई गई थी । वास्तव में, दांडिक न्यायालय ने यह भी राय व्यक्त की है कि पति अर्थात् शिकायतकर्ता (अभि. सा. 1) के हस्ताक्षर प्रदर्श पी. 1 अर्थात् शिकायत/परिवाद पर मौजूद हैं । इसके अतिरिक्त, चिकित्सक (अभि. सा. 8) ने जांच अधिकारी के समक्ष स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि प्रत्यर्थी शराब के नशे में था और उसने रक्त और मूत्र की परीक्षा कराने से इनकार कर दिया था । ऐसी तथ्यात्मक स्थिति होने पर, न्यायालय का यह मत है कि प्रत्यर्थी को दांडिक न्यायालय द्वारा ससम्मान दोषमुक्त नहीं किया गया है अपितु केवल इस तथ्य के कारण दोषमुक्त किया गया है कि अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 पक्षद्रोही हो गए थे और अन्य अभियोजन साक्षियों की परीक्षा नहीं कराई गई थी । जैसा कि न्यायालय ने पहले ही उपदर्शित किया है, पुनःस्थापित किए जाने के लिए सेवा नियम में किसी भी उपबंध के अभाव में यदि किसी कर्मचारी को किसी दांडिक न्यायालय द्वारा ससम्मान दोषमुक्त किया जाता है, तब कर्मचारी को सेवा में पुनःस्थापित किए जाने सहित किसी भी लाभ का दावा करने के लिए कोई भी अधिकार प्रदत्त नहीं किया गया है । इसका यह कारण है कि किसी व्यक्ति को किसी दांडिक न्यायालय द्वारा दोषी ठहराने और अनुशासनिक कार्यवाही द्वारा जांच कराए जाने के सबूत के मानक भिन्न-भिन्न हैं । आपराधिक मामले में अभियुक्त का दोष सिद्ध करने का भार अभियोजन पक्ष पर होता है और यदि वह संदेह के परे दोष साबित करने में असफल रहता है तो अभियुक्त को निर्दोष समझा जाएगा । यह सुस्थापित विधि है कि किसी दांडिक न्यायालय में दोष साबित करने के लिए सबूत का जो कड़ा भार अपेक्षित है वह अनुशासनिक कार्यवाहियों में अपेक्षित नहीं है, अनुशासनिक कार्यवाहियों में तो संभाव्यताओं का बाहुल्य ही पर्याप्त है । ऐसे भी मामले हैं जिनमें तकनीकी कारणों से अभियुक्त को दोषमुक्त किया जाता है या कुछ साक्षियों के पक्षद्रोही हो जाने के कारण अभियोजन पक्ष द्वारा परीक्षा नहीं कराई जाती है और अभियुक्त को दोषमुक्त किया जाता है । वर्तमान मामले में, अभियोजन पक्ष ने इस आधार पर महत्वपूर्ण साक्षियों की परीक्षा नहीं की है कि शिकायतकर्ता और उसकी पत्नी पक्षद्रोही हो गए हैं । अतः न्यायालय ने संदेह का लाभ देते हुए अभियुक्त को दोषमुक्त किया है । न्यायालय वर्तमान मामले में यह मत व्यक्त नहीं कर सकता कि दांडिक न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी को ससम्मान दोषमुक्त किया गया है और यदि उसे ससम्मान दोषमुक्त किया जाता तो

भी वह सेवा में पुनःस्थापित किए जाने का दावा करने का हकदार नहीं होता क्योंकि तमिलनाडु सेवा नियम में ऐसा उपबंध नहीं किया गया है । न्यायालय के समक्ष ऐसे मामले भी आए हैं जिनके संबंध में सेवा नियम के अधीन यह उपबंध किया गया है कि आपराधिक मामला रजिस्ट्रीकृत किए जाने पर किसी कर्मचारी को निलंबित किया जा सकता है और दांडिक न्यायालय द्वारा दोषमुक्त किए जाने पर उसे सेवा में पुनःस्थापित किया जा सकता है और ऐसे मामलों में पुनःस्थापित किया जाना स्वाभाविक है । ऐसे मामलों में, जिनमें सेवा नियमों के अधीन घरेलू जांच के बावजूद, यदि दांडिक न्यायालय कर्मचारी को ससम्मान दोषमुक्त करता है, तब उसे सेवा में पुनःस्थापित किया जा सकता है । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि यह मुद्दा कि कर्मचारी को सेवा में पुनःस्थापित किया जाना चाहिए या नहीं इस प्रश्न पर निर्भर है कि क्या सेवा नियमों में पुनःस्थापित किए जाने का ऐसा कोई उपबंध है या नहीं और कर्मचारी को अधिकारस्वरूप पुनःस्थापित नहीं किया जा सकता है । ऐसे उपबंध तमिलनाडु सेवा नियमों में उल्लिखित नहीं है । ऊपर उल्लिखित परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए, न्यायालय का यह मत है कि प्रत्यर्थी के विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाहियों में अधिरोपित दंड अपास्त करने में उच्च न्यायालय ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन अपनी सीमित अधिकारिता में न्यायोचित नहीं किया है । (पैरा 20, 23, 24 और 25)

इस मामले में तथ्य और परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए न्यायालय कुछ पहलुओं पर विचार करना चाहेगा जिनका सार्वजनिक महत्व है । न्यायालय का यह मत है कि इस देश में कोई भी समान नियम नहीं है जो शैक्षणिक संस्थाओं, धार्मिक स्थलों, बस अड्डों, मेट्रो स्टेशनों, रेलवे स्टेशनों, सिनेमा घरों, उद्यानों, समुद्र के किनारों, त्यौहार-स्थलों, लोक सेवा यानों या ऐसे अन्य किसी स्थान पर महिलाओं के साथ छेड़छाड़ के संबंध में प्रभावी रूप से लागू किया जा सके । आम तौर पर सार्वजनिक स्थानों पर ही महिलाओं के साथ छेड़छाड़ की जाती है जो थोड़े से प्रयास से ही प्रभावपूर्ण रूप से नियंत्रित की जा सकती है । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि ऐसी बुराई को नियंत्रित न करने के परिणाम कई बार विनाशकारी साबित हुए हैं । ऐसे बहुत से उदाहरण हैं जब किसी नवयुवती को उत्पीड़ित किया जाता है तब वह गंभीर मानसिक रोग का शिकार हुई है और यहां तक कि आत्महत्या भी कर लेती है । इस देश में प्रत्येक नागरिक को सम्मान से जीने का अधिकार है जो कि भारत के संविधान के

अनुच्छेद 21 के अधीन गारंटीकृत मूल अधिकार है । महिलाओं के साथ छेड़छाड़ जैसे यौन उत्पीड़न अनुच्छेद 14 और 15 के अधीन गारंटीकृत अधिकारों का अतिक्रमण किए जाने की कोटि में भी आता है । न्यायालय का यह विचार है कि महिलाओं के साथ छेड़छाड़ से संबंधित प्रभावी विधान-मंडल न होने की स्थिति में सामान्यतया शिकायतें दंड संहिता की धारा 294 या धारा 509 के अधीन रजिस्ट्रीकृत की जाती हैं । यह साबित करना अभियोजन पक्ष का कर्तव्य है कि अभियुक्त ने शब्द बोलें हैं या आवाज निकाली है या इशारा किया है और ऐसे शब्द बोलने, आवाज करने और इशारा करने के संबंध में अभियुक्त का उद्देश्य यह हो कि कोई महिला उसे सुने या देखें । सामान्यतया, ऐसा साबित करना कठिन होता है और बहुत कम अवसरों पर महिलाएं शिकायत फाइल करती हैं और प्रायः अपराधी दंडित किए जाने से बच जाते हैं चाहे उनके विरुद्ध शिकायत फाइल क्यों न की गई हो क्योंकि ऐसे अपराधों पर नजर रखने के लिए कोई भी प्रभावी प्रक्रिया नहीं है । समुचित विधान-मंडल के लिए यह आवश्यक है कि वह महिलाओं के साथ छेड़छाड़ को अत्यधिक महत्व दे । यहां तक कि तमिलनाडु विधान-मंडल में भी इसके लिए कोई उपाय नहीं है । महिलाओं के साथ छेड़छाड़ आज के समय की एक भयंकर और अपमानजनक बुराई है । द इंडियन जर्नल आफ क्रिमिनोलाजी एंड क्रिमिनलस्टिक्स (जनवरी-जून, 1995 का प्रकाशन) के अन्तर्गत महिलाओं के साथ छेड़छाड़ को पांच खंडों में विभाजित किया गया है अर्थात् (1) मौखिक छेड़छाड़ ; (2) शारीरिक छेड़छाड़ ; (3) मनोवैज्ञानिक उत्पीड़न ; (4) यौन उत्पीड़न ; और (5) वस्तुओं के माध्यम से छेड़छाड़ । हाल ही में संसद् ने कार्यस्थान पर लैंगिक प्रपीड़न के विरुद्ध महिला की संरक्षा विधेयक, 2010 पर विचार किया है और यह विधेयक अधिकांश कार्यस्थानों पर महिला कर्मचारियों को संरक्षा देने के आशय से बनाया गया है । इस विधेयक के उपबंध महिलाओं के साथ छेड़छाड़ पर लागू होने के लिए पर्याप्त नहीं हैं । महिलाओं के साथ छेड़छाड़ को इसके अन्तर्गत लाने के लिए समुचित विधान-मंडल के पूर्व, यह आवश्यक है कि कम से कम कुछ आपातकालीन तरीके ही अपनाए जाएं ताकि किसी सीमा तक इस अपराध को कम किया जा सके । अतः लोक हित में हम निम्न निदेश देना चाहते हैं :– (1) सभी राज्य सरकारें और संघ राज्यक्षेत्र को यह निदेश दिया जाता है कि वे बस अड्डों और बस स्टापों, रेलवे स्टेशनों, मेट्रो स्टेशनों, सिनेमा थियेटरों, शापिंग मालों, उद्यानों, समुद्र तटों, लोक सेवा यानों, धार्मिक स्थलों आदि पर सादा वर्दी में महिला पुलिस तैनात करें ताकि

महिलाओं के साथ छेड़छाड़ की घटनाओं को नियंत्रित किया जा सके । (2) राज्य सरकार और संघ राज्यक्षेत्र को यह भी निदेश दिए जाएंगे कि वे युक्तिपरक स्थिति में सीसीटीवी लगवाएं जो स्वयं में भय प्रतिकारी होगा और अपराधी को पकड़ा जा सकता है । (3) शैक्षणिक संस्थानों, धार्मिक स्थलों, सिनेमा थियेटरों, रेलवे स्टेशनों, बस अड्डों के भारसाधक ऐसे कोई भी कदम उठा सकते हैं जिन्हें वे अपने क्षेत्र में महिलाओं के साथ छेड़छाड़ को रोकने के लिए उचित समझे और शिकायत किए जाने पर उन्हें चाहिए कि वे निकट के पुलिस थाने या महिला सहायता केन्द्र को सूचना भेजे । (4) जब यात्रियों द्वारा या यान के भारसाधक द्वारा महिलाओं के साथ छेड़छाड़ की कोई घटना लोक सेवा यान में घटित होती है तब उस यान का कर्मचारीवृन्द आहत व्यक्ति द्वारा शिकायत किए जाने पर उस यान को निकट के पुलिस थाने पर ले जा सकता है । यदि ऐसा न किया गया तो उस यान का परमिट रद्द किया जाना चाहिए । (5) राज्य सरकारों और संघ राज्यक्षेत्रों को यह निदेश दिए जाते हैं कि वे अनेक नगरों और कस्बों में महिला हेल्प लाइन स्थापित करें ताकि तीन मास के भीतर महिलाओं के साथ छेड़छाड़ पर नियंत्रण रखा जा सके । (6) शैक्षणिक संस्थानों, बस अड्डों, रेलवे स्टेशनों, सिनेमा, थियेटरों, जलसों, समुद्र तटों, लोक सेवा यानों, धार्मिक स्थानों आदि सहित सभी लोक स्थलों पर महिलाओं के साथ छेड़छाड़ संबंधी ऐसे अपराधों को चेतावनी देने वाले समुचित बोर्ड लगवाए जाएं । (7) रास्ते से गुजरने वाले और ऐसी घटना को देखने वाले व्यक्तियों पर भी यह जिम्मेदारी होनी चाहिए कि ऐसे अपराध से आहत को बचाने के लिए वे निकट के पुलिस थानों को या महिला हेल्प लाइन को रिपोर्ट करें । (8) राज्य सरकार और भारत के संघ राज्यक्षेत्र जिला कलेक्टर, जिला पुलिस अधीक्षक सहित संबद्ध प्राधिकारियों को समुचित निदेश देते हुए ऐसे तरीके अपनाएंगे कि महिलाओं के साथ छेड़छाड़ की ऐसी घटनाओं को प्रभावी और समुचित रूप से नियंत्रित किया जा सके । (पैरा 26, 30, 31 और 32)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2012]	(2012) 1 एस. सी. सी. 442 : **डिवीजनल कंट्रोलर, कर्नाटक राज्य सड़क परिवहन निगम** बनाम **एम. जी. विट्ठल राव** ;	19

[2009] (2009) 9 एस. सी. सी. 24 = ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 1241 = 2010 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 548 :
दक्षिण रेलवे अधिकारी एसोसिएशन बनाम भारत संघ ; 17

[2008] (2008) 15 एस. सी. सी. 657 = ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 1246 = 2008 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 3143 :
स्टेट बैंक ऑफ हैदराबाद बनाम **पी. कटाराव** ; 18

[1999] (1999) 3 एस. सी. सी. 679 = ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 1416 = 1999 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 1098 :
कैप्टन एम. पॉल एंथोनी बनाम **भारत गोल्ड माइन्स लि. और एक अन्य** ; 7,11,16

[1997] (1997) 6 एस. सी. सी. 241 = ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 3011 = 1997 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 3043 :
विशाखा और अन्य बनाम **राजस्थान राज्य** ; 31

[1995] (1995) 6 एस. सी. सी. 194 = ए. आई. आर. 1996 एस. सी. 309 = 1995 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 4100 :
रूपन दियोल बजाज और एक अन्य बनाम **के. पी. एस. गिल** ; 31

[1994] (1994) 1 एस. सी. सी. 541 = ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 552 = 1993 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 4044 :
प्रबंधन, भारतीय रिजर्व बैंक, नई दिल्ली बनाम **भोपाल सिंह पांचाल** ; 21

[1972] 1972 एस. एल. आर. 44 :
असम राज्य और अन्य बनाम **राघवराज गोपालाचारी** ; 22

[1964] ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 787 :
आर. पी. कपूर बनाम **भारत संघ** । 22

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2012 की सिविल अपील सं. 8513.

2008 की विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 31592 से उद्भूत हुई अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री बी. बालाजी

प्रत्यर्थी की ओर से श्री बालाजी सूर्यनिवासन

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति के. एस. राधाकृष्णन् ने दिया ।

न्या. राधाकृष्णन् – इजाजत प्रदान की जाती है ।

2. महिला को छेड़ना प्रियोक्ति है, ऐसा आचरण जिस पर दांडिक कार्रवाई की जा सकती है किन्तु ऐसा देखा गया है कि केवल एक ही राज्य में, कानून बनाया गया है तथा वह राज्य तमिलनाडु राज्य है जिसमें ऐसा अधिनियम बनाया गया है, जिसके परिणाम कभी-कभी गंभीर हो सकते हैं । महिला को छेड़ने के परिणामस्वरूप तमिलनाडु राज्य में वर्ष 1998 में एक महिला की मृत्यु हुई थी जिसके कारण सरकार ने तमिलनाडु महिलाओं को छेड़े जाने पर प्रतिषेध अध्यादेश, 1998 (तमिलनाडु प्रोहिबिशन आफ इव टीजिंग आर्डिनेंस, 1998) पारित किया जो बाद में अधिनियम बना अर्थात् तमिलनाडु महिलाओं को छेड़े जाने पर प्रतिषेध अधिनियम, 1998 (तमिलनाडु प्रोहिबिशन आफ इव टीजिंग एक्ट, 1998) पारित किया जिसे संक्षेप में महिलाओं को छेड़े जाने पर प्रतिषेध अधिनियम कहा जा जाता है । महिलाओं को छेड़े जाने पर प्रतिषेध अधिनियम के उद्देश्य और कारणों का कथन निम्न प्रकार है :–

> "सार्वजनिक स्थानों पर महिलाओं को छेड़ा जाना नित्य की समस्या है । हाल ही में महिलाओं को छेड़े जाने की घटनाओं के कारण महिलाओं को गंभीर क्षतियां पहुंचाने और यहां तक कि मृत्यु होना भी सरकार की अवेक्षा में आया है । सरकार का यह मत है कि महिलाओं को छेड़ा जाना संपूर्ण समाज के प्रति एक खतरा है और यह दूर किया जाना चाहिए । इसे ध्यान में रखते हुए सरकार ने तमिलनाडु राज्य में महिलाओं के छेड़े जाने को प्रतिषेध करने का विनिश्चय किया है ।
>
> 2. तदनुसार तमिलनाडु महिलाओं को छेड़े जाने पर प्रतिषेध अध्यादेश, 1998 (1998 का तमिलनाडु अध्यादेश सं. 4) को महामहिम राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित किया गया था और इसे तमिलनाडु सरकार

राजपत्र असाधारण तारीख 30 जुलाई, 1998 में प्रकाशित किया गया था ।

3. विधेयक उक्त अध्यादेश को प्रतिस्थापित कर सकता है ।"

3. हम इस मामले में एक ऐसी स्थिति पर विचार करेंगे जहां विधि प्रवर्तन अभिकरण का एक सदस्य अर्थात् एक पुलिसकर्मी स्वयं एक विवाहित महिला को छेड़ने के कृत्य में पकड़ा गया था जिसके कारण दांडिक और अनुशासनिक कार्यवाही की गई थी, जिसके परिणामस्वरूप उसे सेवा से पदच्युत किया गया जिसकी वैधता इस अपील की विषयवस्तु है ।

4. इस मामले में का प्रत्यर्थी जब आरक्षित सशस्त्र बल, पलायमकोटई में ड्यूटी पर था तब उसने तारीख 9 जुलाई, 1999 को अपराह्न 8.30 बजे कोर्टआलम सीजन बंदोबस्त चौकी पर ड्यूटी पर आया था । अपराह्न लगभग 11.00 बजे, वह नशे की हालत में टेनकासी बस अड्डे पर गया और उसने एक विवाहित महिला के साथ दुर्व्यवहार किया और उसे छेड़ा जो अपने पति के साथ एक बस में चढ़ने के लिए प्रतीक्षा कर रही थी । प्रत्यर्थी उक्त महिला के पास बुरे आशय के साथ गया और उसने पति और पत्नी को यह कहते हुए धमकी दी कि यदि वह उसके साथ नहीं जाएगी तो वह पति के विरुद्ध एक मामला दर्ज करा देगा । इसके अतिरिक्त उसने उन्हें अपनी पहचान एक पुलिसकर्मी के रूप में दी थी । पति और पत्नी दोनों भयभीत हो गए और उन्होंने एक पुलिसकर्मी अर्थात् हैड कांस्टेबल अदियोदी (सं. 1368) को शिकायत की जो कि बस स्टैंड के दूसरी ओर टेनकासी पुलिस थाने के हैड कांस्टेबल पीटर (सं. 1079) के साथ खड़ा हुआ था । वे बस स्टैंड पर रात्रि ड्यूटी पर थे । वे घटनास्थल की ओर दौड़े और उन्होंने प्रत्यर्थी को अभिरक्षा में ले लिया और उसे पति-पत्नी के साथ टेनकासी पुलिस थाना लेकर आए । इसके पश्चात् तारीख 10 जुलाई, 1999 को प्रत्यर्थी के विरुद्ध पुलिस थाने पर दंड संहिता, 1860 की धारा 509 और महिलाओं को छेड़े जाने पर प्रतिषेध अधिनियम, 1998 की धारा 4 के अधीन एक परिवाद सं. 625/1999 दर्ज की । तारीख 10 जुलाई, 1999 को पूर्वाह्न लगभग 1.25 बजे प्रत्यर्थी को चिकित्सीय परीक्षा के लिए सरकारी अस्पताल टेनकासी पर ले जाया गया था । वहां पर डा. एन. राजेन्द्रन द्वारा उसकी जांच की गई थी तथा उन्होंने उसके संबंध में शराब पीए हुए होने का प्रमाणपत्र जारी किया जो निम्न प्रकार है :–

"जांच के समय लक्षण : सांस लेने पर शराब की गंध, आंखें

संकुचित, रेटिना विस्तृत, रोशनी में आंख चौंधियाना, बोल-चाल और गतिविधियां सामान्य, पल्स रेट 96, रक्तचाप 122/85 । मेरा यह मत है कि उपरोक्त व्यक्ति ने शराब पी हुई है किन्तु इसके नशे में नहीं है ।

स्थान : टेनकासी नाम : एन. राजेन्द्रन

दिनांक : 10.7.1999 (ह./-, ता. 10.07.1999)

सिविल सर्जन

मैं रक्त और पेशाब की जांच कराने का इच्छुक नहीं हूं ।

ह./- एस. समुथीराम, पीसी 388''

5. इसके पश्चात् मामला सं. पी 1/34410/99 में डायरी सं. 1360/1999 के अनुसार तारीख 18 जुलाई, 1999 के आदेश के अधीन तारीख 10 जुलाई, 1999 (पूर्वाह्न) से प्रत्यर्थी को निलम्बनाधीन रखा गया था और तमिलनाडु पुलिस अधीनस्थ सेवा (अनुशासनात्मक और अपील) नियम, 1955 (संक्षेप में 'तमिलनाडु सेवा नियम' कहा गया है) के नियम 3(ख) के अधीन विभागीय कार्यवाहियां प्रारंभ की गई थीं और उसके विरुद्ध तारीख 9 जुलाई, 1999 को टेनकासी बस अड्डे पर शराब के नशे की हालत में एक विवाहित महिला से अभद्र व्यवहार जैसे अत्यंत अनुचित आचरण के संदर्भ में प्रारंभ की गई थीं । इसके अतिरिक्त यह भी अवेक्षा की गई थी कि वह तारीख 10 जुलाई, 1999 को पूर्वाह्न 7.00 बजे से अगले दिन 3.45 बजे तक ड्यूटी से अनुपस्थित पाया गया था ।

6. पुलिस उपाधीक्षक सशस्त्र आरक्षित, तिरुनेलवेली ने विस्तृत घरेलू जांच की और 10 अभियोजन साक्षियों की परीक्षा करने और अभियोजन पक्ष के 14 दस्तावेजों का परिशीलन करने और प्रतिरक्षा साक्षियों की सुनवाई करने के पश्चात् तारीख 22 नवम्बर, 1999 को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें अपचारी प्रत्यर्थी के विरुद्ध सभी आरोप साबित पाए । पुलिस अधीक्षक, तिरुनेलवेली ने जांच रिपोर्ट का सावधानीपूर्वक परिशीलन करने के पश्चात् प्रत्यर्थी को तारीख 4 जनवरी, 2000 को सेवा से पदच्युत कर दिया ।

7. पदच्युति आदेश से व्यथित होकर प्रत्यर्थी ने तमिलनाडु प्रशासनिक ट्रायब्युनल, चेन्नई के समक्ष वर्ष 2000 की मूल आवेदन सं. 1144 फाइल की । जब मूल आवेदन अधिकरण के समक्ष लंबित था, न्यायिक मजिस्ट्रेट, टेनकासी ने तारीख 20 नवम्बर, 2000 को वर्ष 2000 की एसटीएस सं. 613 में निर्णय दिया जिसके अधीन प्रत्यर्थी को सभी आरोपों से दोषमुक्त

किया गया था । दांडिक न्यायालय के निर्णय को अधिकरण की अवेक्षा में लाया गया था और यह दलील दी गई थी कि उन्हीं तथ्यों के आधार पर अपचारी के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही नहीं की जानी चाहिए । **कैप्टन एम. पॉल एंथोनी** बनाम **भारत गोल्ड माइन्स लि. और एक अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय को भी उक्त दलील के समर्थन में अधिकरण के समक्ष रखा गया था ।

8. अधिकरण ने यह अवेक्षा की कि पति और पत्नी दोनों ने जांच अधिकारी के समक्ष यह अभिसाक्ष्य दिया था कि प्रत्यर्थी ने अपराध कारित किया था और इस अभिसाक्ष्य का दो पुलिसकर्मियों, जिन्होंने प्रत्यर्थी को घटनास्थल से अभिरक्षा में लिया था, सहित अन्य अभियोजन साक्षियों द्वारा समर्थन किया गया । तदनुसार, मूल आवेदन अधिकरण द्वारा तारीख 23 मार्च, 2004 के आदेशानुसार खारिज किया गया था । आदेश को उच्च न्यायालय मद्रास के समक्ष 2004 की रिट याचिका सं. 13726 में प्रत्यर्थी द्वारा चुनौती दी गई थी । उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि यदि किसी अधिकारी के विरुद्ध दांडिक मामला और विभागीय कार्यवाहियां एक ही तथ्यों और साक्ष्य पर आधारित हैं और दांडिक मामले की परिणति सम्मानजनक दोषमुक्ति में हुई है न कि तकनीकी आधारों पर, वहां पर घरेलू जांच के निष्कर्षों के आधार पर सेवा से अपचारी अधिकारी के पदच्युत किए जाने का दंड आधारित करना विधिक रूप से मान्य नहीं होगा । उच्च न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया कि उस चिकित्सक के अभिसाक्ष्य को जिसकी अभि. सा. 8 के रूप में परीक्षा की गई थी और उसके द्वारा जारी किए गए प्रमाणपत्र को, प्रत्यर्थी को दोषी अभिनिर्धारित करने के लिए पर्याप्त सामग्री नहीं माना जा सकता था और यह भी नहीं माना जा सकता था कि उसने शराब पी रखी थी अपितु वह सामान्य पाया गया था और उस पर शराब के नशे का प्रभाव नहीं पड़ा था । इसलिए उच्च न्यायालय ने रिट याचिका मंजूर की और उसे सेवा से पदच्युत करने वाला आक्षेपित आदेश अपास्त किया । इसके आगे यह आदेश किया गया था कि प्रत्यर्थी को तुरंत ही आपराधिक मामले में दोषमुक्ति की तारीख से संदाय किए जाने तक पिछली सभी मजदूरी/तनख्वाह तुरंत ही सेवा में उसकी निरंतरता पुनःस्थापित करते हुए प्रदान की जाए ।

9. राज्य ने उक्त निर्णय से व्यथित होकर पुलिस उप-महानिरीक्षक के

---

[1] (1999) 3 एस. सी. सी. 679 = ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 1416 = 1999 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 1098.

माध्यम से विशेष इजाजत याचिका द्वारा यह अपील फाइल की है ।

10. अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री परमशिवम ने यह दलील दी है कि उच्च न्यायालय ने अनुशासनिक कार्यवाहियों को स्थानांतरित करने और प्रत्यर्थी की पदच्युति के आदेश को अपास्त करने में न्यायोचित नहीं किया है । विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि उच्च न्यायालय ने इस तथ्य को अनदेखा किया है कि घरेलू जांच और दांडिक जांच में सबूत के मानक भिन्न-भिन्न हैं । दांडिक न्यायालय द्वारा की गई मात्र दोषमुक्ति से अपचारी अनुशासनिक कार्यवाही से बच नहीं सकता है । विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि वर्तमान मामला ऐसा मामला नहीं है जिसमें पदच्युति का दंड दांडिक मामले में की गई दोषसिद्धि के आधार पर अधिरोपित किया गया हो और ऐसी स्थिति में किसी दांडिक विचारण में न्यायालय द्वारा की गई दोषमुक्ति इसी प्रकार सुसंगत होगी । इसके अतिरिक्त, यह भी दलील दी गई थी कि वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी को दांडिक न्यायालय द्वारा सम्मान रूप से दोषमुक्त नहीं किया गया था अपितु शिकायतकर्ता के मुकर जाने से दोषमुक्त किया गया था ।

11. प्रत्यर्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री वी. एन. सुब्रमण्यम् ने उच्च न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों का समर्थन किया है । विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि प्रत्यर्थी को दोषमुक्त करने वाले दांडिक न्यायालय के निर्णय का अर्थ 'ससम्मान दोषमुक्ति' के रूप में लिया गया है और प्रत्यर्थी के मामले पर उन जैसे तथ्यों के आधार पर कार्यवाही नहीं की जा सकती है जिनके आधार पर उसे दांडिक न्यायालय द्वारा दोषमुक्त किया गया था । विद्वान् काउंसेल ने **कैप्टन एम. पॉल** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए इस न्यायालय के निर्णय का भी अवलंब लिया है ।

12. सबसे पहले हम प्रत्यर्थी के विरुद्ध की गई विभागीय कार्यवाही पर विचार करेंगे ।

विभागीय कार्यवाही –

13. हम यह उपदर्शित करते हैं कि विभागीय कार्यवाहियों में प्रत्यर्थी के विरुद्ध लगाए गए आरोप निम्न हैं और प्रत्यर्थी को तारीख 24 अगस्त, 1999 का आरोप ज्ञापन तामील कराया गया था :–

(i) तारीख 9 सितम्बर,1999 को 11.00 बजे रात्रि में टेनकासी बस अड्डे पर शराब की नशे की हालत में गलत तरीके से व्यवहार

करने का (अभियुक्त का) आचरण ।

(ii) तारीख 9 सितम्बर, 1999 को 11.00 बजे रात्रि में अत्यंत संदिग्ध आशय से श्रीमती पिचाम्मल पत्नी वनाममालाई निवासी पदमनेरी के साथ उसके पति की मौजूदगी में (मामला सं. 44/1999 के अन्तर्गत) निंदनीय व्यवहार करना और एतद्द्वारा पुलिस थाना टेनकासी में दांडिक मामला सं. 625/1999 दंड संहिता की धारा 509 और महिलाओं को छेड़े जाने पर प्रतिषेध अध्यादेश, 1998 (तमिलनाडु प्राहिबिशन आफ इव टीजिंग आर्डिनेंस, 1998) की धारा 4 के अधीन मामले में आलिप्त होना, और

(iii) तारीख 10 जुलाई, 1999 को सायं 7.00 बजे के पश्चात् से अगले दिन पूर्वाह्न 3.45 बजे तक अपनी ड्यूटी से अनुपस्थित रहने का अत्यंत निंदनीय आचरण ।

14. पुलिस उपाधीक्षक, सशस्त्र रिजर्व पुलिस, तिरुनेलवेली द्वारा आरोपों की जांच की गई । अभियोजन पक्ष ने दस साक्षियों की परीक्षा की और 14 दस्तावेज प्रस्तुत किए । इसके प्रतिकूल, प्रतिरक्षा पक्ष ने प्रतिरक्षा साक्षी 1 और प्रतिरक्षा साक्षी 2 की परीक्षा की । दोनों ओर के साक्षियों की परीक्षा करने के पश्चात् और दोनों पक्षकारों को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात् जांच अधिकारी ने तीनों आरोपों को युक्तियुक्त संदेह के परे साबित पाया । टेनकासी पुलिस थाने का हैड कांस्टेबल सं. 1368 अदियोदी (अभि. सा. 4) और हैड कांस्टेबल सं. 1079 पीटर (अभि. सा. 5) ने स्पष्ट रूप से संपूर्ण घटना और प्रत्यर्थी के आलिप्त होने का वर्णन किया और इसी प्रकार अभि. सा. 6 अर्थात् पुलिस थाना टेनकासी का हैड कांस्टेबल ने ऐसा ही वर्णन किया है । जांच अधिकारी ने स्पष्ट रूप से यह निष्कर्ष निकाला है कि अभि. सा. 4, 5 और 6 द्वारा दिया गया साक्ष्य और अभियोजन दस्तावेज 3, 4 और 5 से स्पष्ट रूप से प्रत्यर्थी पर लगाए गए अनेक आरोप साबित हो जाते हैं । सरकारी अस्पताल के चिकित्सा अधिकारी ने भी यह प्रमाणित किया है कि अपचारी ने शराब पी रखी थी और उसने अपने मूत्र और रक्त की जांच कराने में भी सहयोग नहीं दिया था । जांच अधिकारी ने यह भी निष्कर्ष निकाला है कि अपचारी को तारीख 10 जुलाई, 1999 को पूर्वाह्न 7.00 बजे पुलिस चौकी पर, तारीख 9 जुलाई, 1999 की रात्रि में 8.30 बजे दिए गए निर्देशों के अनुसार, रिपोर्ट करनी चाहिए थी, जबकि उसने कोर्टआलम सीजन बंदोबस्त चौकी पर रिपोर्ट की । किन्तु यह पाया गया कि अपचारी अपनी ड्यूटी की रिपोर्ट करने में असफल रहा । इसके

अतिरिक्त, वह विवाहित महिला के साथ छेड़छाड़ करने में आलिप्त रहा । अपचारी प्रत्यर्थी को सभी आरोपों का दोषी पाने के पश्चात्, जांच अधिकारी ने तारीख 22 नवम्बर, 1999 की रिपोर्ट प्रस्तुत की । पुलिस अधीक्षक, तिरुनेलवेली ने जांच अधिकारी के निष्कर्षों के साथ सहमति व्यक्त की और यह अभिनिर्धारित किया कि आरोप स्पष्ट रूप से युक्तियुक्त संदेह के परे साबित किए गए हैं । यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि प्रत्यर्थी एक अनुशासनिक सेना का सदस्य होने के नाते, उसे अभद्र रीति में व्यवहार नहीं करना चाहिए था वह भी विवाहित महिला के साथ सार्वजनिक स्थल पर नशे की हालत में । यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि प्रत्यर्थी के उक्त आचरण से पुलिस बल की छवि धूमिल होती है जिसके परिणामस्वरूप पुलिस अधीक्षक ने तारीख 4 जनवरी, 2001 की कार्यवाही के अनुसार प्रत्यर्थी को सेवा से पदच्युत किए जाने का दंड अधिनिर्णीत किया । इसके पश्चात्, प्रत्यर्थी ने पुलिस महानिदेशक के समक्ष अपील फाइल की जो तारीख 10 मार्च, 2000 की कार्यवाही के अनुसार खारिज कर दी गई । इसके पश्चात् प्रत्यर्थी ने तमिलनाडु प्रशासनिक ट्रायब्युनल के समक्ष 2000 की मूल आवेदन सं. 1144 फाइल की । इस मूल आवेदन के लंबित रहने के दौरान अपचारी को दांडिक आरोपों से दोषमुक्त कर दिया गया ।

दांडिक कार्यवाहियां –

15. हमने यह उपदर्शित किया है कि प्रत्यर्थी के विरुद्ध टेनकासी पुलिस थाना द्वारा दंड संहिता की धारा 509 और महिलाओं को छेड़े जाने पर प्रतिषेध अध्यादेश, 1998 की धारा 4 के अधीन आपराधिक मामला सं. 625/1999 भी दर्ज किया गया था जिसे न्यायिक मजिस्ट्रेट टेनकासी के समक्ष 2002 का सेशन विचारण मामला (एसटीसी) सं. 613 के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया जिसमें अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 अर्थात् पति और आहत की पत्नी पक्षद्रोही हो गए थे । इसके पश्चात् अभियोजन पक्ष ने अपने अन्य साक्षियों की परीक्षा नहीं की । पुलिस थाना टेनकासी के हैड कांस्टेबल (सं. 1368) अर्थात् अदियोदी और हैड कांसटेबल (सं. 1079) अर्थात् पीटर महत्वपूर्ण साक्षी हैं । तथ्यों से स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित होता है कि ऊपर उल्लिखित हैड कांस्टेबल ही अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 के साथ प्रत्यर्थी को टेनकासी पुलिस थाना लेकर गए थे यद्यपि अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 ने जांच अधिकारी के समक्ष संपूर्ण घटना का स्पष्ट रूप से अभिसाक्ष्य दिया है साथ ही इस तथ्य का भी उल्लेख

किया है कि उपरोक्त दोनों हैड कांस्टेबल अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 के साथ प्रत्यर्थी को टेनकासी पुलिस थाना लेकर गए थे । दांडिक न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि चूंकि अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 पक्षद्रोही हो गए हैं इसलिए आपराधिक मामला कमजोर हो गया है । यह उल्लेखनीय है कि अभियोजन पक्ष ने पुलिस थाना टेनकासी के हैड कांस्टेबल सं. 1368 अर्थात् अदियोदी और हैड कांस्टेबल सं. 1079 अर्थात् पीटर तथा चिकित्सक (अभि. सा. 8) की दांडिक न्यायालय में परीक्षा करने के लिए कोई भी कदम नहीं बढ़ाया है । ऐसी परिस्थितियों में दांडिक न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि प्रत्यर्थी-अभियुक्त को आलिप्त करने के लिए कोई भी साक्ष्य नहीं है, परिणामतः, उसे महिलाओं को छेड़े जाने पर प्रतिषेध अध्यादेश, 1998 की धारा 4 के साथ पठित धारा 509 के अधीन अपराधी नहीं पाया गया है, इसलिए उसे दोषमुक्त कर दिया गया है ।

16. हम यह उपदर्शित करते हैं कि तारीख 20 नवम्बर, 2000 को दांडिक न्यायालय द्वारा दोषमुक्ति का आदेश पारित किए जाने के पूर्व विभागीय जांच पूरी हो चुकी थी और प्रत्यर्थी को 4 जनवरी, 2000 को ही सेवा से हटाया जा चुका था । प्रश्न यह है कि जब विभागीय जांच पूरी हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप अपचारी को सेवा से हटा दिया जाता है, तब अपचारी को दोषमुक्त करने के संबंध में दांडिक न्यायालय द्वारा अभिलिखित पश्चात्वर्ती निष्कर्षों का विभागीय कार्यवाही पर कोई प्रभाव पड़ेगा या नहीं । प्रत्यर्थी इस प्रतिपादना पर **कैप्टन एम. पॉल एंथोनी** (उपर्युक्त) वाले मामले में किए गए निर्णय का अवलंब लेते हुए बल देना चाहता था जो इस प्रकार है :–

> "(i) विभागीय कार्यवाहियां और दांडिक मामले की कार्यवाहियां एक साथ चल सकती हैं क्योंकि उनके अलग-अलग रहते हुए साथ-साथ चलने में कोई भी विधिक वर्जन नहीं है ।
>
> (ii) यदि विभागीय कार्यवाहियां और दांडिक मामला एक ही जैसे तथ्यों पर आधारित हैं और दांडिक मामले में अपचारी/कर्मचारी के विरुद्ध लगाया गया आरोप अधिक गंभीर प्रकृति का है जिसमें विधि और तथ्य का जटिल प्रश्न सम्मिलित हो तब यह वांछनीय होगा कि विभागीय कार्यवाहियों को दांडिक मामले के निष्कर्ष आने तक लंबित रखा जाए ।
>
> (iii) दांडिक मामले में लगाए आरोप की प्रकृति गंभीर है या

नहीं, उस मामले में तथ्य और विधि के प्रश्न जटिल हैं या नहीं, यह अपराध की प्रकृति, अन्वेषण के दौरान या आरोप पत्र में यथा उपदर्शित अपचारी के विरुद्ध इकट्ठा किए गए साक्ष्य और सामग्री पर आधारित होगा ।

(iv) विभागीय कार्यवाहियों पर रोक लगाने के लिए पैरा (ii) और (iii) में उल्लिखित संघटकों पर पृथक् रूप से विचार नहीं किया जा सकता है किन्तु इस तथ्य पर सम्यक् रूप से विचार किया जाना चाहिए कि विभागीय कार्यवाहियों को असम्यक् रूप से लंबित नहीं किया जा सकता ।

(v) यदि दांडिक मामले में कार्यवाही नहीं की जाती है या उसके निपटारे को असम्यक् रूप से लंबित किया जाता है तब विभागीय कार्यवाहियां, चाहे वे दांडिक मामले के लंबित रहने के कारण रोक दी गई हों, पुनः चलाई जा सकती हैं और निकट तारीख पर उन्हें पूरा किया जा सकता है ताकि यदि कर्मचारी दोषी नहीं पाया जाता है तो उसके मान सम्मान को आघात न पहुंचे और यदि वह दोषी पाया जाता है तो प्रशासन को शीघ्र ही उससे छुटकारा मिल जाए ।'

17. **दक्षिण रेलवे अधिकारी एसोसिएशन** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि किसी दांडिक मामले में दोषमुक्त किया जाना स्वयं में ऐसा कोई आधार नहीं है जिससे अनुशासनिक पदाधिकारी द्वारा अधिरोपित दंडादेश में हस्तक्षेप किया जा सके । न्यायालय ने यह दोहराया है कि पदच्युति का आदेश तब भी पारित किया जा सकता है जब अपचारी अधिकारी को आपराधिक आरोप से दोषमुक्त कर दिया गया हो ।

18. **स्टेट बैंक ऑफ हैदराबाद** बनाम **पी. कटाराव**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि किसी भी प्रकार का कोई भी संदेह नहीं हो सकता है कि जांच अधिकारी द्वारा निकाले गए तथ्यों के निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने के संबंध में उच्चतर न्यायालयों को सीमित

---

[1] (2009) 9 एस. सी. सी. 24 = ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 1241 = 2010 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 548.

[2] (2008) 15 एस. सी. सी. 657 = ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 1246 = 2008 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 3143.

अधिकारिता है और उच्च न्यायालय दंड की मात्रा के संबंध में साधारणतया हस्तक्षेप नहीं करता है और इस संबंध में कोई भी संदेह या विवाद नहीं है कि मात्र इस कारण से कि ऐसे अपचारी कर्मचारी को दोषमुक्त कर दिया गया है जिसके विरुद्ध दांडिक आरोप की कार्यवाहियां चल रही हैं, अनुशासनिक पदाधिकारी को नए सिरे से विभागीय जांच आरंभ करने से वर्जित नहीं किया जा सकता और/या जहां विभागीय जांच पहले ही आरंभ हो चुकी हो उन्हें जारी रखने के लिए भी वर्जित नहीं किया जा सकता है । उस निर्णय में इस न्यायालय ने निम्न अभिनिर्धारित किया है :–

> "तथापि, इस संबंध में परिकल्पित विधिक सिद्धांत में विचलन आ गया है कि एक जैसे तथ्यों के आधार पर अपचारी पर विभागीय कार्यवाही और दांडिक मामले का विचारण एक साथ नहीं किया जाएगा । कैप्टन एम. पॉल एंथोनी **बनाम** भारत गोल्ड माइन्स लिमिटेड और एक अन्य [(1999) 3 एस. सी. सी. 679 = ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 1416 = 1999 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 1098] वाले मामले में इस न्यायालय का मत अडिग रहता है, यद्यपि प्रत्येक मामले में तथ्यात्मक स्थिति के आधार पर ही इस सिद्धांत को लागू किया जा सकता है ।"

19. **डिवीजनल कंट्रोलर, कर्नाटक राज्य सड़क परिवहन निगम** बनाम **एम. जी. विट्ठल राव**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने विभागीय जांच के संबंध में दांडिक कार्यवाहियों के प्रभाव के बाबत मुद्दे पर इस न्यायालय द्वारा किए गए अनेक निर्णयों का विस्तृत सर्वेक्षण करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया है कि अनुशासनिक पदाधिकारी जिसने सेवा से पदच्युत किए जाने का दंड अधिरोपित किया है, उसे अपचारी के प्रति असमानुपाती या असंगत नहीं माना जा सकता ।

20. हमारा यह मत है कि किसी दांडिक न्यायालय द्वारा किसी कर्मचारी की की गई मात्र दोषमुक्ति का विभाग द्वारा चलाई गई अनुशासनिक कार्यवाहियों पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता । यह उल्लेखनीय है कि प्रत्यर्थी अनुशासनिक बल का सदस्य है और दांडिक न्यायालय के समक्ष दो महत्वपूर्ण साक्षियों अर्थात् अदियोदी और पीटर की परीक्षा न किया जाना हमारे मतानुसार अभियोजन पक्ष द्वारा चलाए गए आपराधिक मामले में एक गंभीर त्रुटि है । मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए

---

[1] (2012) 1 एस. सी. सी. 442.

आपराधिक मामले में अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 को सिखाए-पढ़ाए जाने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है । हम यह नहीं समझ पा रहे हैं कि अभियोजन पक्ष ने पुलिस थाना टेनकासी के हैड कांस्टेबल सं. 1368 अर्थात् अदियोदी और हैड कांस्टेबल सं. 1079 अर्थात् पीटर की परीक्षा क्यों नहीं की है । यही वे दो हैड कांस्टेबल हैं जो पति (अभि. सा. 1) और पत्नी (अभि. सा. 2) के साथ प्रत्यर्थी को घटनास्थल से पुलिस थाना टेनकासी लेकर गए थे और उन्हीं की मौजूदगी में वह शिकायत दर्ज कराई गई थी । वास्तव में, दांडिक न्यायालय ने यह भी राय व्यक्त की है कि पति अर्थात् शिकायतकर्ता (अभि. सा. 1) के हस्ताक्षर प्रदर्श पी. 1 अर्थात् शिकायत/परिवाद पर मौजूद हैं । इसके अतिरिक्त, चिकित्सक (अभि. सा. 8) ने जांच अधिकारी के समक्ष स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि प्रत्यर्थी शराब के नशे में था और उसने रक्त और मूत्र की परीक्षा कराने से इनकार कर दिया था । ऐसी तथ्यात्मक स्थिति होने पर, हमारा यह मत है कि प्रत्यर्थी को दांडिक न्यायालय द्वारा ससम्मान दोषमुक्त नहीं किया गया है अपितु केवल इस तथ्य के कारण दोषमुक्त किया गया है कि अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 पक्षद्रोही हो गए थे और अन्य अभियोजन साक्षियों की परीक्षा नहीं कराई गई थी ।

ससम्मान दोषमुक्ति

21. 'ससम्मान दोषमुक्ति' अभिव्यक्ति का अर्थ इस न्यायालय के समक्ष **प्रबंधन, भारतीय रिजर्व बैंक, नई दिल्ली** बनाम **भोपाल सिंह पांचाल**[1] वाले मामले में विचार के लिए आया है । इस मामले में इस न्यायालय ने अनुशासनिक कार्यवाहियों के संबंध में दांडिक न्यायालय द्वारा ससम्मान दोषमुक्ति पर विचार किए जाने से संबंधित विनियम 46(4) के प्रभाव पर विचार किया है । इस प्रसंग में, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि मात्र दोषमुक्ति किए जाने से कर्मचारी सेवा में पुनःस्थापित किए जाने के लिए हकदार नहीं हो जाता है, यह अभिनिर्धारित किया गया कि दोषमुक्ति ससम्मान होनी चाहिए । 'ससम्मान दोषमुक्ति', 'आरोप से दोषमुक्त किया जाना', 'पूर्णतया उन्मुक्त किया जाना' जैसी अभिव्यक्तियों का उल्लेख दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 या भारतीय दंड संहिता, 1860 में नहीं है और इन अभिव्यक्तियों का उल्लेख केवल न्यायिक आदेशों में किया गया है ।

---

[1] (1994) 1 एस. सी. सी. 541 = ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 552 = 1993 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 4044.

'ससम्मान दोषमुक्त किया जाना' को संक्षेप में परिभाषित करना कठिन होगा । जब अभियुक्त को अभियोजन साक्ष्य पर पूर्ण विचार करने के पश्चात् दोषमुक्त किया जाता है और अभियोजन पक्ष अभियुक्त के विरुद्ध आरोप साबित करने में असफल रहता है, तब यह कहा जा सकता है कि अभियुक्त को ससम्मान दोषमुक्त किया गया है ।

22. **आर. पी. कपूर** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि दोषमुक्ति के मामले में भी विभागीय कार्यवाहियां चलाई जा सकती हैं चाहे दोषमुक्ति ससम्मान दोषमुक्ति से भिन्न हो । **असम राज्य और अन्य** बनाम **राघवराज गोपालाचारी**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने एक मामले में लार्ड विलियम द्वारा व्यक्त किए गए मतों का अनुमोदन करते हुए निम्न मत व्यक्त किया :–

> "'ससम्मान दोषमुक्ति' अभिव्यक्ति वह अभिव्यक्ति है जो न्यायालय के अज्ञात है । स्पष्टतः यह एक प्रकार का आदेश है जिसका प्रयोग कोर्ट मार्शल और न्यायेत्तर ट्रायब्युनलों में किया जाता है । हमने अपने निर्णय में यह मत व्यक्त किया है कि हमने अपीलार्थी द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण को सत्य मानते हुए स्वीकार किया है और यह विचार किया है कि यह सरकारी प्राधिकारियों और मजिस्ट्रेट द्वारा भी स्वीकार किया जाना चाहिए था । इसके अतिरिक्त, हमने यह विनिश्चित किया है कि अपीलार्थी ने आरोप में निर्दिष्ट धन का दुर्विनियोग नहीं किया है । इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे निर्णय का यह परिणाम हुआ कि अपीलार्थी को इस प्रकार पूर्णतया दोषमुक्त किया गया जैसे उसे दोषमुक्त किया जाना संभव ही हो । अनुमानतः यह उस अर्थ के समतुल्य होगा जो सरकारी प्राधिकारियों द्वारा 'ससम्मान दोषमुक्ति' का अर्थ लगाया गया है ।"

23. जैसा कि हमने पहले ही उपदर्शित किया है, पुनःस्थापित किए जाने के लिए सेवा नियम में किसी भी उपबंध के अभाव में यदि किसी कर्मचारी को किसी दांडिक न्यायालय द्वारा ससम्मान दोषमुक्त किया जाता है, तब कर्मचारी को सेवा में पुनःस्थापित किए जाने सहित किसी भी लाभ का दावा करने के लिए कोई भी अधिकार प्रदत्त नहीं किया गया है । इसका यह कारण है कि किसी व्यक्ति को किसी दांडिक न्यायालय द्वारा

---

[1] ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 787.

[2] 1972 एस. एल. आर. 44.

दोषी ठहराने और अनुशासनिक कार्यवाही द्वारा जांच कराए जाने के सबूत के मानक भिन्न-भिन्न हैं । आपराधिक मामले में अभियुक्त का दोष सिद्ध करने का भार अभियोजन पक्ष पर होता है और यदि वह संदेह के परे दोष साबित करने में असफल रहता है तो अभियुक्त को निर्दोष समझा जाएगा । यह सुस्थापित विधि है कि किसी दांडिक न्यायालय में दोष साबित करने के लिए सबूत का जो कड़ा भार अपेक्षित है वह अनुशासनिक कार्यवाहियों में अपेक्षित नहीं है, अनुशासनिक कार्यवाहियों में तो संभाव्यताओं का बाहुल्य ही पर्याप्त है । ऐसे भी मामले हैं जिनमें तकनीकी कारणों से अभियुक्त को दोषमुक्त किया जाता है या कुछ साक्षियों के पक्षद्रोही हो जाने के कारण अभियोजन पक्ष द्वारा परीक्षा नहीं कराई जाती है और अभियुक्त को दोषमुक्त किया जाता है । वर्तमान मामले में, अभियोजन पक्ष ने इस आधार पर महत्वपूर्ण साक्षियों की परीक्षा नहीं की है कि शिकायतकर्ता और उसकी पत्नी पक्षद्रोही हो गए हैं । अतः न्यायालय ने संदेह का लाभ देते हुए अभियुक्त को दोषमुक्त किया है । हम वर्तमान मामले में यह मत व्यक्त नहीं कर सकते कि दांडिक न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी को ससम्मान दोषमुक्त किया गया है और यदि उसे ससम्मान दोषमुक्त किया जाता तो भी वह सेवा में पुनःस्थापित किए जाने का दावा करने का हकदार नहीं होता क्योंकि तमिलनाडु सेवा नियम में ऐसा उपबंध नहीं किया गया है ।

24. हमारे समक्ष ऐसे मामले भी आए हैं जिनके संबंध में सेवा नियम के अधीन यह उपबंध किया गया है कि आपराधिक मामला रजिस्ट्रीकृत किए जाने पर किसी कर्मचारी को निलंबित किया जा सकता है और दांडिक न्यायालय द्वारा दोषमुक्त किए जाने पर उसे सेवा में पुनःस्थापित किया जा सकता है और ऐसे मामलों में पुनःस्थापित किया जाना स्वाभाविक है । ऐसे मामलों में, जिनमें सेवा नियमों के अधीन घरेलू जांच के बावजूद, यदि दांडिक न्यायालय कर्मचारी को ससम्मान दोषमुक्त करता है, तब उसे सेवा में पुनःस्थापित किया जा सकता है । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि यह मुद्दा कि कर्मचारी को सेवा में पुनःस्थापित किया जाना चाहिए या नहीं इस प्रश्न पर निर्भर है कि क्या सेवा नियमों में पुनःस्थापित किए जाने का ऐसा कोई उपबंध है या नहीं और कर्मचारी को अधिकार स्वरूप पुनःस्थापित नहीं किया जा सकता है । ऐसे उपबंध तमिलनाडु सेवा नियमों में उल्लिखित नहीं है ।

25. ऊपर उल्लिखित परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए, हमारा यह मत है कि प्रत्यर्थी के विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाहियों में अधिरोपित दंड

अपास्त करने में उच्च न्यायालय ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन अपनी सीमित अधिकारिता में न्यायोचित नहीं किया है ।

26. इस मामले में तथ्य और परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए हम कुछ पहलुओं पर विचार करना चाहेंगे जिनका सार्वजनिक महत्व है । हमारा यह मत है कि इस देश में कोई भी समान नियम नहीं है जो शैक्षणिक संस्थाओं, धार्मिक स्थलों, बस अड्डों, मेट्रो स्टेशनों, रेलवे स्टेशनों, सिनेमा घरों, उद्यानों, समुद्र के किनारों, त्यौहार-स्थलों, लोक सेवा यानों या ऐसे अन्य किसी स्थान पर महिलाओं के साथ छेड़छाड़ के संबंध में प्रभावी रूप से लागू किया जा सके । आम तौर पर सार्वजनिक स्थानों पर ही महिलाओं के साथ छेड़छाड़ की जाती है जो थोड़े से प्रयास से ही प्रभावपूर्ण रूप से नियंत्रित की जा सकती है । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि ऐसी बुराई को नियंत्रित न करने के परिणाम कई बार विनाशकारी साबित हुए हैं । ऐसे बहुत से उदाहरण हैं जब किसी नवयुवती को उत्पीड़ित किया जाता है तब वह गंभीर मानसिक रोग का शिकार हुई है और यहां तक कि आत्म हत्या भी कर लेती है । इस देश में प्रत्येक नागरिक को सम्मान से जीने का अधिकार है जो कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन गारंटीकृत मूल अधिकार है । महिलाओं के साथ छेड़छाड़ जैसे यौन उत्पीड़न अनुच्छेद 14 और 15 के अधीन गारंटीकृत अधिकारों का अतिक्रमण किए जाने की कोटि में भी आता है । हमारा यह विचार है कि महिलाओं के साथ छेड़छाड़ से संबंधित प्रभावी विधान-मंडल न होने की स्थिति में सामान्यतया शिकायतें दंड संहिता की धारा 294 या धारा 509 के अधीन रजिस्ट्रीकृत की जाती हैं ।

27. दंड संहिता की धारा 294 के अधीन यह उपबंध है कि जो कोई किसी लोक स्थान में कोई अश्लील कार्य करेगा अथवा किसी लोक स्थान में या उसके समीप कोई अश्लील गाने, पवांड़े या शब्द गाएगा, सुनाएगा या उच्चारित करेगा, जिससे दूसरों को क्षोभ होता हो, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि तीन मास तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से, दंडित किया जाएगा ।

28. यह साबित करना अभियोजन का कर्तव्य है कि अभियुक्त ने सार्वजनिक स्थान पर या उसके निकट कोई अश्लील कार्य किया है या उसने कोई अश्लील गाना गाया है, उच्चारण किया है या उसके शब्द बोले हैं ; कार्य की प्रकृति अश्लील होनी चाहिए और इससे अन्य व्यक्तियों को घृणा होनी चाहिए । सामान्यतया ऐसे तथ्यों को साबित करना अत्यंत कठिन

होता है और कभी-कभी जो शिकायतें दांडिक न्यायालयों में फाइल की जाती हैं उनमें कई वर्ष लग जाते हैं और लोग बिना किसी दंड के अपराध से मुक्त हो जाते हैं और शिकायत फाइल करना और लंबे समय तक विचारण की कार्यवाही से गुजरना स्वयं में शिकायतकर्ता के लिए मानसिक पीड़ा बन जाती है । जबकि वो पहले ही अत्यंत शारीरिक और मानसिक पीड़ा का सामना कर चुका होता है ।

29. दंड संहिता की धारा 509 में यह उपबंध किया गया है कि जो कोई किसी स्त्री की लज्जा का अनादर करने के आशय से कोई शब्द कहेगा, कोई ध्वनि या अंग विक्षेप करेगा, या कोई वस्तु प्रदर्शित करेगा, इस आशय से कि ऐसी स्त्री द्वारा ऐसा शब्द या ध्वनि सुनी जाए, या ऐसा अंग विक्षेप या वस्तु देखी जाए, अथवा ऐसी स्त्री की एकांतता को अतिक्रमण करेगा, वह सादा कारावास से, जिसकी अवधि एक वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से, दंडित किया जाएगा ।

30. यह साबित करना अभियोजन पक्ष का कर्तव्य है कि अभियुक्त ने शब्द बोलें हैं या आवाज निकाली है या इशारा किया है और ऐसे शब्द बोलने, आवाज करने और इशारा करने के संबंध में अभियुक्त का उद्देश्य यह हो कि कोई महिला उसे सुने या देखें । सामान्यतया, ऐसा साबित करना कठिन होता है और बहुत कम अवसरों पर महिलाएं शिकायत फाइल करती हैं और प्रायः अपराधी दंडित किए जाने से बच जाते हैं चाहे उनके विरुद्ध शिकायत फाइल क्यों न की गई हो क्योंकि ऐसे अपराधों पर नजर रखने के लिए कोई भी प्रभावी प्रक्रिया नहीं है । समुचित विधान-मंडल के लिए यह आवश्यक है कि वह महिलाओं के साथ छेड़छाड़ को अत्यधिक महत्व दे । यहां तक कि तमिलनाडु विधान-मंडल में भी इसके लिए कोई उपाय नहीं है ।

31. महिलाओं के साथ छेड़छाड़ आज के समय की एक भयंकर और अपमानजनक बुराई है । द इंडियन जर्नल आफ क्रिमिनोलाजी एंड क्रिमिनलस्टिक्स (जनवरी-जून 1995 का प्रकाशन) के अन्तर्गत महिलाओं के साथ छेड़छाड़ को पांच खंडों में विभाजित किया गया है अर्थात् (1) मौखिक छेड़छाड़ ; (2) शारीरिक छेड़छाड़ ; (3) मनोवैज्ञानिक उत्पीड़न ; (4) यौन उत्पीड़न ; और (5) वस्तुओं के माध्यम से छेड़छाड़ । **विशाखा और अन्य** बनाम **राजस्थान राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यौन उत्पीड़न से

---

[1] (1997) 6 एस. सी. सी. 241 = ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 3011 = 1997 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 3043.

संबंधित कतिपय मार्गसिद्धांत अधिकथित किए हैं । **रूपन दियोल बजाज और एक अन्य** बनाम **के. पी. एस. गिल**[1] वाले मामले में न्यायालय ने 'लज्जा' के अर्थ को नारी के संबंध में स्पष्ट किया है । बहुत सी लड़कियां, महिलाएं आदि शैक्षणिक संस्थानों, कार्यस्थलों आदि पर जाती हैं और उनकी संरक्षा सभ्य समाज के लिए अत्यधिक महत्व रखती है । भीड़ से खचाखच भरी बसों, मेट्रो और ट्रेनों आदि में महिलाओं और कन्याओं के अनुभव भयावह और दर्दनाक हैं ।

32. हाल ही में संसद् ने कार्यस्थान पर लैंगिक प्रपीड़न के विरुद्ध महिला की संरक्षा विधेयक, 2010 पर विचार किया है और यह विधेयक अधिकांश कार्यस्थानों पर महिला कर्मचारियों को संरक्षा देने के आशय से बनाया गया है । इस विधेयक के उपबंध महिलाओं के साथ छेड़छाड़ पर लागू होने के लिए पर्याप्त नहीं हैं । महिलाओं के साथ छेड़छाड़ को इसके अन्तर्गत लाने के लिए समुचित विधान-मंडल के पूर्व, यह आवश्यक है कि कम से कम कुछ आपातकालीन तरीके ही अपनाए जाएं ताकि किसी सीमा तक इस अपराध को कम किया जा सके । अतः लोक हित में हम निम्न निदेश देना चाहते हैं :–

(1) सभी राज्य सरकारें और संघ राज्यक्षेत्र को यह निदेश दिया जाता है कि वे बस अड्डों और बस स्टापों, रेलवे स्टेशनों, मेट्रो स्टेशनों, सिनेमा थियेटरों, शापिंग मालों, उद्यानों, समुद्र तटों, लोक सेवा यानों, धार्मिक स्थलों आदि पर सादा वर्दी में महिला पुलिस तैनात करें ताकि महिलाओं के साथ छेड़छाड़ की घटनाओं को नियंत्रित किया जा सके ।

(2) राज्य सरकार और संघ राज्यक्षेत्र को यह भी निदेश दिए जाएंगे कि वे युक्तिपरक स्थिति में सीसीटीवी लगवाएं जो स्वयं में भय प्रतिकारी होगा और अपराधी को पकड़ा जा सकता है ।

(3) शैक्षणिक संस्थानों, धार्मिक स्थलों, सिनेमा थियेटरों, रेलवे स्टेशनों, बस अड्डों के भारसाधक ऐसे कोई भी कदम उठा सकते हैं जिन्हें वे अपने क्षेत्र में महिलाओं के साथ छेड़छाड़ को रोकने के लिए उचित समझे और शिकायत किए जाने पर उन्हें चाहिए कि वे निकट के पुलिस थाने या महिला सहायता केन्द्र को सूचना भेजे ।

---

[1] (1995) 6 एस. सी. सी. 194 = ए. आई. आर. 1996 एस. सी. 309 = 1995 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 4100.

(4) जब यात्रियों द्वारा या यान के भारसाधक द्वारा महिलाओं के साथ छेड़छाड़ की कोई घटना लोक सेवा यान में घटित होती है तब उस यान का कर्मचारिवृन्द आहत व्यक्ति द्वारा शिकायत किए जाने पर उस यान को निकट के पुलिस थाने पर ले जा सकता है । यदि ऐसा न किया गया तो उस यान का परमिट रद्द किया जाना चाहिए ।

(5) राज्य सरकारों और संघ राज्यक्षेत्रों को यह निदेश दिए जाते हैं कि वे अनेक नगरों और कस्बों में महिला हेल्प लाइन स्थापित करें ताकि तीन मास के भीतर महिलाओं के साथ छेड़छाड़ पर नियंत्रण रखा जा सके ।

(6) शैक्षणिक संस्थानों, बस अड्डों, रेलवे स्टेशनों, सिनेमा, थियेटरों, जलसों, समुद्र तटों, लोक सेवा यानों, धार्मिक स्थानों आदि सहित सभी लोक स्थलों पर महिलाओं के साथ छेड़छाड़ संबंधी ऐसे अपराधों को चेतावनी देने वाले समुचित बोर्ड लगवाए जाएं ।

(7) रास्ते से गुजरने वाले और ऐसी घटना को देखने वाले व्यक्तियों पर भी यह जिम्मेदारी होनी चाहिए कि ऐसे अपराध से आहत को बचाने के लिए वे निकट के पुलिस थानों को या महिला हेल्प लाइन को रिपोर्ट करें ।

(8) राज्य सरकार और भारत के संघ राज्यक्षेत्र जिला कलेक्टर, जिला पुलिस अधीक्षक सहित संबद्ध प्राधिकारियों को समुचित निदेश देते हुए ऐसे तरीके अपनाएंगे कि महिलाओं के साथ छेड़छाड़ की ऐसी घटनाओं को प्रभावी और समुचित रूप से नियंत्रित किया जा सके ।

33. तदनुसार, उपर्युक्त निदेशों के साथ अपील मंजूर की जाती है और उच्च न्यायालय का निर्णय अपास्त किया जाता है । तथापि, खर्चों के लिए कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

अस./अनू.

———

[2013] 4 उम. नि. प. 128

देवकी पंझीयारा

बनाम

शशि भूषण नारायण आज़ाद और एक अन्य

12 दिसम्बर, 2012

न्यायमूर्ति पी. सदाशिवम् और न्यायमूर्ति रंजन गोगोई

घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम, 2005 (2005 का 43) – धारा 12 [सपठित हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) की धारा 11] – पत्नी द्वारा भरणपोषण का दावा – पति द्वारा इस आधार पर भरणपोषण के दावे से इनकार करना कि उनका विवाह शून्य था – जब पत्नी के भरणपोषण संबंधी दावे का पति द्वारा इस आधार पर विरोध किया जाता है कि उनका विवाह शून्य था क्योंकि पत्नी का पूर्व विवाह अस्तित्व में था तब पति द्वारा अपने दावे के समर्थन में पत्नी के पूर्व विवाह का प्रमाणपत्र पेश करने मात्र से पत्नी के भरणपोषण संबंधी दावे से इनकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि न्यायालय भरणपोषण की सांपार्श्विक कार्यवाहियों में विवाह को शून्य अभिनिर्धारित करके पत्नी के दावे से इनकार नहीं कर सकता है ।

घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम, 2005 (2005 का 43) – धारा 11 – शून्य विवाह – यद्यपि विवाह के पक्षकारों के लिए अपने विवाह को अकृत और शून्य घोषित कराना वैकल्पिक है तथापि, किन्हीं परिस्थितियों में पक्षकारों की वैवाहिक स्थिति का विनिश्चय करने के लिए इसे आवश्यक बनाया जा सकता है ।

अपीलार्थी ने, जिसका प्रत्यर्थी से वर्ष 2006 में विवाह हुआ था, घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम, 2005 की धारा 12 के अधीन एक याचिका फाइल की थी जिसमें, नुकसानी और भरणपोषण सहित कतिपय अनुतोषों की ईप्सा की गई थी । अपीलार्थी ने उपर्युक्त आवेदन के लंबित रहने के दौरान अंतरिम भरणपोषण के लिए एक आवेदन फाइल किया था जो कि विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा 2,000 रुपए प्रति मास की दर पर मंजूर किया गया था । विद्वान् विचारण न्यायालय के आदेश को विद्वान् सेशन न्यायाधीश द्वारा अभिपुष्ट कर दिया गया था । प्रत्यर्थी (पति) ने उपर्युक्त आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका

फाइल की । जब रिट याचिका लंबित थी, तब प्रत्यर्थी ने इस आधार पर विचारण न्यायालय के आदेश को वापस लेने की ईप्सा की कि उसे बाद में इस बात का पता चल सका था कि अपीलार्थी के साथ उसका विवाह इस आधार पर शून्य था कि उक्त विवाह के समय अपीलार्थी का रोहित कुमार मिश्रा नामक व्यक्ति से पहले ही विवाह हो चुका था । प्रत्यर्थी-पति ने इसके समर्थन में विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष सक्षम प्राधिकारी द्वारा विशेष विवाह अधिनियम, 1954 की धारा 13 के अधीन अपीलार्थी और उक्त रोहित कुमार मिश्रा के बीच तारीख 18 अप्रैल, 2003 को हुए विवाह का प्रमाणपत्र प्रस्तुत किया था । विद्वान् विचारण न्यायालय ने उपर्युक्त आवेदन को इस आधार पर नामंजूर कर दिया कि 1954 के अधिनियम की धारा 13 के अधीन जारी किए गए प्रमाणपत्र के होते हुए भी अधिनियम की धारा 15 में प्रगणित शर्तों की विद्यमानता का सबूत पेश किया जाना अब भी अपेक्षित होगा और इसके पश्चात् ही अधिनियम की धारा 13 के अधीन जारी किए गए प्रमाणपत्र को विधिमान्य ठहराया जा सकता है । उपर्युक्त आदेश को प्रत्यर्थी-पति द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण आवेदन में चुनौती दी गई थी जिसकी सुनवाई इसके पूर्व फाइल की गई रिट याचिका के साथ की गई थी । दोनों ही मामलों का निपटारा आक्षेपित सामान्य आदेश द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए किया गया था कि 1954 के अधिनियम की धारा 13 के अधीन जारी किया गया विवाह प्रमाणपत्र अपीलार्थी का रोहित कुमार मिश्रा नामक व्यक्ति के साथ प्रथम विवाह होने का निश्चित सबूत है जिसका प्रभाव अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच हुए विवाह को अकृत और शून्य करना था । तदनुसार, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि चूंकि अपीलार्थी प्रत्यर्थी की विधिक रूप से विवाहित पत्नी नहीं थी इसलिए वह विद्वान् निचले न्यायालयों द्वारा अनुदत्त भरणपोषण की हकदार नहीं थी । उच्च न्यायालय के उपर्युक्त आदेश के विरुद्ध अपीलार्थी-पत्नी द्वारा प्रस्तुत अपीलें फाइल की गई हैं । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – स्वीकृततः, अपीलार्थी और प्रत्यर्थी दोनों हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 के उपबंधों द्वारा शासित होते हैं । हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 11 में यह स्पष्ट किया गया है कि इस अधिनियम के प्रारंभ के पश्चात् अनुष्ठापित कोई भी विवाह, "यदि वह धारा 5 के खंड (i), (iv) और (v) में विनिर्दिष्ट शर्तों में से किसी एक का भी उल्लंघन करता हो तो, अकृत और शून्य होगा और विवाह के किसी पक्षकार द्वारा दूसरे

पक्षकार के विरुद्ध उपस्थापित अर्जी पर अकृतता की डिक्री द्वारा ऐसा घोषित किया जा सकेगा ।" यद्यपि पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 11 शून्य विवाह के किसी भी पक्षकार को ऐसे विवाह को अविधिमान्य/अकृत करने की घोषणा की ईप्सा करने का विकल्प प्रदान करती है तथापि, ऐसे विकल्प का प्रयोग करने के बारे में यह नहीं समझा जा सकता है कि वह सभी स्थितियों में स्वेच्छया है । ऐसी स्थितियां उद्‌भूत हो सकती हैं जब सामान्य नियम से विचलन करते हुए किसी ऐसे विवाह की अकृतता की घोषणा करने के संबंध में न्यायालय का सहारा लेने पर जोर दिया जा सकता है जिसमें पति-पत्नी में से एक द्वारा विवाह के शून्य होने का दावा किया गया है । (पैरा 18)

प्रस्तुत मामले में, यदि प्रत्यर्थी के अनुसार उसके और अपीलार्थी के बीच विवाह अपीलार्थी और रोहित कुमार मिश्रा के बीच पूर्व विवाह के कारण शून्य हो गया था तो अपीलार्थी द्वारा उपर्युक्त मुद्दे पर उठाए गए अत्यंत विवादास्पद प्रश्नों को ध्यान में रखते हुए प्रत्यर्थी को सक्षम न्यायालय से आवश्यक घोषणा प्राप्त करनी चाहिए थी । सक्षम न्यायालय द्वारा पक्षकारों के बीच विवाह की अकृतता या बातिलीकरण की घोषणा के पश्चात् ही इस प्रश्न पर विचार करना न्यायोचित होगा कि क्या पक्षकार "विवाह की प्रकृति की नातेदारी" में एक साथ रहे थे । अकृतता की किसी विधिमान्य डिक्री या आवश्यक घोषणा के अभाव में न्यायालय को इस आधार पर कार्यवाही करनी होगी कि पक्षकारों के बीच नातेदारी विवाह की है न कि विवाह की प्रकृति की । पक्षकारों के बीच विवाह की विधिमान्यता का कोई भी निर्धारण पक्षकारों द्वारा और उनके बीच किसी समुचित कार्यवाही में किसी सक्षम न्यायालय द्वारा विधि की अन्य सभी अपेक्षाओं का अनुपालन करते हुए किया जा सकता था । अपीलार्थी और रोहित कुमार मिश्रा के दावाकृत पहले विवाह के समर्थन में विशेष विवाह अधिनियम, 1954 की धारा 13 के अधीन जारी किया गया विवाह प्रमाणपत्र प्रस्तुत करना मात्र किसी भी न्यायालय के लिए, जिसमें उच्च न्यायालय भी है, पक्षकारों की वैवाहिक स्थिति के संबंध में और वह भी भरणपोषण के लिए की गई किसी सांपार्श्विक कार्यवाही में संपूर्ण और प्रभावी विनिश्चय करने के लिए पर्याप्त नहीं था । परिणामस्वरूप, प्रस्तुत मामले में जब तक अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच विवाह का अविधिमान्यकरण किसी सक्षम न्यायालय द्वारा नहीं हो जाता है तब तक इस आधार पर कार्यवाही करना ही सही होगा कि अपीलार्थी प्रत्यर्थी की पत्नी बनी हुई है जिससे कि वह

घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005 के अधीन उपलब्ध सभी फायदों और संरक्षण का दावा करने की हकदार है । (पैरा 19)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2011]	(2011) 7 एस. सी. सी. 616 : **ए. सुभाष बाबू** बनाम **आन्ध्र प्रदेश राज्य और एक अन्य** ;	18
[2010]	(2010) 10 एस. सी. सी. 469 : **डी. वेलूस्वामी** बनाम **डी. पचईम्मल** ;	9,10,12
[2005]	(2005) 8 एस. सी. सी. 351 : **एम. एम. मल्होत्रा** बनाम **भारत संघ** ;	16,17,18
[1994]	ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 853 : **एस. पी. चंगलवराया नायडू** बनाम **जगन्नाथ और अन्य** ;	11
[1988]	ए. आई. आर. 1988 एस. सी. 645 : **यमुनाबाई** बनाम **अनंतराव** ।	15,18

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2012 की दांडिक अपील सं. 2032-2033.

2008 की रिट याचिका (दांडिक) सं. 205 और 2009 के दांडिक पुनरीक्षण सं. 819 में रांची स्थित झारखंड उच्च न्यायालय के तारीख 9 अप्रैल, 2010 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपीलें ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री गौरव अग्रवाल और शंकर नारायण

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री महेश तिवारी, विष्णु तिवारी, डा. कैलाश चन्द और रतन कुमार चौधरी

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति रंजन गोगोई ने दिया ।

न्या. गोगोई – इजाजत दी जाती है ।

2. अपीलार्थी ने, जिसका प्रत्यर्थी से वर्ष 2006 में विवाह हुआ था,

घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम, 2005 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'घरेलू हिंसा अधिनियम' कहा गया है) की धारा 12 के अधीन एक याचिका फाइल की थी जिसमें, नुकसानी और भरणपोषण सहित कतिपय अनुतोषों की ईप्सा की गई थी । अपीलार्थी ने उपर्युक्त आवेदन के लंबित रहने के दौरान अंतरिम भरणपोषण के लिए एक आवेदन फाइल किया था जो कि विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा तारीख 13 फरवरी, 2008 को 2,000/- रुपए प्रति मास की दर पर मंजूर किया गया था । विद्वान् विचारण न्यायालय के आदेश को विद्वान् सेशन न्यायाधीश द्वारा तारीख 9 जुलाई, 2008 को अभिपुष्ट कर दिया गया था । प्रत्यर्थी (पति) ने उपर्युक्त आदेश के विरुद्ध झारखंड उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका फाइल की ।

3. जब रिट याचिका लंबित थी, तब प्रत्यर्थी ने इस आधार पर तारीख 13 फरवरी, 2008 के आदेश को वापस लेने की ईप्सा की कि उसे बाद में इस बात का पता चल सका था कि अपीलार्थी के साथ उसका विवाह इस आधार पर शून्य था कि उक्त विवाह के समय अपीलार्थी का रोहित कुमार मिश्रा नामक व्यक्ति से पहले ही विवाह हो चुका था । प्रत्यर्थी-पति ने इसके समर्थन में विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष सक्षम प्राधिकारी द्वारा विशेष विवाह अधिनियम, 1954 (जिसे इसमें इसके पश्चात् '1954 का अधिनियम' कहा गया है) की धारा 13 के अधीन अपीलार्थी और उक्त रोहित कुमार मिश्रा के बीच तारीख 18 अप्रैल, 2003 को हुए विवाह का प्रमाणपत्र प्रस्तुत किया था ।

4. विद्वान् विचारण न्यायालय ने तारीख 7 अगस्त, 2009 के आदेश द्वारा उपर्युक्त आवेदन को इस आधार पर नामंजूर कर दिया कि 1954 के अधिनियम की धारा 13 के अधीन जारी किए गए प्रमाणपत्र के होते हुए भी अधिनियम की धारा 15 में प्रगणित शर्तों की विद्यमानता का सबूत पेश किया जाना अब भी अपेक्षित होगा और इसके पश्चात् ही अधिनियम की धारा 13 के अधीन जारी किए गए प्रमाणपत्र को विधिमान्य ठहराया जा सकता है ।

5. तारीख 7 अगस्त, 2009 के उपर्युक्त आदेश को प्रत्यर्थी-पति द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण आवेदन में चुनौती दी गई थी जिसकी सुनवाई इसके पूर्व फाइल की गई रिट याचिका के साथ की गई थी । दोनों ही मामलों का निपटारा तारीख 9 अप्रैल, 2010 के आक्षेपित सामान्य आदेश द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए किया गया था कि 1954 के अधिनियम की धारा 13 के अधीन जारी किया गया तारीख 18 अप्रैल,

2003 का विवाह प्रमाणपत्र अपीलार्थी का रोहित कुमार मिश्रा नामक व्यक्ति के साथ प्रथम विवाह होने का निश्चित सबूत है जिसका प्रभाव अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच हुए विवाह को अकृत और शून्य करना था । तदनुसार, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि चूंकि अपीलार्थी प्रत्यर्थी की विधिक रूप से विवाहित पत्नी नहीं थी इसलिए वह विद्वान् निचले न्यायालयों द्वारा अनुदत्त भरणपोषण की हकदार नहीं थी । उच्च न्यायालय के उपर्युक्त आदेश के विरुद्ध अपीलार्थी-पत्नी द्वारा प्रस्तुत अपीलें फाइल की गई हैं ।

6. हमने अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउन्सेल श्री गौरव अग्रवाल और प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान् काउन्सेल श्री महेश तिवारी को सुना है ।

7. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउन्सेल ने बलपूर्वक यह दलील दी है कि अपीलार्थी और रोहित कुमार मिश्रा के बीच इससे पूर्व विवाह होने संबंधी अभिकथन से अपीलार्थी द्वारा सभी प्रक्रमों पर इनकार किया गया था और उक्त तथ्य केवल तारीख 18 अप्रैल, 2003 के विवाह प्रमाणपत्र से सिद्ध नहीं हो जाता है । यह मान लेने पर भी कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच विवाह शून्य था तो भी चूंकि पक्षकार एक-साथ रहते थे इसलिए विवाह की प्रकृति का संबंध अस्तित्व में था जिसके कारण अपीलार्थी घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005 के अधीन भरणपोषण का दावा करने और उसे प्राप्त करने की हकदार होगी । उस विधायी इतिहास को प्रस्तुत करते हुए जिसके परिणामस्वरूप उपर्युक्त अधिनियमिति की गई थी, इस बात पर जोर दिया गया था कि संसद् के समक्ष प्रस्तुत किए गए विधेयक, अर्थात् घरेलू हिंसा से संरक्षण विधेयक, 2002 में व्यथित व्यक्ति और नातेदार की परिभाषा आरंभ में निम्नलिखित निबंधनों में की गई थी :–

> "धारा 2. .....
>
> (क) 'व्यथित व्यक्ति' से कोई ऐसी महिला अभिप्रेत है जो प्रत्यर्थी की नातेदार है या रही है और जिसका यह अभिकथन है कि वह प्रत्यर्थी द्वारा घरेलू हिंसा की शिकार रही है ।
>
> (ख) .....
>
> (ग) .....
>
> (घ) .....
>
> (ङ) .....

(च) .....

(छ) .....

(ज) .....

(झ) 'नातेदार' में ऐसा व्यक्ति शामिल है जिसकी रक्त, विवाह या दत्तक द्वारा नातेदारी है और जो प्रत्यर्थी के साथ रह रहा है ।"

इसके पश्चात्, संसदीय स्थायी समिति ने विधेयक के भिन्न-भिन्न खंडों पर विचार किया और यह सिफारिश की गई थी कि उस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए जो प्रस्थापित विधान द्वारा पूरा किया जाना ईप्सित है, अर्थात्, महिलाओं को घरेलू हिंसा और शोषण से संरक्षण प्रदान करने के लिए खंड (2)(i) में, जिसमें "नातेदार" की परिभाषा दी गई है, उपयुक्त रूप से संशोधन किया जाए जिससे कि इसमें उन महिलाओं को सम्मिलित किया जा सके जो कि विवाह के सदृश नातेदारी में तथा विधि द्वारा अविधिमान्य समझे जाने वाले विवाह में रह रही हैं । स्थायी समिति द्वारा की गई उपर्युक्त सिफारिश के अनुसरण में विधेयक के खंड (2)(i) में आने वाली "नातेदार" अभिव्यक्ति के स्थान पर अधिनियम की धारा 2 के खंड (च) में "घरेलू नातेदारी" अभिव्यक्ति शामिल की गई थी । विद्वान् काउन्सेल ने घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005 में आने वाली "व्यथित व्यक्ति" और "घरेलू नातेदारी" की परिभाषा के प्रति निर्देश करके यह दलील दी कि ऐसे विवाहों में, जो बाद में अवैध पाए जाते हैं, या विवाह के सदृश नातेदारी में एक-साथ रहने वाली महिलाओं को घरेलू हिंसा अधिनियम के संरक्षात्मक आवरण में सम्मिलित करने संबंधी विधायी आशय पूर्णतः स्पष्ट है और उसे पूर्ण रूप से प्रभावी किया जाना चाहिए । यह दलील दी गई है कि उपर्युक्त मत को ध्यान में रखते हुए भले ही अपीलार्थी और प्रत्यर्थी का विवाह अपीलार्थी के पूर्व विवाह के कारण शून्य हो गया था, उक्त तथ्य स्वतः अपीलार्थी को घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005 के अधीन भरणपोषण और अन्य अनुतोषों की ईप्सा करने से निर्हकित नहीं करेगा ।

8. आगे कार्यवाही करने से पूर्व, इस प्रक्रम पर घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005 की धारा 2(क) और (च) में आने वाली "व्यथित व्यक्ति" और "घरेलू नातेदारी" अभिव्यक्तियों की परिभाषा की अवेक्षा करना उपयुक्त होगा :–

"(क) 'व्यथित व्यक्ति' से कोई ऐसी महिला अभिप्रेत है जो प्रत्यर्थी की घरेलू नातेदारी में है या रही है और जिसका अभिकथन है

कि वह प्रत्यर्थी द्वारा किसी घरेलू हिंसा का शिकार रही है ;

(ख).....

(ग).....

(घ).....

(ङ).....

(च) 'घरेलू नातेदारी' से ऐसे दो व्यक्तियों के बीच नातेदारी अभिप्रेत है, जो साझी गृहस्थी में एक साथ रहते हैं या किसी समय एक साथ रह चुके हैं, जब वे, समरक्तता, विवाह द्वारा या विवाह, दत्तक ग्रहण की प्रकृति की किसी नातेदारी द्वारा संबंधित है या एक अविभक्त कुटुम्ब के रूप में एक साथ रहने वाले कुटुम्ब के सदस्य हैं ।"

9. विद्वान् काउन्सेल ने ऋजुतापूर्वक **डी. वेलूस्वामी** बनाम **डी. पचईम्मल**[1] वाले मामले में समकक्ष न्यायपीठ द्वारा दिए गए विनिश्चय के प्रति भी ध्यान आकृष्ट किया जिसमें इस न्यायालय ने घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 2(च) के उपबंधों पर विचार किया और यह निष्कर्ष निकाला कि विवाह की प्रकृति की नातेदारी सामान्य विधि विवाह के समरूप है जिसमें यह अपेक्षित है कि इस तथ्य के सबूत के अलावा कि पक्षकार घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 2(थ) में परिभाषित किसी साझी गृहस्थी में एक साथ रहे थे, निम्नलिखित शर्तें पूरी की जानी हैं :–

"(क) दम्पत्ति को समाज के सामने पति-पत्नी की तरह बने रहना चाहिएं ।

(ख) वे विवाह करने की वैध आयु के होने चाहिएं ।

(ग) वे वैध विवाह करने के लिए अन्यथा अर्हित होने चाहिएं, जिसमें उनका अविवाहित होना भी है ।

(घ) उन्होंने स्वेच्छया सहवास किया हो और पर्याप्त समय तक समाज में पति-पत्नी की तरह बने रहे हों ।" .... (पैरा 33)

10. तथापि, विद्वान् काउन्सेल ने यह इंगित किया है कि **वेलूस्वामी** (उपर्युक्त) वाले मामले में विवाद्यक दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 में

---

[1] (2010) 10 एस. सी. सी. 469.

आने वाली "पत्नी" अभिव्यक्ति के अर्थान्वयन के संबंध में था और इसलिए घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005 की धारा 2(च) के उपबंधों और अभिलिखित निष्कर्ष का उल्लेख करना इस मामले में उद्भूत होने वाले विवाद्यकों को विनिश्चित करने के लिए अपेक्षित नहीं था । इसके अलावा, यह इंगित किया गया है कि इस न्यायालय को उपर्युक्त मामले में अपनी राय व्यक्त करते समय घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण विधेयक, 2002 के भिन्न-भिन्न खंडों पर संसदीय स्थायी समिति द्वारा किए गए विचार-विमर्श पर विचार करने का अवसर नहीं मिला था । यह भी दलील दी गई है कि "विवाह की प्रकृति की नातेदारी" अभिव्यक्ति का सामान्य विधि विवाह से समीकरण करना और ऊपर अपेक्षित चार अपेक्षाएं अनुबद्ध करना विधि की किसी ज्ञात या स्वीकार्य नजीर या स्रोत पर आधारित नहीं है । तदनुसार, यह दलील दी गई है कि "विवाह की प्रकृति की नातेदारी" अभिव्यक्ति की परिधि और उसके विस्तार पर हमारे द्वारा विचार किया जाना है और उक्त प्रश्न को एक बृहत्तर न्यायपीठ को निर्देशित करना हर हालत में न्यायोचित होगा ।

11. प्रत्यर्थी-पति की ओर से विद्वान् काउन्सेल ने अपीलार्थी की ओर से दी गई दलीलों का विरोध करते हुए यह दलील दी है कि घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 2(च) में "विवाह की प्रकृति की नातेदारी" अभिव्यक्ति अंतःस्थापित करने के पीछे उद्देश्य उन महिलाओं को संरक्षण देना है जिन्हें पुरुष द्वारा पति के पूर्व विवाह होने संबंधी तथ्य को छिपाकर विवाह करने के लिए बहकाया गया है । यह अधिनियम एक ऐसा उपयोगी विधान है जो कि उन महिलाओं को भिन्न-भिन्न प्रकार के संरक्षण प्रदान करता है जिनका शोषण किया गया है या जिन्हें विवाह करने के लिए बहकाया गया है । विद्वान् काउन्सेल ने यह इंगित किया है कि तथापि, प्रस्तुत मामले में स्थिति विपरीत है । तारीख 18 अप्रैल, 2003 के विवाह प्रमाणपत्र से यह स्पष्ट होता है कि अपीलार्थी का रोहित कुमार मिश्रा नामक व्यक्ति से पहले विवाह हो चुका था और यह तथ्य उसे ज्ञात था किन्तु प्रत्यर्थी इसे नहीं जानता था । दूसरा विवाह, जो कि शून्य है और द्विविवाही संबंध भी पैदा करता है, अपीलार्थी द्वारा पति की जानकारी के बिना स्वेच्छया किया गया था । अतः, अपीलार्थी घरेलू हिंसा अधिनियम के अधीन किसी भी फायदे की हकदार नहीं थी । वास्तव में, प्रस्तुत मामले में भरणपोषण अनुदत्त करना दोषकर्ता को फायदा और संरक्षण प्रदान करने की कोटि में आएगा जो कि अधिनियम के घोषित उद्देश्य के विरुद्ध होगा । विद्वान् काउन्सेल ने यह दलील भी दी कि अपीलार्थी के आचरण से यह स्पष्ट होता है कि

उसने तात्विक तथ्यों को छिपाते हुए और दोषपूर्वक न्यायालय में समावेदन किया जिससे वह विधि या साम्या की दृष्टि से कोई भी अनुतोष प्राप्त करने से निर्हकित हो जाती है । इस संबंध में हमारे समक्ष **एस. पी. चंगलवराया नायडू** बनाम **जगन्नाथ और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय का विनिश्चय प्रस्तुत किया गया है ।

12. मुकदमा लड़ने वाले पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउन्सेलों द्वारा दी गई दलीलों पर विचार करने के पश्चात् हमारा यह मत है कि उठाए गए सभी प्रश्न, अर्थात्, क्या अपीलार्थी और प्रत्यर्थी तारीख 4 दिसम्बर, 2006 को उनका विवाह होने के पश्चात् किसी साझी गृहस्थी में एक साथ रहे हैं/थे; यदि पक्षकार एक साथ रहे हैं/थे तो क्या इससे घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005 की धारा 2(च) के अर्थान्तर्गत विवाह की प्रकृति की नातेदारी उत्पन्न हो जाती है; क्या **वेलूस्वामी** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय का विनिश्चय "विवाह की प्रकृति की नातेदारी" अभिव्यक्ति के संबंध में कोई प्रामाणिक निर्णय है और यदि ऐसा है तो क्या उसे किसी बृहत्तर न्यायपीठ को निर्दिष्ट करने की आवश्यकता है, असामयिक हो सकते हैं और इस समय उनका उत्तर देने की कोई आवश्यकता नहीं है । इसके विपरीत, प्रथमतः, मामले का अवलोकन नीचे उपदर्शित परिप्रेक्ष्य में किया जा सकता है ।

13. हमारे समक्ष प्रत्यर्थी ने यह दावा किया था (विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के समक्ष) कि उसके और अपीलार्थी के बीच तारीख 4 दिसम्बर, 2006 को हिन्दू विधि के अनुसार धार्मिक कृत्यों द्वारा अनुष्ठापित विवाह अपीलार्थी और रोहित कुमार मिश्रा नामक व्यक्ति के बीच हुए पूर्व विवाह के कारण शून्य हो गया था । प्रत्यर्थी ने इसके समर्थन में विशेष विवाह अधिनियम, 1954 की धारा 13 के अधीन तारीख 18 अप्रैल, 2003 को जारी किए गए विवाह प्रमाणपत्र का अवलंब लिया । विद्वान् विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय ने एकमात्र उपर्युक्त विवाह प्रमाणपत्र के आधार पर कार्यवाही करते हुए पक्षकारों के बीच हुए विवाह की विधिमान्यता का अवधारण करने की कार्यवाही की थी यद्यपि दोनों ही न्यायालय भरणपोषण की कार्यवाही में अपनी अधिकारिता का प्रयोग कर रहे थे । तथापि, आज तक पक्षकारों के बीच हुए विवाह को किसी सक्षम न्यायालय द्वारा बातिल नहीं किया गया है । प्रथमतः इस बात का अवधारण

---

[1] ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 853.

किया जाना है कि उपर्युक्त परिस्थिति का प्रभाव क्या होगा चूंकि यदि पक्षकारों के बीच हुआ विवाह विधि के अधीन अब भी अस्तित्व में है तो अपीलार्थी प्रत्यर्थी की वैध रूप से विवाहित पत्नी बनी रहेगी जिससे कि वह घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005 के अधीन भरणपोषण और अन्य फायदों का दावा करने की हकदार होगी । वास्तव में, ऐसी स्थिति में, न्यायालय को इस प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता नहीं होगी कि क्या पक्षकारों के बीच नातेदारी विवाह की प्रकृति की नातेदारी है अथवा नहीं ।

14. स्वीकृततः, अपीलार्थी और प्रत्यर्थी दोनों हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 के उपबंधों द्वारा शासित होते हैं । हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 11 में यह स्पष्ट किया गया है कि इस अधिनियम के प्रारंभ के पश्चात् अनुष्ठापित कोई भी विवाह, "यदि वह धारा 5 के खंड (i), (iv) और (v) में विनिर्दिष्ट शर्तों में से किसी एक का भी उल्लंघन करता हो तो, अकृत और शून्य होगा और विवाह के किसी पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार के विरुद्ध उपस्थापित अर्जी पर अकृतता की डिक्री द्वारा ऐसा घोषित किया जा सकेगा" ।

15. इस न्यायालय ने **यमुनाबाई** बनाम **अनंतराव**[1] वाले मामले में हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 11 के उपबंधों पर विचार करते समय यह मत अपनाया है कि धारा 11 के अंतर्गत आने वाला विवाह विधितः शून्य है, अर्थात् आरंभ से ही शून्य है । ऐसे विवाह को इस प्रकार अनदेखा कर देना चाहिए जैसे कि वह विधि की दृष्टि से बिल्कुल भी अस्तित्व में नहीं है । इस न्यायालय द्वारा आगे यह अभिनिर्धारित किया गया था कि ऐसे विवाह की अकृतता की औपचारिक घोषणा करना कोई आज्ञापक अपेक्षा नहीं है हालांकि विवाह के दोनों पक्षकारों के पास ऐसा विकल्प उपलब्ध होता है ।

तथापि, यह अवेक्षा की जानी चाहिए कि **यमुनाबाई** (उपर्युक्त) वाले मामले में पक्षकारों के बीच न तो प्रथम विवाह के अस्तित्व में होने और न ही उसकी विधिमान्यता के संबंध में कोई विवाद था जिसके आधार पर दूसरे विवाह को विधितः शून्य ठहराया गया था ।

16. इस न्यायालय द्वारा **एम. एम. मल्होत्रा** बनाम **भारत संघ**[2] वाले पश्चात्वर्ती विनिश्चय में इसी प्रकार का मत अपनाया गया था जिसमें

---

[1] ए. आई. आर. 1988 एस. सी. 645.

[2] (2005) 8 एस. सी. सी. 351.

यमुनाबाई (उपर्युक्त) वाले मामले में अभिव्यक्त मत की भी अवेक्षा की गई थी और उसे दोहराया गया था ।

17. तथापि, उन तथ्यों का कुछ विस्तार से उल्लेख करना आवश्यक होगा जिनके आधार पर **एम. एम. मल्होत्रा** (उपर्युक्त) वाला विनिश्चय किया गया था ।

अपीलार्थी एम. एम. मल्होत्रा के विरुद्ध अन्य बातों के साथ-साथ विभागीय कार्यवाही में बहुल विवाह करने का आरोप लगाया गया था । जारी किए गए आरोप पत्र के उत्तर में यह इंगित किया गया था कि बहुल विवाह का अभिकथन बिल्कुल भी मान्य नहीं है चूंकि अपीलार्थी (एम. एम. मल्होत्रा) द्वारा इस घोषणा के लिए कि प्रत्यर्थी (पत्नी) डी. जे. बसु नामक व्यक्ति से अपने पूर्व विवाह के कारण उसकी पत्नी नहीं थी, फाइल किए गए वाद में उक्त तथ्य, अर्थात् पूर्व विवाह को पत्नी द्वारा स्वीकार किया गया था जिसके परिणामस्वरूप पक्षकारों के बीच विवाह के अविधिमान्य होने की घोषणा की गई थी । अतः, पुनः **एम. एम. मल्होत्रा** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय की राय ऐसी स्थिति में दी गई थी जहां कि पति-पत्नी में से किसी एक के पूर्व विवाह होने संबंधी तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं था ।

18. तथापि, प्रस्तुत मामले में अपीलार्थी ने अपने अभिवचनों में स्पष्टतः, सुनिश्चित और संगत रूप से इस बात से इनकार किया था कि उसका रोहित कुमार मिश्रा नामक किसी व्यक्ति से विवाह हुआ था । अपीलार्थी द्वारा तारीख 18 अप्रैल, 2003 के विवाह प्रमाणपत्र की विधिसम्मतता, प्रामाणिकता और वास्तविकता को भी प्रश्नगत किया गया है । यद्यपि पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 11 शून्य विवाह के किसी भी पक्षकार को ऐसे विवाह को अविधिमान्य/अकृत करने की घोषणा की ईप्सा करने का विकल्प प्रदान करती है तथापि, ऐसे विकल्प का प्रयोग करने के बारे में यह नहीं समझा जा सकता है कि वह सभी स्थितियों में स्वेच्छया है । ऐसी स्थितियां उद्भूत हो सकती हैं जब सामान्य नियम से विचलन करते हुए किसी ऐसे विवाह की अकृतता की घोषणा करने के संबंध में न्यायालय का सहारा लेने पर जोर दिया जा सकता है जिसमें पति-पत्नी में से एक द्वारा विवाह के शून्य होने का दावा किया गया है । हमारी राय में, **यमुनाबाई** (उपर्युक्त) और **एम. एम. मल्होत्रा** (उपर्युक्त) वाले मामलों में

इस न्यायालय के विनिश्चय का यही सही विनिश्चयाधार है । इस संबंध में, हम **ए. सुभाष बाबू** बनाम **आन्ध्र प्रदेश राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए हाल ही के विनिश्चय का उल्लेख कर सकते हैं जिसमें इस प्रश्न पर कार्यवाही करते समय कि क्या पति के प्रथम विवाह की विधिमान्यता के दौरान किए गए दूसरे विवाह की पत्नी, पति द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 494 और 495 के अधीन अपराध कारित करने का अभिकथन करने वाले परिवाद को कायम रखने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 198(1)(ग) के अधीन "व्यथित व्यक्ति" होगी । नीचे उद्धृत लेखांश इस मुद्दे पर प्रभावी रूप से प्रकाश डालता है :–

> "यद्यपि विधि में विनिर्दिष्ट रूप से किसी भी पक्षकार पर विवाह की अकृतता की घोषणा की ईप्सा करने की बाध्यता अधिरोपित नहीं की गई है और पक्षकार न्यायालय का सहारा लिए बिना विवाह को अकृत मानने के लिए स्वतंत्र होंगे, तथापि, ऐसा मार्ग न तो विवेकपूर्ण है और न ही आशयित है और पूर्वावधानी और/या अभिलेख के प्रयोजनार्थ हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 11 के निबंधनानुसार घोषणा की मांग की जाएगी । अतः, जब तक हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 11 के अधीन अनुध्यात घोषणा किसी सक्षम न्यायालय द्वारा नहीं कर दी जाती तब तक वह महिला जिसके साथ दूसरा विवाह अनुष्ठापित किया जाता है, भारतीय दंड संहिता की धारा 494 के अर्थान्तर्गत पत्नी बनी रहती है और वह अपने पति के विरुद्ध परिवाद फाइल करने की हकदार होगी ।"

19. प्रस्तुत मामले में, यदि प्रत्यर्थी के अनुसार उसके और अपीलार्थी के बीच विवाह अपीलार्थी और रोहित कुमार मिश्रा के बीच पूर्व विवाह के कारण शून्य हो गया था तो अपीलार्थी द्वारा उपर्युक्त मुद्दे पर उठाए गए अत्यंत विवादास्पद प्रश्नों को ध्यान में रखते हुए प्रत्यर्थी को सक्षम न्यायालय से आवश्यक घोषणा प्राप्त करनी चाहिए थी । सक्षम न्यायालय द्वारा पक्षकारों के बीच विवाह की अकृतता या बातिलीकरण की घोषणा के पश्चात् ही इस प्रश्न पर विचार करना न्यायोचित होगा कि क्या पक्षकार "विवाह की प्रकृति की नातेदारी" में एक साथ रहे थे । अकृतता की किसी

---

[1] (2011) 7 एस. सी. सी. 616.

विधिमान्य डिक्री या आवश्यक घोषणा के अभाव में न्यायालय को इस आधार पर कार्यवाही करनी होगी कि पक्षकारों के बीच नातेदारी विवाह की है न कि विवाह की प्रकृति की । हम इस बात पर भी जोर देना चाहेंगे कि पक्षकारों के बीच विवाह की विधिमान्यता का कोई भी निर्धारण पक्षकारों द्वारा और उनके बीच किसी समुचित कार्यवाही में किसी सक्षम न्यायालय द्वारा विधि की अन्य सभी अपेक्षाओं का अनुपालन करते हुए किया जा सकता था । अपीलार्थी और रोहित कुमार मिश्रा के दावाकृत पहले विवाह के समर्थन में विशेष विवाह अधिनियम, 1954 की धारा 13 के अधीन जारी किया गया विवाह प्रमाणपत्र प्रस्तुत करना मात्र किसी भी न्यायालय के लिए, जिसमें उच्च न्यायालय भी है, पक्षकारों की वैवाहिक स्थिति के संबंध में और वह भी भरणपोषण के लिए की गई किसी सांपार्श्विक कार्यवाही में संपूर्ण और प्रभावी विनिश्चय करने के लिए पर्याप्त नहीं था । परिणामस्वरूप, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि प्रस्तुत मामले में जब तक अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच विवाह का अविधिमान्यकरण किसी सक्षम न्यायालय द्वारा नहीं हो जाता है तब तक इस आधार पर कार्यवाही करना ही सही होगा कि अपीलार्थी प्रत्यर्थी की पत्नी बनी हुई है जिससे कि वह घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005 के अधीन उपलब्ध सभी फायदों और संरक्षण का दावा करने की हकदार है ।

20. हमारे उपर्युक्त निष्कर्ष के कारण उठाए गए किसी भी अन्य विवाद्यक पर विचार करना पूर्णतः अनावश्यक और अव्यावहारिक हो जाएगा । ऐसी कार्यवाही से निश्चित रूप से बचना चाहिए ।

21. तदनुसार, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि उच्च न्यायालय द्वारा अपीलार्थी के पक्ष में किए गए भरणपोषण के अनुदान में किया गया हस्तक्षेप बिल्कुल भी न्यायोचित नहीं था । तदनुसार, उच्च न्यायालय द्वारा पारित तारीख 9 अप्रैल, 2010 का आदेश अपास्त किया जाता है और प्रस्तुत अपीलें मंजूर की जाती हैं ।

अपीलें मंजूर की गईं ।

ग्रो.

[2013] 4 उम. नि. प. 142

बुधी सिंह

बनाम

हिमाचल प्रदेश राज्य

13 दिसंबर, 2012

न्यायमूर्ति स्वतंत्र कुमार और न्यायमूर्ति मदन बी. लोकुर

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 और धारा 304 भाग-I – हत्या और हत्या की कोटि में न आने वाला मानववध – अचानक और गंभीर प्रकोपन – आत्म संयम खो बैठना – दुर्भावना का न होना – पूर्व-चिन्तन और हत्या के आशय के बिना अचानक और गंभीर प्रकोपन के परिणामस्वरूप मृत्यु होना – अपराधी हत्या के बजाय हत्या की कोटि में न आने वाले मानववध का दोषी होगा ।

इस मामले में गंगा राम और बुधी सिंह बाला राम के पुत्र हैं । गंगा राम दो अवयस्क पुत्रों अर्थात् रामनाथ, आयु 11 वर्ष और मोहन लाल के साथ ग्राम चौकी, जिला कुल्लू में स्थित बाला राम के मकान में रहता था । बुधी सिंह इसी भवन के एक अलग कमरे में अपने माता-पिता के साथ रहता था । गंगा राम विवाहित है किंतु उसकी पत्नी श्रीमती इंद्रा देवी उसे छोड़कर चली गई है और वह दोलू राम नामक व्यक्ति के साथ उसकी पत्नी के रूप में रहती है । बाला राम की परीक्षा प्रतिरक्षा साक्षी के रूप में कराई गई है, अपने मकाने के साथ लगे खेत में भेड़-बकरियां चरा रहा था । गंगा राम शराब के नशे में घर पर आया । जैसे ही उसने घर में प्रवेश किया, वह मकान की छत पर पत्थर फेंकने लगा और अपने पिता को गालियां देने लगा । गंगा राम और उसके पिता के बीच झगड़ा हो गया । पिता और पुत्र की लड़ाई के दौरान बाला राम ने गंगा राम पर डंडे से वार किया । इसके पश्चात् वह मदद के लिए चिल्लाया और उसने अपने पुत्र बुधी सिंह, जो मकान के अंदर था, को बुलाया । अपने पिता की चीख-पुकार सुनकर बुधी सिंह घटनास्थल पर अपने हाथ में तोबडू (छोटी कुल्हाड़ी) लेकर आया । बुधी सिंह ने गंगा राम के सिर पर कुल्हाड़ी से वार किया जिसके परिणामस्वरूप उसके सिर में क्षतियां कारित हुईं और वह खेत में गिर गया । जब अन्वेषक अधिकारी घटनास्थल पर पहुंचा, बाला राम ने उसे बताया कि उसने डंडे से वार करके गंगा राम की हत्या की है । अभियुक्त को गिरफ्तार किया गया, उसका विचारण किया गया और

विचारण न्यायालय ने अभियुक्त बुधी सिंह को भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 302 के अधीन अपराध कारित करने के लिए दोषसिद्ध किया है । विचारण न्यायालय के इस निर्णय के विरुद्ध अभियुक्त द्वारा अपील की गई । वह अपील उच्च न्यायालय के निर्णय द्वारा खारिज कर दी गई जिसके द्वारा विचारण न्यायालय के उस निर्णय की पुष्टि की गई थी जिसके कारण विशेष इजाजत लेकर वर्तमान अपील फाइल की गई है । अपील का निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय ने यह विचार किया कि दंड संहिता की धारा 299 के अंतर्गत आपराधिक मानववध परिभाषित किया गया है । धारा 299 के अंतर्गत ऐसे मामले आते हैं जिनमें मृत्यु कारित करने के आशय से और या ऐसी शारीरिक क्षति कारित करने के आशय से जिससे मृत्यु कारित हो जाना संभव हो, या यह ज्ञान रखते हुए कि यह संभाव्य है कि वह उस कार्य से अन्य व्यक्ति की मृत्यु कारित कर दे । इन सभी स्थितियों में ऐसा कार्य आपराधिक मानववध की कोटि में आएगा । आपराधिक मानववध हत्या कहलाएगा जबतक कि वह दंड संहिता की धारा 300 के किसी भी साधारण अपवाद के अंतर्गत न आए जिससे अपराध धारा 300 की परिधि से बाहर रहेगा और हत्या की कोटि में न आने वाला मानववध कहलाएगा । जब एक बार ऐसा कार्य इन मामलों की कोटि में आ जाता है, तब न्यायालय के लिए दंड संहिता की धारा 304 भाग-I या भाग-II, जैसी भी स्थिति हो, के निबंधनों में न्यून दंड अधिरोपित करने के लिए अनुज्ञात होगा । एक ओर धारा 302 के अधीन दंड और दूसरी ओर धारा 304 के अधीन दंड के बीच स्पष्ट विभाजन किया गया है कि कब मानववध "हत्या" कहलाएगा और कब नहीं कहलाएगा । धारा 304 के उपबंध स्वयं में धारा 302 के लागू किए जाने के संबंध में एक प्रकार का अपवाद है, दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि धारा 304 भाग-II के उपबंध तभी लागू होंगे जब कार्य हत्या नहीं है । इन अपराधों के बीच मूल अंतर पर विचार करने के पश्चात्, न्यायालय ने इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या गंभीर और अचानक प्रकोपन किया गया था जिसके आधार पर अपीलार्थी का मामला दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद I की परिधि के भीतर आ सके । मृतक और अभियुक्त सगे भाई थे । पक्षकारों के बीच कोई भी पुरानी दुश्मनी नहीं थी । यह उल्लेख किया गया है कि मृतक शराब पीकर घर आया करता था और झगड़ा किया करता था । घटना के दिन भी वह शराब पीकर आया था, और उसने अपने पिता को गालियां दीं और उन पर हमला भी किया । इसके जवाब में उसके पिता ने अभियुक्त को डंडा मारा

और उसने अपने दूसरे पुत्र को मदद के लिए पुकारा । यह देखकर कि उसके पिता को गालियां दी जा रही हैं, हमला किया जा रहा है और मृतक दुर्व्यवहार कर रहा है वह भी नशे की हालत में, अभियुक्त ने मृतक पर हमला किया । क्रोध के उसी क्षण, वह तोबड़ू जो आम तौर पर पहाड़ी क्षेत्र में घरों में प्रयोग की जाती है, लेकर घर से बाहर आया और मृतक के सिर पर मारी । यह अचानक मृतक को कुंद सिरे के बजाय धार की ओर से लगी । क्षति इतनी गंभीर थी कि उससे करोटि में अस्थिभंग हो गया और मृतक जमीन पर गिर गया । संपूर्ण अभियोजन साक्ष्य से यह निष्कर्ष निकालना अत्यंत कठिन होगा कि अभियुक्त का आशय अपने भाई की हत्या करना था और वह उसकी हत्या करने के आशय से घर से निकलकर बाहर आया था । कारित की गई क्षति हथियार की चोट का परिणाम थी न कि प्रयोग किए गए बल का । यदि अत्यधिक बल का प्रयोग किया जाता तो करोटि के दो भाग हो जाते । गंभीर और अचानक प्रकोपन के सिद्धांत की ऐसी रचना की जा सकती है जिसका सार्वभौमिक प्रयोग किया जा सके । यह सदैव दिए गए मामलों के तथ्यों पर आधारित होगा । इस सिद्धांत को लागू करते समय न्यायालय का यह प्राथमिक कर्तव्य है कि वह युक्तियुक्त प्रज्ञा वाले व्यक्ति के दृष्टिकोण से विचार करे । यदि ऐसा गंभीर और अचानक प्रकोपन है जिससे युक्तियुक्त रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि तथ्यों के आधार पर आपराधिक मानववध का अपराध कारित किया जाना संभव हो और इस मामले के तथ्यों के आधार पर हत्या की कोटि में आने वाला मानववध नहीं है । गंभीर और अचानक प्रकोपन के परिणामस्वरूप किए जाने वाले अपराध का सामान्य रूप से यह अर्थ है कि ऐसी परिस्थितियों में कोई व्यक्ति आत्मसंयम खो सकता है किन्तु अस्थाई रूप से और वह भी 'प्रकोपन' के समीप्य । प्रकोपन अभियुक्त पर मृतक द्वारा किया गया कोई कार्य या कार्यों की श्रृंखला हो सकता है जिसके परिणामस्वरूप मृतक को क्षति कारित होती है । एक अन्य कसौटी, जिसका प्रायः प्रयोग किया जाता है वह यह है कि हमलावर का व्यवहार युक्तियुक्त व्यक्ति के व्यवहार जैसा होना चाहिए । अचानक और गंभीर प्रकोन के परिणामस्वरूप अचानक अस्थाई रूप से आत्मसंयम के खो देने और वास्तव में हत्या का आशय करने के बीच स्पष्ट अंतर को समझना चाहिए । मन की ऐसी दशा बने रहने के दौरान उसी समय हत्या का अपराध किया जाना चाहिए और अभियुक्त के मन पर उस दशा का अधिपत्य बना होना चाहिए । जब एक बार पूर्व-चिंतित कार्य हत्या के आशय से किया जाता है, तब ऐसा कार्य हत्या की कोटि में न आने वाले मानववध की परिधि के परे

होगा । जब न्यायालय ने वर्तमान मामले के तथ्यों पर विचार किया तब यह स्पष्ट हो जाता है, जैसा कि पहले ही विचार किया गया है, तोबडू (छोटी कुल्हाड़ी) पहाड़ी इलाकों में आम तौर पर घरों में पाई जाती हैं जिसका प्रयोग ईंधन काटकर इकट्ठा करने में किया जाता है । यह भी सामान्य ज्ञान की बात है कि 12 वर्ष पूर्व भीतरी पहाड़ी इलाकों में गैस की सुविधा उपलब्ध नहीं थी । प्रकोपन अचानक किया गया था और स्पष्ट रूप से वह गंभीर प्रकृति का था । अभियोजन पक्ष का स्वयं यह पक्षकथन है कि मृतक गालियां दे रहा था और अपने पिता पर हमला भी कर रहा था और पिता मदद के लिए चिल्लाया था और उसने अभियुक्त को पुकारा था जो उस समय घर में पहले से मौजूद था । मृतक नशे की हालत में था । जैसा कि यह प्रतीत होता है कि तोबडू आम तौर पर उपलब्ध हो जाती है जिसे अभियुक्त ले आया था और वह सीधे लड़ने चला गया और अपने भाई (मृतक) पर हमला किया । क्षतियां घातक साबित की गई हैं । ऐसा कोई भी अभियोजन साक्ष्य नहीं है जिससे यह दर्शित होता हो कि मृतक और अभियुक्त के बीच शत्रुता थी या हत्या करने का कोई हेतु था और अभियुक्त का हत्या करने का हेतु तो बिल्कुल ही नहीं था । वे इस मकान में कई वर्षों से रह रहे थे । भूतकाल में ऐसी कोई भी अप्रिय घटना या लड़ाई-झगड़ा नहीं हुआ था जिसकी रिपोर्ट पुलिस में कराई गई हो । यदि पक्षकारों की परस्पर नातेदारी और मृतक के नशे की हालत में होने और अपने पिता को गालियां देने और उस पर हमला किए जाने के तथ्य को ध्यान में रखते हुए अभियोजन साक्ष्य के संचयी प्रभाव पर विचार किया जाए तो युक्तियुक्त रूप से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अभियुक्त को अचानक और गंभीर प्रकोपन का सामना करना पड़ा । हमारे समाज में, एक पुत्र आम तौर पर यह सहन नहीं करेगा कि उसके पिता का अपमान किया जाए और हमला किए जाने को तो बिल्कुल ही सहन नहीं करेगा । निस्संदेह, अपराध में इस ज्ञान के साथ हथियार का प्रयोग किया गया था कि इससे गंभीर क्षति कारित हो सकती है जो प्राण घातक हो सकती है यहां तक कि उससे मृतक की मृत्यु भी हो सकती है किन्तु, जैसा कि ऊपर उपदर्शित किया गया है, ऐसा हथियार मकानों में असानी से उपलब्ध है । हत्या करने का 'पूर्व-चिन्तन' और 'आशय' परिस्थितियों में की दो महत्वपूर्ण परिस्थितियां हैं जिन पर न्यायालय द्वारा, अभियुक्त को दंड संहिता की धारा 302 या 304 के अधीन अपराध का दोषी ठहराने के पूर्व, विचार किया जाना चाहिए । न्यायालय ने यह दोहराया कि हमने यह देखा है कि अभियोजन साक्ष्य से यह सिद्ध नहीं हुआ है कि अभियुक्त का आशय

मृतक की हत्या करने का था या यह अपराध पूर्व-चिंतन करके किया गया है । राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि इस तथ्य से कि अभियुक्त तोबडू लेकर आया था, हत्या करने का आशय पूर्णतया सिद्ध हो जाता है और इस प्रकार यह अपराध दंड संहिता की धारा 302 के अधीन आएगा । इस पर विवाद नहीं किया जा सकता है कि अभियुक्त तोबडू लेकर आया था, किन्तु साथ ही यह भी स्पष्ट हो गया है कि पहाड़ी क्षेत्र में यह आसानी से उपलब्ध हो जाने वाला हथियार है और वहां के लोगों द्वारा इसका निरन्तर प्रयोग किया जाता है । इस तथ्य के अतिरिक्त शत्रुता, पूर्व-चिन्तन या हत्या करने के आशय का कोई भी साक्ष्य नहीं है अभियुक्त ने मृतक के सिर पर तोबडू से वार तो किया था जो प्राण घातक साबित हुआ । यह गंभीर और अचानक प्रकोपन का कारण था जिसमें मृतक और अभियुक्त दोनों के पिता को मृतक द्वारा गालियां दी जा रही थीं, हमला किया जा रहा था और दुर्व्यवहार किया जा रहा था और मृतक नशे की हालत में भी था । इस प्रकार, वर्तमान मामले के तथ्यों के आधार पर, अचानक और गंभीर प्रकोपन घटित हुआ था जिस कारण यह अपराध दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद की परिधि के भीतर आता है और इस प्रकार दंड संहिता की धारा 304 भाग-I के अधीन आएगा क्योंकि अभियुक्त ने मृतक को ऐसी शारीरिक क्षति कारित की है जिससे उसके ज्ञानानुसार मृत्यु कारित हो सकती है क्योंकि उसने मृतक के सिर पर क्षति कारित की है । (पैरा 10, 12, 13, 14, 19 और 20)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2012]	(2012) 8 एस. सी. सी. 289 : **राम पाल सिंह** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ;	18
[2011]	(2011) 2 एस. सी. सी. 123 : **मंगेश** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	4,17
[2005]	(2005) 9 एस. सी. सी. 650 : **तंगइया** बनाम **तमिलनाडु राज्य** ;	11
[1996]	(1996) 11 एस. सी. सी. 641 : **देवकू भीखा** बनाम **गुजरात राज्य** ;	4,16
[1996]	(1996) 7 एस. सी. सी. 115 : **बोंडा देवेसू** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** ;	4,16

[1976] (1976) 4 एस. सी. सी. 382 :
आंध्र प्रदेश राज्य बनाम **रायावरापु पुन्नैया और एक अन्य** ; 4,10

[1962] ए. आई. आर. 1962 एस. सी. 605 :
के. एम. नानावती बनाम **महाराष्ट्र राज्य** । 15

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2009 की दांडिक अपील सं. 1801.

हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय, शिमला के तारीख 23 अगस्त, 2004 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री बृजेन्दर चाहर (वरिष्ठ अधिवक्ता), के. आर. आनंद और राजीव मेहता

प्रत्यर्थी की ओर से श्री हिमिन्दर लाल

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति स्वतंत्र कुमार ने दिया ।

न्या. कुमार – वर्तमान अपील तारीख 23 अगस्त, 2004 के उस निर्णय के विरुद्ध की गई है जिसके द्वारा अभियुक्त की ओर से दोषसिद्धि और आजीवन कारावास के दंडादेश के विरुद्ध फाइल की गई अपील खारिज की गई है और हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय, शिमला द्वारा उसकी पुष्टि की गई है । वर्तमान अपील के तथ्यों पर संक्षेप में विचार करना उचित होगा । गंगा राम और बुधी सिंह बाला राम के पुत्र हैं । गंगा राम दो अवयस्क पुत्रों अर्थात् रामनाथ, आयु 11 वर्ष और मोहन लाल के साथ ग्राम चौकी, जिला कुल्लू में स्थित बाला राम के मकान में रहता था । बुधी सिंह इसी भवन के एक अलग कमरे में अपने माता-पिता के साथ रहता था । गंगा राम विवाहित है किंतु उसकी पत्नी श्रीमती इंद्रा देवी उसे छोड़कर चली गई है और वह दोलू राम नामक व्यक्ति के साथ उसकी पत्नी के रूप में रहती है ।

2. तारीख 9 नवंबर, 2000 को बाला राम जिसकी परीक्षा प्रतिरक्षा साक्षी 1 के रूप में कराई गई है, अपने मकान के साथ लगे खेत में भेड़-बकरियां चरा रहा था । राम नाथ, जिसकी परीक्षा अभि. सा. 9 के रूप में की गई है, मकान के आंगन में कपड़े धो रहा था । लगभग 4.00 बजे अपराह्न में गंगा राम शराब के नशे में घर पर आया । जैसे ही उसने घर में प्रवेश किया, वह मकान की छत पर पत्थर फेंकने लगा और अपने पिता

प्रतिरक्षा साक्षी 1 को गालियां देने लगा । गंगा राम और उसके पिता के बीच झगड़ा हो गया । पिता और पुत्र की लड़ाई के दौरान, प्रतिरक्षा साक्षी 1 ने गंगा राम पर डंडे से वार किया । इसके पश्चात् वह मदद के लिए चिल्लाया और उसने अपने पुत्र बुधी सिंह, जो मकान के अंदर था, को बुलाया । अपने पिता की चीख-पुकार सुनकर बुधी सिंह घटनास्थल पर अपने हाथ में तोबडू (छोटी कुल्हाड़ी) लेकर आया । बुधी सिंह ने गंगा राम के सिर पर कुल्हाड़ी से वार किया जिसके परिणामस्वरूप उसके सिर में क्षतियां कारित हुईं और वह खेत में गिर गया ।

गंगा राम के घावों से बुरी तरह रक्त बह रहा था । अभियुक्त बुधी सिंह और उसका पिता (प्रतिरक्षा साक्षी 1) खेत में गंगा राम को क्षतिग्रस्त अवस्था में छोड़कर अपने घर चले गए । थोड़ी देर बाद वे खेत पर वापस आए और गंगा राम को मकान के बरामदे में ले आए, किंतु उस समय तक गंगा राम को पहुंचाई गई क्षतियों के कारण उसकी मृत्यु हो चुकी थी । यह घटना लगभग 4.00 बजे अपराह्न में घटित हुई थी । थोड़े समय पश्चात्, मृतक का पुत्र (अभि. सा. 9) निकट ही स्थित सूरत राम (अभि. सा. 1) के मकान पर गया और उसने अपने चाचा बुधी सिंह द्वारा अपने पिता की हत्या की घटना का वर्णन किया । अभि. सा. 1 और ग्राम के अन्य निवासी बाला राम के मकान में इकट्ठा हो गए और उन्होंने मृतक के शव को वहां पड़ा हुआ देखा । रात्रि में बाला राम के मकान पर आए व्यक्तियों में से कुछ व्यक्तियों ने जिला परिषद् के सदस्य खीमी राम को भी सूचित किया और खीमी राम की परीक्षा अभि. सा. 2 के रूप में की गई है ।

इस साक्षी ने टेलीफोन द्वारा गंगा राम की हत्या की सूचना भुंटेर पुलिस चौकी को दी । यह सूचना पुलिस हेड कांस्टेबल, रामस्वरूप (अभि. सा. 6) द्वारा भुंटेर पुलिस चौकी के रोजनामचे में अभिलिखित की गई जो प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 6/ए है । अभि. सा. 6 ने पुलिस थाना कुल्लू के थानाध्यक्ष रोशन लाल को भी घटना के संबंध में सूचना दी । अभि. सा. 6 से निदेश प्राप्त किए जाने पर इस मामले का अन्वेषण आरंभ किया गया और पुलिस अधिकारियों को घटनास्थल पर तैनात किया गया । जब अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 10) घटनास्थल पर पहुंचा, प्रतिरक्षा साक्षी 1 ने उसे बताया कि उसने डंडे से वार करके गंगा राम की हत्या की है यद्यपि अभि. सा. 9 अर्थात् मृतक के अवयस्क पुत्र ने अभि. सा. 10 को यह बताया है कि उसके पिता गंगा राम की हत्या कुल्हाड़ी से वार करके अभियुक्त ने की है । अभि. सा. 10 ने अभि. सा. 9 का कथन दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (जिसे संक्षेप में 'संहिता' कहा गया है) की धारा 154 के अधीन अभिलिखित किया जो

प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 9/ए है और इसे पुलिस थाने भेजा गया ।

इसके आधार पर तारीख 10 नवंबर, 2000 को लगभग 2.45 बजे पूर्वाह्न में मुहर्रिर हेड कांस्टेबल भगत राम (अभि. सा. 7) ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 7/बी) अभिलिखित की । अभि. सा. 10 ने घटनास्थल का मुआयना किया और उसने घटनास्थल से रक्तरंजित मिट्टी और मृतक के बालों का गुच्छा प्राप्त किया जिसके संबंध में अभि. सा. 1 की मौजूदगी में (प्रदर्श पी. बी.) तैयार किया गया । अभि. सा. 10 ने मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट (प्रदर्श पी. ए.) तैयार की और गंगा राम के शव के फोटो खींचे । इसके पश्चात् गंगा राम का शव शवपरीक्षण के लिए जिला अस्पताल भेजा गया । शव का शवपरीक्षण डा. भूपेन्दर चौहान (अभि. सा. 5) द्वारा किया गया और उन्होंने शवपरीक्षण रिपोर्ट प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 5/ए तैयार की । शवपरीक्षण रिपोर्ट के अनुसार, मृतक के शव पर पाई गईं क्षतियां और अभि. सा. 5 द्वारा बताया गया मृत्यु का कारण इस प्रकार है :– प्रथम घाव तेजधार वाले हथियार से कारित किया गया है जो दाएं कान की तुंगिका से लेकर फ्रंट कपालीय अस्थि के जोड़ से होता हुआ सिर के मध्य तक फैला हुआ है । आंतरिक अस्थि भी कटी हुई है । घाव की लंबाई 17 सें.मी. है और मस्तिष्क भी दिखाई दे रहा है । द्वितीय घाव के किनारे भी धारदार हैं जो कपाल के दाईं ओर 4 सें.मी. लंबा है । आंतरिक अस्थि भी कटी हुई है और मस्तिष्क दिखाई दे रहा है । शरीर का शेष भाग सामान्य है । मृत्यु का संभावित कारण सिर में आई क्षति है जिसके परिणामस्वरूप श्वासावरोध होकर मृत्यु हुई है ।

3. अभियुक्त को गिरफ्तार किया गया, उसका विचारण किया गया और तारीख 1 जनवरी, 2002 के निर्णय द्वारा विचारण न्यायालय ने अभियुक्त बुधी सिंह को भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 302 के अधीन अपराध कारित करने के लिए दोषसिद्ध किया है और गुणागुणों के आधार पर निकाले गए निष्कर्षों के रूप में दंडादेश पारित किया गया है जिसके अनुसार 2,000/- रुपए के जुर्माने के साथ आजीवन कारावास अधिनिर्णीत किया गया है । जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम किए जाने पर अभियुक्त को अतिरिक्त छह मास का कारावास भोगने का निदेश दिया गया है । विचारण न्यायालय के इस निर्णय के विरुद्ध अभियुक्त द्वारा अपील की गई जैसाकि पहले ही कहा गया है । वह अपील उच्च न्यायालय के तारीख 23 अगस्त, 2004 के उस निर्णय द्वारा खारिज कर दी गई जिसके द्वारा विचारण न्यायालय के उस निर्णय की पुष्टि की गई थी जिसके कारण विशेष इजाजत लेकर वर्तमान

अपील फाइल की गई है ।

4. अभियुक्त की ओर से हाजिर होने वाले काउंसेल ने गुणागुणों के आधार पर अभियुक्त की दोषसिद्धि को चुनौती नहीं दी है, किंतु उन्होंने यह दलील दी है कि यदि यह तर्क भी दिया जाए कि अभियोजन पक्ष अपना पक्षकथन संदेह के परे सिद्ध करने में सफल रहा है तब भी अभियोजन साक्ष्य के आधार पर दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध नहीं बनता है और अभियुक्त को बहुत से बहुत दंड संहिता की धारा 304 भाग-II के अधीन अपराध के लिए ही दंडित किया जा सकता है । दलील यह दी गई है कि मृतक की हत्या करने का अभियुक्त का कोई भी आशय नहीं था । यह हत्या पूर्व-चिंतन के पश्चात् नहीं की गई है । यह घटना क्षण भर में घटित हुई है और मृतक द्वारा अचानक और गंभीर प्रकोपन किया गया था जिसके परिणामस्वरूप मृतक के शरीर पर क्षतियां आईं । अतः, यह मामला दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद I के अंतर्गत आएगा और चूंकि हत्या करने का कोई भी आशय नहीं था इसलिए यह मामला दंड संहिता की धारा 304 के भाग-II के अधीन हत्या की कोटि में न आने वाले मानववध है । अपनी दलील के समर्थन में काउंसेल ने **आंध्र प्रदेश राज्य** बनाम **रायावरापु पुन्नैया और एक अन्य**[1], **मंगेश** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[2], **देवकू भीखा** बनाम **गुजरात राज्य**[3] और **बोंडा देवेसू** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य**[4] वाले मामलों का अवलंब लिया है ।

5. अपीलार्थी की दलील का खंडन करते समय राज्य की ओर से यह दलील दी गई है कि मृतक की हत्या करने के संबंध में अभियुक्त का स्पष्ट आशय था । अभियुक्त ने छोटी कुल्हाड़ी से मृतक के सिर पर दो क्षतियां कारित की हैं, इस प्रकार अभियोजन साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि अभियुक्त ने मृतक के नाजुक अंग पर क्षतियां पहुंचाई हैं और वह भी तेजधार वाले हथियार से जिससे मृत्यु होना स्वाभाविक है, अतः अभियुक्त को हत्या की कोटि में आने वाले मानववध कारित किए जाने की जिम्मेदारी और परिणामों से नहीं बचाया जा सकता ।

6. मामले की गुणता पर विचार करने के लिए या अन्यथा न्यायालय के समक्ष दी गई मात्र इस दलील पर विचार करने के लिए हम अभिलेख

---

[1] (1976) 4 एस. सी. सी. 382.
[2] (2011) 2 एस. सी. सी. 123.
[3] (1996) 11 एस. सी. सी. 641.
[4] (1996) 7 एस. सी. सी. 115.

पर प्रस्तुत साक्ष्य पर विचार करेंगे । जैसाकि पहले ही देखा गया है, घटना और अभियुक्त द्वारा कारित की गई क्षतियों के परिणामस्वरूप मृतक की मृत्यु के संबंध में कोई भी विवाद नहीं है । इस न्यायालय द्वारा कुल मिलाकर इस बात पर विचार किया जाना चाहिए कि क्या यह अपराध दंड संहिता की धारा 302 या धारा 304 भाग-II की परिधि में आता है या नहीं । इसके आधार पर, हम सीमित दृष्टिकोण से साक्ष्य को निर्दिष्ट करेंगे ।

7. प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 7/बी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट है जो प्रश्नगत घटना के संबंध में अभिलिखित की गई है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के अनुसार, जो अभि. सा. 9 के कथन के आधार पर अभिलिखित की गई है, मृतक शराब पीकर बाहर की ओर से आया था । उसने पत्थर फेंके और वह बाला राम को गालियां देने लगा जो उससे दस कदम की दूरी पर खेत में था और मवेशियों को चरा रहा था । बाला राम ने मृतक को यह बताया था कि वह चोर है और वह उसका धन चोरी किया करता था । इसके पश्चात् वे एक दूसरे के साथ झगड़ा करने लगे । इसके पश्चात् मृतक उसकी पिटाई करने लगा जिस पर बाला राम ने अपने पुत्र बुधी सिंह को पुकारा । इस पर बुधी सिंह आया जिसके हाथ में छोटी कुल्हाड़ी थी और उसने इसे मृतक के सिर पर मारी जिससे मृतक के सिर से रक्त बहने लगा । अभि. सा. 9 ने न्यायालय में परीक्षा के दौरान यही बात बताई और उसने यह भी बताया कि बाला राम ने मृतक से उस धन की भी मांग की थी जो उसने बाला राम से पहले कभी लिया था । क्षति कारित किए जाने के संबंध में, अभि. सा. 9 ने यह कथन किया है, "मेरे चाचा छोटी कुल्हाड़ी लेकर आए और उन्होंने मेरे पिता के सिर पर क्षति पहुंचाई" ।

8. जब न्यायालय में डा. भूपेन्दर चौधरी (अभि. सा. 5) की परीक्षा की गई तब उन्होंने यह कथन किया कि मृतक के सिर के एक ओर दो घाव थे । पहले घाव के किनारे धारदार पाए गए जो दाएं कान के तुंगिका से होता हुआ सिर के मध्य में और वहां से पश्च कपालीय अस्थि के जोड़ तक फैला हुआ है । द्वितीय घाव के किनारे भी धारदार हैं जो पश्च कपालीय अस्थि के दाएं ओर है और उसकी लंबाई 4 सें.मी. है । अधःस्थ अस्थि भी कटी हुई पाई गई है और मस्तिष्क दिखाई दे रहा है । शरीर का शेष भाग सामान्य है ।

9. प्रथम इत्तिला रिपोर्ट प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 7/बी में थोड़ी अस्पष्टता है । यह दलील दी गई है कि अभि. सा. 9 ने (पुलिस को दिए गए) अपने पहले कथन में यह उल्लेख किया था कि मृतक को एक क्षति पहुंचाई गई थी

जब कि अभि. सा. 9 ने न्यायालय में अपने इस कथन में यह सुधार किया है कि मृतक को दो क्षतियां पहुंचाई गई थीं । इससे अभियुक्त को अधिक सहायता नहीं मिल सकती क्योंकि अभि. सा. 9 के कथन की संपुष्टि अभि. सा. 5 के कथन से पूर्ण रूप से होती है और अभि. सा. 5 ने यह कथन किया है कि दोनों क्षतियां तेजधार वाले हथियार से कारित की गई हैं और प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त हैं ।

10. अब हम इस दलील के विधिक पहलू पर विचार करेंगे । दंड संहिता की धारा 299 के अंतर्गत आपराधिक मानववध परिभाषित किया गया है । धारा 299 के अंतर्गत ऐसे मामले आते हैं जिनमें मृत्यु कारित करने के आशय से और या ऐसी शारीरिक क्षति कारित करने के आशय से जिससे मृत्यु कारित हो जाना संभव हो, या यह ज्ञान रखते हुए कि यह संभाव्य है कि वह उस कार्य से अन्य व्यक्ति की मृत्यु कारित कर दे । इन सभी स्थितियों में ऐसा कार्य आपराधिक मानववध की कोटि में आएगा । आपराधिक मानववध हत्या कहलाएगा जबतक कि वह दंड संहिता की धारा 300 के किसी भी साधारण अपवाद के अंतर्गत न आए जिससे अपराध धारा 300 की परिधि से बाहर रहेगा और हत्या की कोटि में न आने वाला मानववध कहलाएगा । जब एक बार ऐसा कार्य इन मामलों की कोटि में आ जाता है, तब न्यायालय के लिए दंड संहिता की धारा 304 भाग-I या भाग-II, जैसी भी स्थिति हो, के निबंधनों में न्यून दंड अधिरोपित करने के लिए अनुज्ञात होगा । एक ओर धारा 302 के अधीन दंड और दूसरी ओर धारा 304 के अधीन दंड के बीच स्पष्ट विभाजन किया गया है कि कब मानववध 'हत्या' कहलाएगा और कब नहीं कहलाएगा । धारा 304 के उपबंध स्वयं में धारा 302 के लागू किए जाने के संबंध में एक प्रकार का अपवाद है, दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि धारा 304 भाग-II के उपबंध तभी लागू होंगे जब कार्य हत्या नहीं है । **आंध्र प्रदेश** बनाम **रायावरापु पुन्नैया और एक अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय द्वारा समुचित रूप से उस व्यवस्था और अंतर का उल्लेख किया गया है जिसमें न्यायालय ने इन उपबंधों के बीच अंतर पर विचार करते हुए ऐसे संघटकों का भी उल्लेख किया है जिन पर उन सिद्धांतों के लागू किए जाने के पूर्व न्यायालयों द्वारा विचार किया जाना चाहिए :–

> "17. खंड (3) के अंतर्गत आने वाले मामलों के संबंध में जहां तक आशयित शारीरिक क्षति या ऐसी क्षति कारित किए जाने का

[1] (1976) 4 एस. सी. सी. 382.

संबंध है जो प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त हो, यह आवश्यक नहीं कि अपराधी का आशय मृत्यु कारित करना था । राजवंत **बनाम** केरल राज्य वाला मामला इस मुद्दे पर एक उचित उदाहरण है ।

18. वीरसा सिंह **बनाम** पंजाब राज्य वाले मामले में इस न्यायालय के न्यायमूर्ति विवियन बोस ने इस विनिश्चय के पृष्ठ 1500 पर खंड (3) के अर्थ और विस्तार को स्पष्ट किया है –

> 'अभियोजन पक्ष को दंड संहिता की धारा 300 का 'तीसरा' के अधीन मामले को लाने के पूर्व निम्न तथ्यों को साबित करना चाहिए । प्रथमतः, उद्देश्यात्मक रूप से यह सिद्ध किया जाना चाहिए कि शारीरिक क्षति मौजूद है ; द्वितीयतः क्षति की प्रकृति साबित की जानी चाहिए । ये स्पष्ट रूप से वस्तुपरक अन्वेषण का भाग हैं । यह साबित किया जाना चाहिए कि विशिष्ट क्षति पहुंचाने का आशय किया गया था अर्थात् क्षति आकस्मिक या अनाशयित नहीं है और न ही अन्य किसी प्रकार की क्षति पहुंचाने का आशय किया गया था । जब एक बार ये तीनों तत्व साबित कर दिए जाते हैं तब आगे जांच की जाती है और चतुर्थतः यह साबित किया जाना चाहिए कि जिस क्षति का वर्णन किया गया है वह इन्हीं तीन तत्वों से मिलकर बनी है और प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित किए जाने के लिए पर्याप्त है । जांच का यह भाग पूर्णतया वस्तुपरक और निर्णयात्मक है और इसका अपराधी के आशय से कोई लेना देना नहीं है ।'

19. इस प्रकार वीरसा सिंह वाले मामले में अधिकथित नियम के अनुसार यदि अभियुक्त का आशय केवल ऐसी क्षति पहुंचाने तक ही सीमित था जो प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त हो और उसका आशय मृत्यु कारित करने तक सीमित नहीं था, तब किया गया अपराध 'हत्या' कहलाएगा । दंड संहिता की धारा 300 से संलग्न दृष्टांत (ग) के अंतर्गत इस बात को स्पष्ट किया गया है ।

20. दंड संहिता, 1860 की धारा 299 का खंड(ग) और धारा 300 का खंड (4) दोनों ही के अंतर्गत मृत्यु कारित करने वाले कार्य की संभाव्यता का ज्ञान अपेक्षित है । इस मामले के प्रयोजन हेतु यह

आवश्यक नहीं है कि इन दोनों समवर्ती खंडों के बीच अंतर पर विस्तार से उल्लेख किया जाए । यह कहना पर्याप्त होगा कि धारा 300 का खंड (4) वहां लागू होगा जहां किसी व्यक्ति या व्यक्तियों की मृत्यु की संभाव्यता के संबंध में अपराधी का यह ज्ञान, जो किसी व्यक्ति विशेष या व्यक्तियों से भिन्न हो कि उसके अत्यंत खतरनाक कार्य से व्यावहारिक रूप से संभावित घटना घटित हो सकती है । अपराधी को ऐसा ज्ञान होने की संभाव्यता उच्च कोटि की होनी चाहिए कि अपराधी द्वारा जो कार्य किया गया है उसके लिए ऐसा कोई भी कारण न दिया जा सके, जैसाकि ऊपर कहा गया है, मृत्यु या क्षति कारित नहीं की जा सकती थी ।

21. उपरोक्त रूपरेखा से यह प्रकट होता है कि जब कभी न्यायालय के समक्ष यह प्रश्न आता है कि क्या अपराध 'हत्या' है या 'हत्या की कोटि में न आने वाला मानववध' है, मामले के तथ्यों के आधार पर न्यायालय के लिए यह उचित होगा कि वह इस प्रश्न पर तीन प्रक्रम पर विचार करे । पहला प्रक्रम इस प्रश्न के संबंध में यह होगा कि क्या अभियुक्त ने कोई ऐसा अपराध कारित किया है जिसके द्वारा उसने अन्य किसी व्यक्ति की हत्या की है । अभियुक्त के कार्य और मृत्यु के बीच ऐसे आकस्मिक संबंध के साबित हो जाने के पश्चात् प्रश्न के द्वितीय प्रक्रम पर विचार करना होगा कि क्या अभियुक्त द्वारा किया गया कार्य दंड संहिता की धारा 299 में यथा परिभाषित 'आपराधिक मानववध' की कोटि में आता है या नहीं । यदि इस प्रश्न का प्रथमदृष्ट्या सकारात्मक उत्तर प्राप्त होता है, तब दंड संहिता की धारा 300 के लागू किए जाने पर विचार करना होगा । यह वह प्रक्रम है जिस पर न्यायालय को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि क्या अभियोजन पक्ष द्वारा सिद्ध किए गए तथ्यों के आधार पर मामला दंड संहिता की धारा 300 में अंतर्विष्ट हत्या की परिभाषा के चार खंडों में से किसी भी खंड के अंतर्गत आता है या नहीं । यदि प्रश्न का उत्तर नकारात्मक है तब अभियुक्त द्वारा किया गया कार्य 'हत्या की कोटि में न आने वाला मानववध' कहलाएगा, जो दंड संहिता की धारा 304 के प्रथम या द्वितीय भाग के अधीन दंडनीय होगा जो क्रमशः इस पर निर्भर होगा कि दंड संहिता की धारा 299 का द्वितीय या तृतीय खंड लागू होगा या नहीं । यदि इस प्रश्न का उत्तर सकारात्मक प्राप्त होता है किंतु मामला दंड संहिता की धारा 300 में प्रगणित किसी भी अपवाद के अंतर्गत आता है तब अपराध

'हत्या की कोटि में न आने वाला मानववध' कहलाएगा जो दंड संहिता की धारा 304 के प्रथम भाग के अधीन दंडनीय होगा ।

22. उपरोक्त बातें केवल मोटे-मोटे सिद्धांत हैं न कि सुनिश्चित आदेश । बहुत से मामलों में इन सिद्धांतों का पालन किए जाने से न्यायालयों का कार्य सुकर हो जाता है । किंतु कभी-कभी मामलों के तथ्य इतने अंतर्जटित होते हैं और द्वितीय और तृतीय प्रक्रम एक दूसरे में इतने गुथे हुए होते हैं कि द्वितीय और तृतीय प्रक्रम पर मामलों पर अलग से विचार करना सुविधाजनक नहीं होगा ।"

11. **तंगइया** बनाम **तमिलनाडु राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की न्यायपीठ ने दोनों धाराओं के बीच अंतर को स्पष्ट करते हुए निम्न मत व्यक्त किया है :–

"9. इस बात से हमारा ध्यान एक महत्वपूर्ण प्रश्न की ओर जाता है कि कौन सा समुचित उपबंध लागू किया जाना चाहिए । दंड संहिता की प्रणाली में 'आपराधिक मानववध', 'वंश' है और 'हत्या' उसकी जाति है । सभी 'हत्याएं" 'मानववध' होती हैं किंतु सभी 'मानववध', 'हत्या' नहीं होते । आम तौर पर यह कहा जा सकता है कि जिस 'मानववध' में 'हत्या' से संबंधित विशेष लक्षण नहीं होता, इसीलिए उसे 'हत्या की कोटि में न आने वाला मानववध' कहा जाता है । ऐसा दंड नियत करने के प्रयोजन हेतु जो प्रजातीय (सामान्य) अपराध की गंभीरता के समानुपाति हो, दंड संहिता के अंतर्गत व्यावहारिक रूप से आपराधिक मानववध की तीन कोटियों का अनुमोदन किया गया है । पहली कोटि को 'प्रथम कोटि का आपराधिक मानववध' कहा जाता है । यह मानववध का गंभीरतम रूप है, जिसे दंड संहिता की धारा 300 के अधीन 'हत्या' के रूप में परिभाषित किया गया है । द्वितीय आपराधिक मानववध 'द्वितीय कोटि में आने वाला मानववध' कहा जा सकता है । यह अपराध दंड संहिता की धारा 304 के प्रथम भाग के अधीन दंडनीय है । इसके पश्चात्, 'तृतीय कोटि में आने वाला मानववध' है । यह मानववध निम्नतम श्रेणी का है और इसके लिए जो दंड उपबंधित किया गया है वह तीनों श्रेणियों में सबसे कम है । इस कोटि का मानववध दंड संहिता की धारा 304 के द्वितीय भाग के अधीन दंडनीय है ।

---

[1] (2005) 9 एस. सी. सी. 650.

10. 'हत्या' और हत्या की कोटि में न आने वाला मानववध के बीच सैद्धांतिक अंतर सदैव न्यायालयों को दुविधा में डालता चला आ रहा है । वहां संभ्रांति पैदा हो जाती है जहां न्यायालय इन धाराओं पर विधान-मंडल द्वारा प्रयोग किए गए शब्दों की व्याप्ति और अर्थ पर विचार न कर सकें और वे सूक्ष्म अनवधानता से काम लें । ऐसा प्रतीत होता है कि इन उपबंधों के निर्वचन और उनके लागू किए जाने पर उचित रूप से तभी विचार किया जा सकेगा जब धारा 299 और 300 के अनेक खंडों में प्रयोग किए गए संकेत शब्दों (आधार शब्दों) पर विचार किया जाए.....।"

12. इन अपराधों के बीच मूल अंतर पर विचार करने के पश्चात्, अब हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि क्या गंभीर और अचानक प्रकोपन किया गया था जिसके आधार पर अपीलार्थी का मामला दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद I की परिधि के भीतर आ सके । मृतक और अभियुक्त सगे भाई थे । पक्षकारों के बीच कोई भी पुरानी दुश्मनी नहीं थी । यह उल्लेख किया गया है कि मृतक शराब पीकर घर आया करता था और झगड़ा किया करता था । घटना के दिन भी वह शराब पीकर आया था, और उसने अपने पिता को गालियां दीं और उन पर हमला भी किया । इसके जवाब में उसके पिता ने अभियुक्त को डंडा मारा और उसने अपने दूसरे पुत्र को मदद के लिए पुकारा । यह देखकर कि उसके पिता को गालियां दी जा रही हैं, हमला किया जा रहा है और मृतक दुर्व्यवहार कर रहा है वह भी नशे की हालत में, अभियुक्त ने मृतक पर हमला किया । क्रोध के उसी क्षण, वह तोबड़ू जो आम तौर पर पहाड़ी क्षेत्र में घरों में प्रयोग की जाती है, लेकर घर से बाहर आया और मृतक के सिर पर मारी । यह अचानक मृतक को कुंद सिरे के बजाय धार की ओर से लगी । क्षति इतनी गंभीर थी कि उससे करोटि में अस्थिभंग हो गया और मृतक जमीन पर गिर गया । संपूर्ण अभियोजन साक्ष्य से यह निष्कर्ष निकालना अत्यंत कठिन होगा कि अभियुक्त का आशय अपने भाई की हत्या करना था और वह उसकी हत्या करने के आशय से घर से निकलकर बाहर आया था । कारित की गई क्षति हथियार की चोट का परिणाम थी न कि प्रयोग किए गए बल का । यदि अत्यधिक बल का प्रयोग किया जाता तो करोटि के दो भाग हो जाते ।

13. गंभीर और अचानक प्रकोपन के सिद्धांत की ऐसी रचना की जा सकती है जिसका सार्वभौमिक प्रयोग किया जा सके । यह सदैव दिए गए मामलों के तथ्यों पर आधारित होगा । इस सिद्धांत को लागू करते समय न्यायालय का यह प्राथमिक कर्तव्य है कि वह युक्तियुक्त प्रज्ञा वाले व्यक्ति

के दृष्टिकोण से विचार करे । यदि ऐसा गंभीर और अचानक प्रकोपन है जिससे युक्तियुक्त रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि तथ्यों के आधार पर आपराधिक मानववध का अपराध कारित किया जाना संभव हो और इस मामले के तथ्यों के आधार पर हत्या की कोटि में आने वाला मानववध नहीं है । गंभीर और अचानक प्रकोपन के परिणामस्वरूप किए जाने वाले अपराध का सामान्य रूप से यह अर्थ है कि ऐसी परिस्थितियों में कोई व्यक्ति आत्मसंयम खो सकता है किन्तु अस्थाई रूप से और वह भी 'प्रकोपन' के समीप्य । प्रकोपन अभियुक्त पर मृतक द्वारा किया गया कोई कार्य या कार्यों की शृंखला हो सकता है जिसके परिणामस्वरूप मृतक को क्षति कारित होती है ।

14. एक अन्य कसौटी, जिसका प्रायः प्रयोग किया जाता है वह यह है कि हमलावर का व्यवहार युक्तियुक्त व्यक्ति के व्यवहार जैसा होना चाहिए । अचानक और गंभीर प्रकोपन के परिणामस्वरूप अचानक अस्थाई रूप से आत्मसंयम के खो देने और वास्तव में हत्या का आशय करने के बीच स्पष्ट अंतर को समझना चाहिए । मन की ऐसी दशा बने रहने के दौरान उसी समय हत्या का अपराध किया जाना चाहिए और अभियुक्त के मन पर उस दशा का अधिपत्य बना होना चाहिए । जब एक बार पूर्व चिंतित कार्य हत्या के आशय से किया जाता है, तब ऐसा कार्य हत्या की कोटि में न आने वाले मानववध की परिधि के परे होगा । जब हम वर्तमान मामले के तथ्यों पर विचार करते हैं, तब यह स्पष्ट हो जाता है, जैसा कि पहले ही विचार किया गया है, तोबड़ू (छोटी कुल्हाड़ी) पहाड़ी इलाकों में आम तौर पर घरों में पाई जाती हैं जिसका प्रयोग ईंधन काटकर इकट्ठा करने में किया जाता है । यह भी सामान्य ज्ञान की बात है कि 12 वर्ष पूर्व भीतरी पहाड़ी इलाकों में गैस की सुविधा उपलब्ध नहीं थी । प्रकोपन अचानक किया गया था और स्पष्ट रूप से वह गंभीर प्रकृति का था । अभियोजन पक्ष का स्वयं यह पक्षकथन है कि मृतक गालियां दे रहा था और अपने पिता पर हमला भी कर रहा था और पिता मदद के लिए चिल्लाया था और उसने अभियुक्त को पुकारा था जो उस समय घर में पहले से मौजूद था । मृतक नशे की हालत में था । जैसा कि यह प्रतीत होता है कि तोबड़ू आम तौर पर उपलब्ध हो जाती है जिसे अभियुक्त ले आया था और वह सीधे लड़ने चला गया और अपने भाई, मृतक पर हमला किया । क्षतियां घातक साबित की गई हैं । ऐसा कोई भी अभियोजन साक्ष्य नहीं है जिससे यह दर्शित होता हो कि मृतक और अभियुक्त के बीच शत्रुता थी या हत्या करने का कोई हेतु था और अभियुक्त का हत्या करने का हेतु तो बिल्कुल ही

नहीं था । वे इस मकान में कई वर्षों से रह रहे थे । भूतकाल में ऐसी कोई भी अप्रिय घटना या लड़ाई-झगड़ा नहीं हुआ था जिसकी रिपोर्ट पुलिस में कराई गई हो । यदि पक्षकारों की परस्पर नातेदारी और मृतक के नशे की हालत में होने और अपने पिता को गालियां देने और उस पर हमला किए जाने के तथ्य को ध्यान में रखते हुए अभियोजन साक्ष्य के संचयी प्रभाव पर विचार किया जाए तो युक्तियुक्त रूप से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अभियुक्त को अचानक और गंभीर प्रकोपन का सामना करना पड़ा । हमारे समाज में, एक पुत्र आम तौर पर यह सहन नहीं करेगा कि उसके पिता का अपमान किया जाए और हमला किए जाने को तो बिल्कुल ही सहन नहीं करेगा । निस्संदेह, अपराध में इस ज्ञान के साथ हथियार का प्रयोग किया गया था कि इससे गंभीर क्षति कारित हो सकती है जो प्राण घातक हो सकती है यहां तक कि उससे मृतक की मृत्यु भी हो सकती है किन्तु, जैसा कि ऊपर उपदर्शित किया गया है, ऐसा हथियार मकानों में आसानी से उपलब्ध है ।

15. **के. एम. नानावती** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाला मामला इस न्यायालय की एक ऐसी नजीर है जिसमें गंभीर और अचानक प्रकोपन के सिद्धांत को विधिक विमाओं के भीतर स्पष्ट किया गया है । इस मामले में अभियुक्त ने यह जानकर कि उसकी पत्नी और व्यापारी के बीच अंतरंग संबंध है, व्यापारी की हत्या की है । हत्या की कोटि में न आने वाले मानववध के अभिवाक् से इनकार करते समय इस न्यायालय ने निम्न प्रकार विधि पर चर्चा की है :–

> "78. प्रथम प्रश्न यह उठाया गया है कि क्या आहूजा ने अपवाद के अर्थान्तर्गत नानावती को प्रकोपन दिया था और यदि उसने ऐसा कोई प्रकोपन दिया था क्या वह गंभीर और अचानक था या नहीं ।
>
> * * * *
>
> 81. प्रश्न यह सामने आता है कि न्यायालय को इस पर विचार करना चाहिए कि क्या एक साधारण व्यक्ति भी उस अवस्था में वही कार्य करता अर्थात् अपनी पत्नी द्वारा जारकर्म की संस्वीकृति किए जाने पर वैसा ही कार्य करता जैसा अभियुक्त ने ऐसी अवस्था में किया है । मनसिनी **बनाम** निदेशक, लोक अभियोजक विस्काउंट साइमन, एल. सी. वाले मामले में प्रकोपन के सिद्धांत को इस प्रकार

[1] ए. आई. आर. 1962 एस. सी. 605.

उल्लिखित किया है –

'उन सब बातों को प्रकोपन नहीं कहा जा सकता है जो हत्या के अपराध को घटाकर मानववध कर दें । प्रकोपन का ऐसा परिणाम होना चाहिए जिससे वह व्यक्ति अस्थाई रूप से आत्मसंयम की शक्ति खो दे और उसके परिणामस्वरूप वह ऐसा विधिविरुद्ध अपराध कारित करे जिससे मृत्यु कारित हो जाए । कसौटी पर यह परखना चाहिए कि युक्तियुक्त व्यक्ति पर ऐसे प्रकोपन का क्या प्रभाव पड़ेगा, जैसा कि रेक्स **बनाम** लेसबिनी वाले मामले में की गई दांडिक अपील में न्यायालय द्वारा अधिकथित किया गया है ताकि असाधारण रूप से उत्तेजित या प्रकोपित व्यक्ति ऐसे प्रकोपन का हकदार न हो सके जैसा प्रकोपन साधारण व्यक्ति को ऐसे अपराध के प्रत्युत्तर में कारित होता । इस कसौटी का प्रयोग करने में मुख्य बात यह है (क) कि क्या एक युक्तियुक्त व्यक्ति को शांत अवस्था में आने तक का पर्याप्त समय प्रकोपन की अवस्था के पश्चात् प्राप्त हुआ है या नहीं और (ख) इस पर विचार करना होगा कि मानववध किस हथियार से किया गया है ताकि प्रकोपन की गंभीरता का पता लगाया जा सके, इस पर विचार किया जाना चाहिए कि एक ही वार किया गया है और ऐसी स्थिति उस स्थिति से अत्यंत भिन्न होगी जब अपराधी घातक हथियार जैसी छुपी हुई कटार से वार करता है । संक्षेप में, यदि अपराध की कोटि घटाकर मानववध की गई है तब क्रोध का युक्तियुक्त संबंध प्रकोपन से होना चाहिए ।'

विस्काउंट साइमन ने पुनः होम्स **बनाम** निदेशक, लोक अभियोजक वाले मामले में इसी पृष्ठभूमि को विस्तृत किया है । इस मामले में अपीलार्थी को ग्राम में अन्य किसी व्यक्ति के साथ अपनी पत्नी के संबंध पर संदेह था । शनिवार की एक रात्रि में पति-पत्नी के बीच झगड़ा हुआ और पत्नी ने कहा, 'यदि तुम्हें इसी बात से शांति मिलती है तो ठीक है मैं अब तुम्हारे लिए विश्वसनीय नहीं हूं', और पत्नी ने यह भी कहा, मैं जानती हूं मैंने गलत किया है परन्तु मेरे पास इस बात का कोई सबूत नहीं है कि तुमने श्रीमती 'एक्स' के साथ गलत नहीं किया है । इस पर अपीलार्थी ने आत्मसंयम खो दिया और उसने हथौड़े का सिरा उठाया और उसके सिर के पार्श्व में वार किया । क्योंकि पति अपनी पत्नी को वहां पड़े रहना और इस बात से पीड़ित होना नहीं चाहता था इसलिए उसने अपने दोनों हाथों से उसका गला दबाकर हत्या कर दी । इस मामले में प्रश्न यह उठता है

कि क्या यह ऐसा प्रकोपन है जिससे अपराध हत्या से घटकर मानववध हो जाए । विस्काउंट साइमन ने, मनसिनी वाले मामले को निर्दिष्ट करते हुए निम्न प्रकार मत व्यक्त किया –

'प्रकोपन से संबंधित संपूर्ण सिद्धांत इस तथ्य पर आधारित है कि प्रकोपन आत्मसंयम के अचानक और अस्थाई रूप से खो जाने से कारित होता है या हो सकता है जिसमें इस बात से इनकार किया जा सके कि दुर्भावना के आधार पर हत्या या ऐसी शारीरिक गंभीर क्षति कारित करने का आशय गठित हुआ है । परिणामस्वरूप, जहां प्रकोपन के आधार पर वास्तव में हत्या का आशय हो (जैसा कि वर्तमान मामले में न्यायमूर्ति होम्स ने व्यक्त किया है) या ऐसी गंभीर शारीरिक क्षति कारित करने का आशय हो तब यह सिद्धांत कभी-कभी लागू होगा कि प्रकोपन के आधार पर हत्या के अपराध को घटाकर मानववध किया जाए ।

84. क्या 'गंभीर और अचानक' प्रकोपन के सिद्धांत को लागू करने के संबंध में युक्तियुक्त व्यक्ति का कोई मानक है ? युक्तियुक्तता का कोई भी आदर्श मानक अधिकथित नहीं किया जा सकता है । कतिपय परिस्थितियों में कोई युक्तियुक्त व्यक्ति जो करेगा वह प्रथा, रीति, जीने के तरीके और परम्परा आदि पर निर्भर होता है, संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि युक्तियुक्त व्यक्ति का व्यवहार समाज की सांस्कृतिक, सामाजिक और भावात्मक पृष्ठभूमि पर निर्भर होता है । हमारे विशाल देश में निम्नतम से लेकर उच्चतम सभ्यता वाले सामाजिक समूह हैं । संक्षेप में कोई भी मानक अधिकथित करना न तो संभव है और न ही वांछनीय है, न्यायालय को ही प्रत्येक मामले में सुसंगत परिस्थितियों पर विचार करते हुए विनिश्चित करना होता है । इस मामले में यह सुनिश्चित करना आवश्यक नहीं होगा कि क्या अभियुक्त जैसी स्थिति में कोई युक्तियुक्त व्यक्ति क्षणभर के लिए या अस्थाई रूप से अपना आत्मसंयम ऐसी स्थिति में खो देता कि उसकी पत्नी उसके समक्ष यह संस्वीकृति दे कि उसके अन्य व्यक्ति के साथ अवैध संबंध है, इसीलिए इस साक्ष्य से हमारा समाधान हो गया कि अभियुक्त ने आत्मसंयम बना लिया था और उसने आहूजा की जानबूझकर हत्या की है ।

85. वर्तमान जांच से संबंधित, भारतीय विधि का इस प्रकार

उल्लेख किया जा सकता है : (1) गंभीर और अचानक प्रकोपन की कसौटी यह है कि क्या समाज के उसी वर्ग का कोई युक्तियुक्त व्यक्ति प्रकोपित होकर आत्मसंयम खो देता या नहीं जिस वर्ग का अभियुक्त है । (2) भारत में शब्द और भावव्यंजना, कतिपय परिस्थितियों में अभियुक्त के लिए इतना गंभीर और अचानक प्रकोपन का कारण बन सकती हैं कि उसका कार्य दंड संहिता की धारा 300 के प्रथम अपवाद के भीतर आ जाता है । (3) आहत के पूर्ववर्ती कार्य द्वारा सृजित मानसिक पृष्ठभूमि पर यह सुनिश्चित करने के लिए विचार किया जा सकता है कि क्या पश्चात्वर्ती कार्य से अपराध करने के लिए गंभीर और अचानक प्रकोपन कारित हुआ है या नहीं । (4) प्रकोपन से आवेश का प्रभाव इतना हो कि अभियुक्त को स्पष्ट रूप से घातक वार करना पड़ जाए और यह वार समय बीत जाने के पश्चात् आवेश के समाप्त हो जाने पर नहीं किया जाना चाहिए या अन्यथा पूर्वचिन्तन और सोच-विचार की कोई गुंजाइश नहीं हो ।'

16. **बोंडा देवेसू** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में अभियुक्त आदिवासी समुदाय का था और मृतक ने अभियुक्त की पत्नी के साथ अश्लील व्यवहार किया था । अभियुक्त की सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए न्यायालय ने उसे दंड संहिता की धारा 302 के अधीन नहीं अपितु धारा 304 भाग-I के अधीन अपराध अभिनिर्धारित किया । **देवकू भीखा** बनाम **गुजरात राज्य**[2] वाले मामले में मृतक एक स्कूल में प्रधानाध्यापक था, उसने अभियुक्त से कहा कि वह अपनी पत्नी को अनैतिक कार्य के लिए मृतक को उपलब्ध कराए जिसके बदले में मृतक अभियुक्त को स्कूल में रोजगार देगा और मृतक ने अभियुक्त पर नपुंसकता का आरोप भी लगाया और अभियुक्त ने चाकू से बार-बार क्षति पहुंचाते हुए प्रधानाध्यापक (मृतक) की हत्या कर दी, उस मामले में भी न्यायालय ने इस कार्य को दंड संहिता की धारा 304 भाग-I के अधीन दंडनीय अपराध स्वीकार करते हुए निम्न अभिनिर्धारित किया :–

"……इस प्रकार इस विश्लेषण से यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि अपीलार्थी वह अपराध कर बैठा जिसका पूर्वचिन्तन नहीं किया गया था और क्षण भर में ऐसी स्थिति पैदा हो गई कि धीरे-धीरे अपीलार्थी अपना आत्मसंयम खोता गया और गंभीर और अचानक

---

[1] (1996) 7 एस. सी. सी. 115.

[2] (1996) 11 एस. सी. सी. 641.

प्रकोपन के कारण उसने क्षण भर में मृतक को उत्तरोत्तर क्षतियां पहुंचा दीं । अतः, हमारा यह विचार है कि अपीलार्थी के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 304 भाग-I के अधीन अपराध बनता है । तदनुसार, अपराध दंड संहिता की धारा 302 से कम करके धारा 304 भाग-I में परिवर्तित किया जाता है जिसके लिए हम अपीलार्थी पर सात वर्ष के कठोर कारावास का दंड अधिरोपित करते हैं ।

17. **मंगेश** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में, इस न्यायालय ने उन परिस्थितियों का उल्लेख किया है कि जिनसे यह पता चलता है कि मृत्यु कारित करने का आशय था या नहीं । इसमें हथियार की प्रकृति ; शरीर के किस भाग पर वार किया गया है ; बल की मात्रा कितनी है ; क्या अचानक लड़ाई या झगड़े के परिणामस्वरूप ऐसा हुआ है ; घटना संयोग से घटित हुई है या पूर्वचिन्तन से हुई है ; पूर्व दुश्मनी थी या नहीं ; गंभीर और अचानक प्रकोपन था या नहीं ; आवेग की तीव्रता थी या नहीं ; क्या अभियुक्त ने असम्यक् लाभ उठाया है ; क्या उसने क्रूरतापूर्ण कार्य किया है ; अभियुक्त द्वारा किए गए वारों की संख्या आदि जैसी परिस्थितियां शामिल हैं ।

18. न्यायालय को विद्यमान परिस्थितियों पर भी विचार करना चाहिए जिनके आधार पर न्यायालय ने अभियुक्त के आशय को समझा है । अति महत्वपूर्ण संघटकों में से एक संघटक पूर्वचिन्तन और हत्या करने का आशय है । ये ऐसे महत्वपूर्ण संघटक हैं जिनका प्रभाव विद्यमान परिस्थितियों के आधार पर ऐसे मुद्दों को विनिश्चित करते समय न्यायालय के विवेक पर पड़ता है । **रामपाल सिंह** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[2] वाले मामले में अभियुक्त, मृतक का नातेदार था और उसने लाडोरी के निर्माण से संबंधित विवाद को लेकर उस पर गोली चलाई, इस मामले में न्यायालय ने निम्न अभिनिर्धारित किया :–

> "27. हमने पहले ही इस पर विचार किया है कि अभियुक्त और मृतक दोनों ही एक दूसरे के नातेदार थे । दोनों ही भारतीय सेना में सेवारत थे । वे छुट्टी पर अपने घर आए थे और जब मृतक अपनी तैनाती के स्थान पर लौटने वाला था तभी यह दुर्घटना घटित हुई । संपूर्ण विवाद इस बात पर था कि मृतक की भूमि के खुले मैदान पर कूड़ा-करकट न फेंके जाने के लिए मृतक ने लाडोरी का निर्माण

---

[1] (2011) 2 एस. सी. सी. 123.

[2] (2012) 8 एस. सी. सी. 289.

कराया था । तथापि, अपीलार्थी ने लाडोरी तोड़ डाली थी और मृतक की रिक्त भूमि पर कूड़ा फेंका । दोनों परिवारों के बीच विनोदपूर्ण समारोह का आयोजन किए जाने के बजाय एक विवाद खड़ा हो गया जिसके परिणामस्वरूप उनमें से एक व्यक्ति की मृत्यु हो गई । जब मृतक ने उससे पूछा कि उसने ऐसा क्यों किया है, तब अपीलार्थी गरमा-गरमी पर उतर आया । वास्तव में, वे एक दूसरे के साथ गुथमुथ हो गए और मृतक ने अपीलार्थी को जमीन पर गिरा दिया । राम सरन (प्रतिरक्षा साक्षी - 1) और अमर सिंह ने दोनों को अलग-अलग किया और उनसे शांति बनाए रखने को कहा गया । तथापि, जब मृतक सहित अन्य व्यक्ति एक दूसरे के साथ बात कर रहे थे, अपीलार्थी अपने घर गया और अपने हाथ में रायफल लेकर मुनेश्वर की छत पर चढ़ गया । मृतक पर गोली चलाने से पूर्व अपीलार्थी ने अपने भाई से कहा कि वह मृतक से दूर हट जाए । उस पर मृतक ने अपीलार्थी को उकसाया कि अगर उसमें साहस है तो गोली चलाए । इस पर अपीलार्थी ने एक गोली चलाई जो मृतक के पेट में लगी । अभियोजन पक्ष का यह वृत्तांत प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों, चिकित्सीय साक्ष्य और अपराध में प्रयुक्त आयुध की बरामदगी से पूर्णतया सिद्ध हो जाता है । इस प्रकार, अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने अपीलार्थी के अपराध को धारा 302 से धारा 304 भाग-II में परिवर्तित किए जाने के संबंध में अपनी दलील देकर ठीक ही किया है ।

28. इस प्रक्रम पर, एक अत्यन्त महत्वपूर्ण साक्षी के कथन को निर्दिष्ट करना सुसंगत होगा जिससे न्यायालय को निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचने में सहायता मिलेगी । श्रीमती स्नेह लता, जिसकी अभि. सा. 1 के रूप में परीक्षा की गई है, मृतक की पत्नी है । घटना से संबंधित परिचयात्मक तथ्यों का उल्लेख करने के पश्चात् इस साक्षी ने निम्न कथन किया है –

'इसी दौरान मेरे चचिया ससुर अमर सिंह वहां आए और एक व्यक्ति भी जो धनिया पुर का निवासी था, वहां आया । मेरे पति इन व्यक्तियों से बातें करने लगे और अभियुक्त जो न्यायालय में मौजूद है, वहां आया । मेरे पति ने उससे कहा कि तुम हमारी भूमि का प्रयोग कूड़ेदान के रूप में क्यों करने लगे हो और तुमने हमारी बनाई हुई लाडोरी क्यों तोड़ी है । इस मुद्दे पर मेरे पति और रामपाल सिंह के बीच कहा-सुनी हो गई और मेरे पति ने अभियुक्त को जमीन पर पटक दिया । उसी समय उसका पुत्र राम सरन वहां आया और इसके

पश्चात् उसने और अमर सिंह ने दोनों को अलग-अलग किया । राम सरन ने अभियुक्त को समझाया और वह उससे बातें करने लगा । मेरे पति छप्पर से उतर कर नीचे आए और एक खम्भे के सहारे खड़े हो गए और वे इन व्यक्तियों से बातें करने लगे और इसी दौरान रामपाल अपने घर चला गया । तब उनमें से एक व्यक्ति ने देखा कि न्यायालय में मौजूद अभियुक्त मुनेश्वर की छत पर चढ़ गया और दीवार की ओर मुंह करके खड़ा हो गया जो मेरे घर के दक्षिण में है और उसने यह भी कहा कि हमारी भूमि खाली पड़ी हुई है और मकान के पूर्व दिशा में स्थित मुंडेर पर वह खड़ा हुआ था और उसने अपने भाई से एक ओर हट जाने को कहा कि मैं गोली चलाऊंगा । इस पर, उसके भाई ने कहा कि क्या तुम पागल हो गए हो । इस पर मेरे पति ने कहा कि अगर तुम को साहस है तो मुझ पर गोली चलाकर दिखाओ । इस पर अभियुक्त ने कहा कि देखो मेरा साहस और यह कहते हुए अभियुक्त ने गोली चला दी और मेरे पति को लगी । उक्त गोली के लगने पर मेरे पति नीचे गिर गए और इसके पश्चात् अभियुक्त सीढ़ियों से नीचे उतर कर भाग गया । इसके पश्चात्, राम सरन आदि मेरे पति की मदद के लिए आए और ग्राम से कंपाउण्डर को बुलाया । कंपाउण्डर ने मेरे पति के घाव पर गीला आटा लगाकर घाव को बंद किया और उन्हें तत्काल किसी बड़े अस्पताल ले जाने की सलाह दी और इसके पश्चात् मैं अन्य व्यक्तियों के साथ अपने पति को लेकर बेवर गई । मेरे पति ने कहा कि रिपोर्ट किसी और दिन दर्ज हो जाएगी, पहले तुम मुझे सेना अस्पताल, फतेहगढ़ लेकर चलो ।

उसी दिन लगभग पौने नौ बजे हम उन्हें फतेहगढ़ अस्पताल ले गए जहां पर चार-पांच दिनों के पश्चात् उनकी मृत्यु हो गई ।'

29. इस साक्षी के उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि मृतक और अपीलार्थी के बीच कहा-सुनी हुई थी । मृतक ने अपीलार्थी को जमीन पर फेंका था । उन्हें अमर सिंह और राम सरन ने अलग-अलग किया । इस साक्षी ने यह स्वीकार किया है कि उसके पति ने अपीलार्थी से कहा था कि अगर उसमें दम है तो गोली चलाए । उसके प्रकोपन के कारण ही अपीलार्थी ने गोली चलाई जो मृतक के पेट में लगी और परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई ।

30. एक अन्य अत्यंत महत्वपूर्ण पहलू यह है कि पुरानी शत्रुता

का मामला नहीं है । ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिससे यह दर्शित होता हो कि मृतक और अपीलार्थी के परिवारों के बीच संबंध सौहार्द नहीं थे । इसके प्रतिकूल यह साक्ष्य सामने आया है कि उनके बीच संबंध अच्छे थे, जैसा कि प्रतिरक्षा साक्षी-1 ने अभिसाक्ष्य दिया है । पक्षकारों के बीच जो विवाद हुआ है उसका विशिष्ट संबंध लाडोरी से है । यह स्पष्ट है कि अपीलार्थी ने कोई भी पूर्वचिन्तन करके अपराध नहीं किया है । उसका हत्या करने का कोई भी आशय नहीं था । संपूर्ण घटना क्षण भर में घटित हुई है । मृतक और अपीलार्थी के बीच कहा-सुनी हुई थी और मृतक ने अपीलार्थी को जमीन पर फेंका था जो उसका अपना नातेदार था । अपीलार्थी अपने घर क्रोध की दशा में गया, उसने रायफल निकाली और थोड़ी दूर से अर्थात् मुनेश्वर की छत से मृतक पर गोली चलाई । परन्तु गोली चलाने के पूर्व उसने अपने भाई को दूर हट जाने की चेतावनी देते हुए गोली चलाने का आशय व्यक्त किया । वास्तव में, उसने उस चुनौती के जवाब में गोली चलाई जो उसे मृतक ने दी थी । यह सत्य है कि अपीलार्थी को इस बात की जानकारी थी कि यदि उसने रायफल का प्रयोग किया और मृतक पर गोली चलाई तो इस संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि मृतक की हत्या हो सकती है । वह सशस्त्र सेना का आदमी था और अग्न्यायुध के प्रयोग के परिणाम से पूर्णतया अवगत था । किन्तु इस बात से आवश्यक रूप से यह अर्थ नहीं निकाला जा सकता है कि उसका आशय अपने भाई अर्थात् मृतक की हत्या करने का था । संभवतः उसका आशय केवल शारीरिक क्षति कारित करने का था । तथापि, न्यायालय इस तथ्य को अनदेखा नहीं कर सकता है कि अपीलार्थी को यह ज्ञान था कि ऐसी क्षति से मृतक की मृत्यु हो सकती है । उसने मृतक पर केवल एक गोली चलाई और भाग गया । उस गोली का निशाना शरीर के निचले भाग अर्थात् मृतक के पेट पर लगाया गया था । डा. ए. के. रस्तोगी (अभि. सा. 2) के कथन के अनुसार दाएं शेषान्त्रिका उत्क्षेप पर सिला हुआ तिरछा घाव था जिससे यह दर्शित होता है कि अपीलार्थी ने यहीं निशाना लगाया था ।"

19. जैसा कि हमने ऊपर चर्चा की है, हत्या करने का 'पूर्वचिन्तन' और 'आशय' परिस्थितियों में की दो महत्वपूर्ण परिस्थितियां हैं जिन पर न्यायालय द्वारा, अभियुक्त को दंड संहिता की धारा 302 या 304 के अधीन अपराध का दोषी ठहराने के पूर्व, विचार किया जाना चाहिए । हमें दोहराना

पड़ रहा है कि हमने यह देखा है कि अभियोजन साक्ष्य से यह सिद्ध नहीं हुआ है कि अभियुक्त का आशय मृतक की हत्या करने का था या यह अपराध पूर्वचिंतन करके किया गया है । राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि इस तथ्य से कि अभियुक्त तोबडू लेकर आया था, हत्या करने का आशय पूर्णतया सिद्ध हो जाता है और इस प्रकार यह अपराध दंड संहिता की धारा 302 के अधीन आएगा । इस पर विवाद नहीं किया जा सकता है कि अभियुक्त तोबडू लेकर आया था, किन्तु साथ ही यह भी स्पष्ट हो गया है कि पहाड़ी क्षेत्र में यह आसानी से उपलब्ध हो जाने वाला हथियार है और वहां के लोगों द्वारा इसका निरन्तर प्रयोग किया जाता है । इस तथ्य के अतिरिक्त शत्रुता, पूर्वचिन्तन या हत्या करने के आशय का कोई भी साक्ष्य नहीं है अभियुक्त ने मृतक के सिर पर तोबडू से वार तो किया था जो प्राण घातक साबित हुआ । यह गंभीर और अचानक प्रकोपन का कारण था जिसमें मृतक और अभियुक्त दोनों के पिता को मृतक द्वारा गालियां दी जा रही थीं, हमला किया जा रहा था और दुर्व्यवहार किया जा रहा था और मृतक नशे की हालत में भी था ।

20. इस प्रकार, वर्तमान मामले के तथ्यों के आधार पर, अचानक और गंभीर प्रकोपन घटित हुआ था जिस कारण यह अपराध दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद की परिधि के भीतर आता है और इस प्रकार दंड संहिता की धारा 304 भाग-I के अधीन आएगा क्योंकि अभियुक्त ने मृतक को ऐसी शारीरिक क्षति कारित की है जिससे उसके ज्ञान में मृत्यु कारित होने की संभावना थी क्योंकि उसने मृतक के सिर पर क्षति कारित की है । अभियुक्त को दंड संहिता की धारा 304 भाग-I के अधीन अपराध का दोषी अभिनिर्धारित करके हम उसे 10 वर्ष के कठोर कारावास और 5,000/- रुपए के जुर्माने जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर अतिरिक्त छह मास के कारावास का दंड अधिनिर्णीत करते हैं ।

21. तदनुसार, अपील का निपटारा किया जाता है ।

अपील का निपटारा किया गया ।

अस./अनू.

———————

[2013] 4 उम. नि. प. 167

ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड

बनाम

दयामावा और अन्य

5 फरवरी, 2013

न्यायमूर्ति बी. एस. चौहान और न्यायमूर्ति जगदीश सिंह खेहर

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 167 [सपठित कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 (1923 का 8) की धारा 8 और 10] – नियोजन के अनुक्रम में मोटर दुर्घटना – मोटर यान अधिनियम या कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन प्रतिकर का दावा करने का विकल्प – मृतक के नियोजक द्वारा स्वप्रेरणा से कर्मकार प्रतिकर आयुक्त के पास प्रतिकर जमा कराने और आयुक्त द्वारा उसे दावेदारों को संवितरित कर दिए जाने के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता है कि दावेदारों ने कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन कार्यवाही करने के संबंध में अपने विकल्प का प्रयोग कर दिया था इसलिए दावेदार मोटर यान अधिनियम के अधीन दावा याचिका फाइल करने के लिए निर्हकित नहीं हो जाते हैं ।

प्रस्तुत मामले में मृतक मरमुगांव पत्तन न्यास, मरमुगांव के यांत्रिकी इंजीनियरी विभाग में पम्प प्रचालक के रूप में नियोजित था और तारीख 19 अप्रैल, 2003 को दूसरी पारी के दौरान अपनी उपर्युक्त हैसियत में अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते समय मोटर साइकिल पर पीछे वाली सीट पर सवारी करते समय उसे एक टिप्पर ने टक्कर मार दी । उक्त दुर्घटना में पहुंची क्षति के परिणामस्वरूप उसकी घटनास्थल पर ही मृत्यु हो गई । उपर्युक्त टिप्पर ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी, अर्थात् इस मामले में अपीलार्थी के पास बीमाकृत था । प्रस्तुत संविवाद में सबसे महत्वपूर्ण तथ्यात्मक पहलू यह है कि मृतक की विधवा और उसके आश्रितों ने तारीख 30 मई, 2003 को मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 166 के अधीन एक दावा याचिका फाइल की । मृतक की विधवा और उसके बालकों ने उपर्युक्त दावा याचिका के माध्यम से उस मोटर दुर्घटना के कारण, जिसके अनुक्रम में दावेदारों के पति/पिता ने अपनी जान गवां दी थी, प्रतिकर की ईप्सा की । इस संबंध में कोई विवाद नहीं है कि पत्तन न्यास ने कर्मकार प्रतिकर आयुक्त, गोवा को तारीख 4 नवम्बर, 2003 को एक संसूचना भेजी जिसके द्वारा उसे इसमें इसके ऊपर निर्दिष्ट मोटर दुर्घटना की सूचना दी गई ।

पत्तन न्यास ने उपर्युक्त सूचना के साथ-साथ कर्मकार प्रतिकर आयुक्त के पास प्रतिकर के रूप में 3,26,140/- रुपए जमा कराए जो कि मृतक के आश्रितों को कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 के अधीन संदत्त किए जाने थे । उपर्युक्त सूचना (तथा प्रतिकर निक्षेप) प्राप्त होने के परिणामस्वरूप, कर्मकार प्रतिकर आयुक्त ने मृतक के आश्रितों को एक सूचना जारी की । मृतक की विधवा, जो कि प्रस्तुत मामले में प्रत्यर्थी है, कर्मकार प्रतिकर आयुक्त के समक्ष उपस्थित हुई और आयुक्त के समक्ष लेखबद्ध कथन में उसने यह स्वीकार किया कि उसके पति की मृत्यु पत्तन न्यास के नियोजन में कार्य करते समय एक मोटर दुर्घटना में हो गई थी । उसने अभिलेख पर यह तथ्य भी लेखबद्ध कराया कि उसके दो पुत्र और एक पुत्री हैं और वे भी मृतक के आश्रित हैं । उसने अपने कथन के आधार पर पत्तन न्यास द्वारा कर्मकार प्रतिकर आयुक्त के पास जमा कराए गए प्रतिकर के उन्मोचन की प्रार्थना की । चूंकि नियोजक द्वारा मृतक की विधवा द्वारा किए गए दावे का विरोध नहीं किया गया था इसलिए पत्तन न्यास द्वारा कर्मकार प्रतिकर आयुक्त के पास जमा की गई 3,26,140/- रुपए की रकम मुख्यतः मृतक की विधवा को और भागतः मृतक की पुत्री को दिए जाने का आदेश कर दिया गया था । उपर्युक्त रकम में से पुत्री को 50,000/- रुपए की राशि का हकदार ठहराया गया था । कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 के अधीन अवधारित प्रतिकर के अलावा मृतक की विधवा द्वारा मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 166 के अधीन किया गया दावा भी मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा अलग से अवधारित किया गया था । उक्त मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण ने दावेदारों को 11,44,440/- रुपए का प्रतिकर अधिनिर्णीत किया । मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण ने उपर्युक्त प्रतिकर में से 3,26,140/- रुपए की कटौती करने का आदेश किया (अर्थात् वह रकम जो कर्मकार प्रतिकर आयुक्त द्वारा दावेदारों को वितरित कर दी गई थी । मामले को इस दृष्टि से देखने पर दावेदारों को 8,18,300/- रुपए की राशि के उन्मोचन का आदेश किया गया था । मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा पारित आदेश को ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड द्वारा, जो कि इस मामले में अपीलार्थी है, कर्नाटक उच्च न्यायालय की धारवाड़ सर्किट न्यायपीठ के समक्ष चुनौती दी गई थी । उच्च न्यायालय ने मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा दावेदारों को अधिनिर्णीत रकम की पुष्टि कर दी । ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड ने वर्तमान अपील के माध्यम से मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण और उच्च न्यायालय द्वारा पारित उन आदेशों

को चुनौती दी है जिनके द्वारा मृतक के आश्रितों को मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 166 के अधीन प्रतिकर अधिनिर्णीत किया गया था । उच्चतम न्यायालय द्वारा इंश्योरेंस कंपनी की अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस न्यायालय के समक्ष सफल होने के लिए अपीलार्थी के लिए यह साबित करना आवश्यक होगा कि प्रत्यर्थी-दावेदारों ने कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 के अधीन प्रतिकर की ईप्सा करने संबंधी अपने विकल्प का प्रयोग किया था और इसलिए वे एक बार फिर मोटर यान अधिनियम, 1988 के उपबंधों के अधीन प्रतिकर की ईप्सा करने से प्रवारित थे । क्योंकि जब ऐसे किसी विकल्प का प्रयोग किया गया है केवल तभी मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 167 के उपबंध दावेदारों को मोटर यान अधिनियम, 1988 के अधीन प्रतिकर की ईप्सा करने से निर्हकित करेंगे । (पैरा 7)

कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 की धारा 8 की उपधारा (1) से उपधारा (3) तक में इस बारे में किसी संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है कि जब कोई कर्मकार अपने नियोजन के दौरान किन्हीं ऐसी क्षतियों से ग्रस्त हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो जाती है तब नियोजक को संदेय प्रतिकर कर्मकार प्रतिकर आयुक्त के पास जमा कराना होगा । नियोजक द्वारा सीधे आश्रितों को किया गया संदाय प्रतिकर का विधिमान्य संवितरण नहीं माना जाता है । धारा 8 में परिकल्पित प्रक्रिया का अवलंब केवल नियोजक द्वारा कर्मकार प्रतिकर आयुक्त के पास प्रतिकर जमा कराने के लिए लिया जा सकता है । कर्मकार प्रतिकर आयुक्त के पास (नियोजक द्वारा) इस प्रकार स्वप्रेरणा से प्रतिकर का निक्षेप करने के परिणामस्वरूप आयुक्त संबंधित कर्मचारी के आश्रितों को उपर्युक्त धारा 8 की उपधारा (4) के अधीन उसके समक्ष उपस्थित होने के लिए समन कर सकेगा (या नहीं कर सकेगा) । ऐसे प्रतिकर के लिए आश्रितों की हकदारी के बारे में अपना समाधान कर लेने के पश्चात् आयुक्त से यह अपेक्षित है कि वह कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 की धारा 8 की उपधारा (5) से उपधारा (9) तक के अधीन उसके न्यायसंगत प्रभाजन का आदेश करे । अतिशेष, यदि कोई हों, नियोजक को वापस किया जाना होगा । इसके विपरीत, जहां किसी नियोजक ने, कर्मचारी को ऐसी क्षतियां पहुंचने के बावजूद, जिनके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई थी, किसी कर्मचारी या उसके आश्रितों को प्रतिकर का संदाय करने के लिए स्वप्रेरणा से कार्रवाई संस्थित नहीं की है वहां ऐसे कर्मचारी के आश्रित कर्मकार प्रतिकर

अधिनियम, 1923 की धारा 10 के अधीन प्रतिकर के लिए दावा करने के लिए स्वतंत्र हैं । धारा 10 की उपधारा (1) में ऐसा दावा करने के लिए परिसीमा अवधि घटना (या मृत्यु) की तारीख से दो वर्ष विहित की गई है । कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 की धारा 10 की शेष उपधाराएं ऐसा दावा करने के लिए प्रक्रिया संबंधी अन्य अपेक्षाओं को निरूपित करती हैं । (पैरा 9 और 10)

यह स्पष्ट रूप से प्रकट होता है पत्तन न्यास ने मृतक के आश्रितों को प्रतिकर का संदाय करने के लिए कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 की धारा 8 के अधीन स्वप्रेरणा से कार्यवाहियां संस्थित की थीं । पत्तन न्यास ने उपर्युक्त प्रयोजन के लिए तारीख 4 नवम्बर, 2003 को कर्मकार प्रतिकर आयुक्त के पास 3,26,140/- रुपए की राशि जमा की थी । तत्पश्चात्, कर्मकार प्रतिकर आयुक्त ने दावेदारों (मृतक के आश्रितों) को सूचना जारी करने के बाद सुनवाई की तारीख 20 अप्रैल, 2004 नियत की । उपर्युक्त तारीख को मृतक की विधवा का कथन अभिलिखित किया गया था और इसके पश्चात् कर्मकार प्रतिकर आयुक्त ने तारीख 29 अप्रैल, 2004 के आदेश द्वारा 3,26,140/- रुपए की राशि के उन्मोचन का निदेश दिया था जो कि मृतक की विधवा और उसकी पुत्रियों के बीच निश्चित अनुपात में बांटी जानी थी । (पैरा 11)

प्रस्तुत मामले में जिस विवाद्यक का निर्धारण किया जाना है वह यह है कि क्या उपर्युक्त प्रतिकर को प्रतिगृहीत करना कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 के अधीन प्रतिकर की ईप्सा करने के संबंध में दावेदारों द्वारा अपने विकल्प का प्रयोग करने की कोटि में आएगा । उपर्युक्त धारा 8 के अधीन प्रक्रिया नियोजक के आदेश पर स्वप्रेरणा से आरंभ की जाती है और इसलिए इसे आश्रितों/दावेदारों द्वारा कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 के उपबंधों के अधीन प्रतिकर की ईप्सा करने के लिए विकल्प का प्रयोग करना नहीं समझा जा सकता है । यह स्थिति तब भिन्न होती यदि आश्रितों ने कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 की धारा 10 के अधीन प्रतिकर के लिए दावा किया होता । उक्त दशा में, निश्चित रूप से प्रतिकर दावेदारों के कहने पर (और विकल्पानुसार) आश्रितों को संदत्त किया जाएगा । दूसरे शब्दों में, यदि दावेदारों ने कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 की धारा 10 के अधीन आवेदन फाइल किया होता तो उनके बारे में यह समझा गया होता कि उन्होंने कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के उपबंधों के अधीन प्रतिकर की ईप्सा करने संबंधी अपने विकल्प का प्रयोग किया है । यह कहना

पर्याप्त है कि प्रस्तुत प्रत्यर्थियों-दावेदारों द्वारा उपर्युक्त धारा 10 के अधीन कभी भी ऐसा कोई आवेदन फाइल नहीं किया गया था । मामले को इस दृष्टि से देखते हुए, यह नहीं कहा जा सकता है कि चूंकि प्रत्यर्थी-दावेदारों ने कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 की धारा 10 के अधीन प्रतिकर की ईप्सा करने संबंधी अपने विकल्प का कभी प्रयोग नहीं किया था इसलिए उनके बारे में यह नहीं समझा जा सकता है कि वे मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 166 के अधीन प्रतिकर की ईप्सा करने से प्रवारित हो गए थे । हालांकि उपर्युक्त अवधारण से वर्तमान विवाद्यक का अंत हो जाता है तथापि, यदि कोई अस्पष्टता है तो उसका समाधान भी प्रस्तुत मामले में स्वीकृत तथ्यात्मक स्थिति के आधार पर किया जा सकता है । मृतक की मृत्यु के कारण प्रत्यर्थी-दावेदारों की ओर से प्रतिकर की ईप्सा करने संबंधी प्रथम कार्यवाही तारीख 30 मई, 2003 को मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 166 के अधीन दावा याचिका फाइल करके की गई थी । उपर्युक्त दावा याचिका प्रत्यर्थी-दावेदारों की ओर से प्रतिकर के लिए किया गया प्रथम दावा था । यदि अपीलार्थी द्वारा उद्भूत प्रश्न का अवधारण मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 167 के प्रति निर्देश से किया जाना है तो वह प्रत्यर्थी-दावेदारों द्वारा तारीख 30 मई, 2003 को फाइल किए गए उपर्युक्त दावा आवेदन के आधार पर अवधारित किया जाना चाहिए । पत्तन न्यास द्वारा प्रत्यर्थी-दावेदारों को संदाय करने के लिए कर्मकार प्रतिकर आयुक्त के पास काफी समय बाद तारीख 4 नवम्बर, 2003 को प्रतिकर निक्षिप्त किया गया था । उपर्युक्त निक्षेप प्रत्यर्थी-दावेदारों के कहने पर नहीं किया गया था बल्कि वह कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 की धारा 8 के अधीन नियोजक (पत्तन न्यास) के एकपक्षीय स्वप्रेरणा से किए गए अवधारण पर आधारित था । कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 के अधीन पत्तन न्यास द्वारा आरंभ की गई कार्यवाहियों में मृतक की विधवा ने प्रथम बार तारीख 20 अप्रैल, 2004 को भाग लिया था । कर्मकार आयुक्त द्वारा समन किए जाने पर उसने तारीख 20 अप्रैल, 2004 को आयुक्त के समक्ष कथन अभिलिखित कराया था । किन्तु उस तारीख से बहुत पहले, उसने (तथा अन्य दावेदारों ने) तारीख 30 मई, 2003 को मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 166 के अधीन दावा याचिका पहले ही फाइल कर दी थी । उपर्युक्त धारा 166 के अधीन उपर्युक्त दावा आवेदन फाइल करना उसका (तथा मृतक के अन्य आश्रितों का) मोटर यान अधिनियम, 1988 के अधीन प्रतिकर की ईप्सा करने का विकल्प गठित करता है । मामले को इस दृष्टि

से देखने पर, मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण और उच्च न्यायालय द्वारा किए गए अवधारण को अभिपुष्ट किया जाता है जिसके द्वारा दावेदारों को 11,44,440/- रुपए का प्रतिकर अधिनिर्णीत किया गया था । मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण तथा उच्च न्यायालय ने भी उसमें से 3,26,140/- रुपए की राशि (जो कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 के अधीन दावेदारों को संदत्त की जा चुकी है) काटने का निदेश दिया था । उक्त कटौती से मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 167 को पूर्ण प्रभाव मिल जाता है चूंकि इससे प्रत्यर्थी-दावेदारों को प्रथम बार प्रयोग किए गए विकल्प के आधार पर अधिनियमिति के अधीन प्रतिकर अधिनिर्णीत हो जाता है और यह भी सुनिश्चित हो जाता है कि प्रत्यर्थी-दावेदारों को दो अधिनियमितियों के अधीन दोहरा फायदा अनुज्ञात न किया जाए । (पैरा 12,13 और 14)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2006] (2006) 2 एस. सी. सी. 641 :
नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम **मस्तान और एक अन्य** । 6

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2013 की सिविल अपील सं. 937.

2009 की प्रकीर्ण प्रथम अपील सं. 20108 (मोटर यान) में कर्नाटक उच्च न्यायालय की धारवाड़ सर्किट न्यायपीठ के तारीख 14 सितम्बर, 2011 के निर्णय और आदेशों के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री एम. के. दुआ और किशोर रावल

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री डी. पी. चतुर्वेदी और एस. एन. भट्ट

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति जगदीश सिंह खेहर ने दिया ।

न्या. खेहर – यलगुरदप्पा बी. गौडर मरमुगांव पत्तन न्यास, मरमुगांव (जिसे संक्षेप में 'पत्तन न्यास' कहा गया है) के यांत्रिकी इंजीनियरी विभाग में पम्प प्रचालक के रूप में नियोजित था और ओल्ड पावर हाउस में तैनात था । तारीख 19 अप्रैल, 2003 को दूसरी पारी के दौरान अपनी उपर्युक्त हैसियत में अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते समय मोटर साइकिल पर, जिसका रजिस्ट्रीकरण सं. जीए 02 एल 8479 था, पीछे वाली सीट पर सवारी करते समय उसे एक टिप्पर ने, जिसका रजिस्ट्रीकरण सं. टीएम 07 वी 4548 था, टक्कर मार दी । उक्त दुर्घटना में यलगुरदप्पा को पहुंची

क्षति के परिणामस्वरूप उसकी घटनास्थल पर ही मृत्यु हो गई । उपर्युक्त टिप्पर ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी, अर्थात् इस मामले में अपीलार्थी के पास बीमाकृत था ।

2. प्रस्तुत संविवाद में सबसे महत्वपूर्ण तथ्यात्मक पहलू यह है कि विधवा दयामावा यलगुरदप्पा और यलगुरदप्पा बी. गौडर के आश्रितों ने तारीख 30 मई, 2003 को मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 166 के अधीन एक दावा याचिका फाइल की । मृतक यलगुरदप्पा बी. गौडर की विधवा और उसके बालकों ने उपर्युक्त दावा याचिका के माध्यम से उस मोटर दुर्घटना के कारण, जिसके अनुक्रम में दावेदारों के पति/पिता ने अपनी जान गवां दी थी, प्रतिकर की ईप्सा की ।

3. इस संबंध में कोई विवाद नहीं है कि पत्तन न्यास ने कर्मकार प्रतिकर आयुक्त, गोवा को तारीख 4 नवम्बर, 2003 को एक संसूचना भेजी जिसके द्वारा उसे इसमें इसके ऊपर निर्दिष्ट मोटर दुर्घटना की सूचना दी गई । पत्तन न्यास ने उपर्युक्त सूचना के साथ-साथ कर्मकार प्रतिकर आयुक्त के पास प्रतिकर के रूप में 3,26,140/- रुपए जमा कराए जो कि मृतक यलगुरदप्पा बी. गौडर के आश्रितों को कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 के अधीन संदत्त किए जाने थे । उपर्युक्त सूचना (तथा प्रतिकर निक्षेप) प्राप्त होने के परिणामस्वरूप, कर्मकार प्रतिकर आयुक्त ने मृतक यलगुरदप्पा बी. गौडर के आश्रितों को एक सूचना जारी की । मृतक के आश्रितों को सूचना की तामील हो जाने के परिणामस्वरूप यलगुरदप्पा बी. गौडर के आश्रितों को प्रतिकर के वितरण से संबंधित मामले की सुनवाई तारीख 20 अप्रैल, 2004 के लिए नियत की गई थी । तारीख 20 अप्रैल, 2004 को मृतक यलगुरदप्पा बी. गौडर की विधवा दयामावा यलगुरदप्पा कर्मकार प्रतिकर आयुक्त के समक्ष उपस्थित हुई और आयुक्त द्वारा उसका कथन लेखबद्ध कर लिया गया था । उसने अपने कथन में यह स्वीकार किया कि उसके पति की मृत्यु पत्तन न्यास के नियोजन में कार्य करते समय एक मोटर दुर्घटना में हो गई थी । उसने अभिलेख पर यह तथ्य भी लेखबद्ध कराया कि उसके दो पुत्र और एक पुत्री हैं और वे भी मृतक के आश्रित हैं । उसने अपने कथन के आधार पर पत्तन न्यास द्वारा कर्मकार प्रतिकर आयुक्त के पास जमा कराए गए प्रतिकर के उन्मोचन की प्रार्थना की । चूंकि यलगुरदप्पा बी. गौडर की विधवा दयामावा यलगुरदप्पा द्वारा किए गए दावे का नियोजक द्वारा विरोध नहीं किया गया था इसलिए पत्तन न्यास द्वारा कर्मकार प्रतिकर आयुक्त के पास जमा की गई 3,26,140/-

रुपए की रकम मुख्यतः यलगुरदप्पा बी. गौडर की विधवा दयामावा यलगुरदप्पा को और भागतः मृतक यलगुरदप्पा बी. गौडर की पुत्री को दिए जाने का आदेश कर दिया गया था । उपर्युक्त रकम में से पुत्री को 50,000/- रुपए की राशि का हकदार ठहराया गया था । तारीख 29 अप्रैल, 2004 का आदेश इस मामले के अभिलेख पर उपलब्ध है । उसके सुसंगत उद्धरण को इसके नीचे प्रोद्धृत किया जाता है जिससे इसमें इसके ऊपर वर्णित तथ्यात्मक स्थिति पूर्णतः साबित होती है : –

> "विरोधी पक्षकार मरमुगांव पत्तन न्यास ने तारीख 4 नवम्बर, 2013 के अपने पत्र द्वारा यह सूचित किया था कि श्री गौडर यलगुरदप्पा, भूतपूर्व पम्प प्रचालक की, जो ओल्ड पावर हाउस पर तैनात था, तारीख 19 अप्रैल, 2003 को दूसरी पारी में कार्य करते समय टिप्पर ट्रक के साथ दुर्घटना हो गई थी और उसमें पहुंची क्षतियों के कारण उसकी मृत्यु हो गई थी । प्रबंध-मंडल ने आगे यह उल्लेख किया कि मृतक कर्मचारी की जन्म तारीख 1 अप्रैल, 1956 थी और मृत्यु के समय उसका मासिक वेतन 9,276/- रुपए था और कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 के निबंधनों के अनुसार उन्होंने इस कार्यालय में मृतक कर्मचारी के आश्रितों को संदत्त किए जाने वाले प्रतिकर मद्धे 3,26,140/- रुपए की रकम जमा करा दी थी ।
>
> पक्षकारों को सूचना की तामील की गई थी और सुनवाई तारीख 20 अप्रैल, 2004 के लिए नियत की गई थी । तारीख 20 अप्रैल, 2004 को सुनवाई के अनुक्रम में आवेदक ने यह कथन किया कि वह मृतक यलगुरदप्पा गौडर की पत्नी है । उसका पति मरमुगांव पत्तन न्यास के यांत्रिकी इंजीनियरी विभाग में पम्प प्रचालक के रूप में कार्य कर रहा था । तारीख 19 अप्रैल, 2003 को उसके पति की एक दुर्घटना में मृत्यु हो गई । उसे एक ट्रक ने टक्कर मार दी और उसकी क्षतियों के कारण मृत्यु हो गई । उसकी घटनास्थल पर ही मृत्यु हो गई । उसके अलावा उसके दो पुत्र, अर्थात्, श्री बालप्पा वाई. गौडर और श्री बासवराज वाई. गौडर, जिनकी आयु क्रमशः 21 वर्ष और 19 वर्ष है, और एक पुत्री सुश्री यलवा वाई. गौडर, जिसकी आयु 20 वर्ष है, उसके पति की कमाई पर आश्रित थे । उसने आगे यह कथन किया कि उसे इस बात की जानकारी है कि विरोधी पक्षकार ने इस प्राधिकरण के पास 3,26,140/- रुपए की रकम जमा कराई है जो कि उसके अनुसार कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के

अनुसार उचित रूप से निकाली गई रकम है । उसने यह प्रार्थना की कि उक्त रकम कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अनुसार उसे और उसके बालकों को दी जाए ।

विरोधी पक्षकार के प्रतिनिधि श्री एस. वी. वेरेकर, श्रम अधिकारी ने, जो कि तारीख 20 अप्रैल, 2004 को सुनवाई के दौरान उपस्थित था, आवेदक की प्रतिपरीक्षा नहीं करनी चाही ।

सुनवाई के अनुक्रम में प्रस्तुत किए गए अभिलेख और इस तथ्य को सत्यापित करने के पश्चात् कि विरोधी पक्षकार ने प्रतिकर संदत्त करने संबंधी दायित्व को स्वीकार करते हुए रकम जमा कराई थी, मैं मृतक यलगुरदप्पा गौडर के आश्रितों को निम्नलिखित रीति में प्रतिकर संदत्त करने का आदेश करता हूं :

.....।"

परिणामस्वरूप, कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 के अधीन उपर्युक्त प्रतिकर यलगुरदप्पा बी. गौडर की विधवा और पुत्री को उन्मोचित कर दिया गया था ।

4. कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 के अधीन अवधारित प्रतिकर के अलावा, दयामावा यलगुरदप्पा द्वारा मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 166 के अधीन किया गया दावा भी मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, बागलकोट द्वारा अलग से अवधारित किया गया था । उक्त मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण ने तारीख 15 जुलाई, 2008 के अधिनिर्णय द्वारा दावेदारों को 11,44,440/- रुपए का प्रतिकर अधिनिर्णीत किया । मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण ने उपर्युक्त प्रतिकर में से 3,26,140/- रुपए की कटौती करने का आदेश किया (अर्थात् वह रकम जो कर्मकार प्रतिकर आयुक्त द्वारा तारीख 29 अप्रैल, 2004 के आदेश द्वारा दावेदारों को वितरित कर दी गई थी) । मामले को इस दृष्टि से देखने पर दावेदारों को 8,18,300/- रुपए की राशि के उन्मोचन का आदेश किया गया था ।

5. मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, बागलकोट द्वारा तारीख 15 जुलाई, 2008 को पारित आदेश को ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड द्वारा, जो कि इस मामले में अपीलार्थी है, कर्नाटक उच्च न्यायालय की धारवाड़ सर्किट न्यायपीठ (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'उच्च न्यायालय' कहा गया है) के समक्ष चुनौती दी गई थी । उच्च न्यायालय ने तारीख 14 सितम्बर,

2011 के अपने आदेश द्वारा मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, बागलकोट द्वारा दावेदारों को अधिनिर्णीत रकम की पुष्टि कर दी । ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड ने वर्तमान अपील के माध्यम से मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, बागलकोट और उच्च न्यायालय द्वारा पारित क्रमशः तारीख 15 जुलाई, 2008 और तारीख 14 सितम्बर, 2011 के उन आदेशों को चुनौती दी है जिनके द्वारा यलगुरदप्पा बी. गौडर के आश्रितों को मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 166 के अधीन प्रतिकर अधिनिर्णीत किया गया था ।

6. अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा दी गई चुनौती मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 167 पर आधारित है जिसे इसके नीचे उद्धृत किया जा रहा है : –

> "167. **कतिपय मामलों में प्रकार के लिए दावों के बारे में विकल्प** – जहां किसी व्यक्ति की मृत्यु या उसे हुई शारीरिक क्षति से इस अधिनियम के अधीन तथा कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 (1923 का 8) के अधीन भी प्रतिकर के लिए दावा उद्भूत होता है वहां प्रतिकर पाने का हकदार व्यक्ति कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 में किसी बात के होते हुए भी ऐसे प्रतिकर के लिए, अध्याय 10 के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, दावा उन दोनों अधिनियमों में से किसी एक के अधीन कर सकेगा, दोनों के अधीन नहीं कर सकेगा ।"

अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउन्सेल ने बलपूर्वक यह दलील दी है कि प्रत्यर्थियों को कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 के अधीन प्रतिकर अधिनिर्णीत किया गया था और इसलिए वे मोटर यान अधिनियम, 1988 के अधीन प्रतिकर के लिए दावा करने से प्रवारित थे । ऊपर उद्धृत धारा 167 का अवलंब लेते हुए यह इंगित किया जाता है कि दावेदारों के पास इस बात का विकल्प उपलब्ध था कि वे या तो कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 के अधीन या मोटर यान अधिनियम, 1988 के अधीन प्रतिकर की ईप्सा करें । विद्वान् काउन्सेल के अनुसार, दावेदारों ने कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 के अधीन प्रतिकर की ईप्सा करने के उक्त विकल्प का प्रयोग किया । इस संबंध में यह उल्लेख किया गया था कि चूंकि दावेदारों ने कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 के अधीन प्रतिकर स्वीकार कर लिया था इसलिए वे मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 167 द्वारा मोटर यान अधिनियम, 1988 के अधीन प्रतिकर (उसी दुर्घटना के कारण) की ईप्सा

करने से प्रवारित हो गए थे । उपर्युक्त निवेदन के समर्थन में अपीलार्थी-बीमा कंपनी के विद्वान् काउन्सेल ने इस न्यायालय द्वारा **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **मस्तान और एक अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय का अवलंब लिया है । उसमें अभिलिखित निम्नलिखित मताभिव्यक्तियों का विशेष रूप से अवलंब लिया गया है :–

> "33. मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 165 के निबंधनों के अनुसार दावा अधिकरण की स्थापना होने पर किसी मोटर दुर्घटना के शिकार व्यक्ति के पास उस अधिनियम की धारा 166 के निबंधनानुसार प्रतिकर के लिए आवेदन करने का अधिकार है । दावा अधिकरण की स्थापना होने पर मोटर दुर्घटना से उद्भूत होने वाले प्रतिकर के दावे को ग्रहण करने संबंधी सिविल न्यायालय की अधिकारिता उस अधिनियम की धारा 175 द्वारा छीन ली गई है । जब तक अधिकरण की स्थापना नहीं की गई थी, तब तक दावा सिविल न्यायालय के माध्यम से अपकृत्य में दावे के रूप में प्रवर्तित कराना होता था । मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण की अधिकारिता की अनन्यता मोटर यान अधिनियम की धारा 167 द्वारा एक दृष्टांत में छीन ली गई है जब वह दावा कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 के अंतर्गत भी आ सकता है । उस धारा में यह उपबंध है कि किसी मोटर दुर्घटना से उद्भूत होने वाली मृत्यु या शारीरिक क्षति जिससे कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन उस प्रतिकर के लिए दावा भी उद्भूत हो सकता है जो उस अधिनियम के अधीन प्राधिकारियों के माध्यम से प्रवर्तित कराया जा सकता है वहां उस निमित्त विकल्प आहत व्यक्ति या उसके प्रतिनिधि के पास होता है । किन्तु धारा 167 में यह स्पष्ट किया गया है कि वह दावा दोनों अधिनियमों के अधीन नहीं किया जा सकता है । दूसरे शब्दों में, ऐसे दावेदार के पास, जो किसी मोटर यान दुर्घटना के कारण मोटर यान अधिनियम, 1988 और कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, दोनों के अधीन प्रतिकर का दावा करने का हकदार बनता है, दोनों में से किसी एक अधिनियम के अधीन संबंधित पीठ के समक्ष कार्यवाही करने का विकल्प प्राप्त है । विधान-मंडल ने दावे को दोनों अधिनियमों में से किसी एक के अधीन

---

[1] (2006) 2 एस. सी. सी. 641.

प्राधिकरण या अधिकरण तक सीमित करके, जहां तक दावेदार का संबंध है, उपचारों के चयन की संकल्पना समाविष्ट की है । दूसरे शब्दों में, उसे यह विकल्प अपनाना होता है कि क्या वह अपना दावा मोटर यान अधिनियम, 1988 के अधीन या कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 के अधीन करे । इस धारा में इस बात पर जोर देना कि कोई दावा दोनों अधिनियमों के अधीन नहीं किया जा सकता है, प्रतिकर का दावा करने की स्कीम में समाविष्ट चयन के सिद्धांत की पुनरावृत्ति है । यह सिद्धांत कि 'जहां किसी मुकदमेबाज के पास ऐसे दो अनुकल्पी अधिकरणों में से किसी में भी आवेदन करने का विकल्प उपलब्ध हो, जिनमें से प्रत्येक को विवादग्रस्त मामले के संबंध में अधिकारिता हो और वह अपने उपचार के लिए इन अधिकरणों में से एक अधिकरण के मुकाबले दूसरे अधिकरण का अवलंब लेता है तो वह अपने विरोधी के मुकाबले बाद वाले अधिकरण में कोई पश्चात्वर्ती अवलंब लेने के लिए प्रवारित हो जाता है', [देखिए आर. वी. इवान्स (1854) 3 ई. एंड बी. 363] मोटर यान अधिनियम की धारा 167 की स्कीम में पूर्णतः सम्मिलित किया गया है जिसके द्वारा उस दावेदार को, जिसने कर्मकार प्रतिकर अधिनियम का अवलंब लिया है मोटर यान अधिनियम के उपबंधों का, उसमें अनुज्ञात सीमित विस्तार के सिवाय अवलंब लेने से प्रवारित किया गया है । चूंकि दावेदार ने कर्मकार प्रतिकर अधिनियम का अवलंब लिया था इसलिए वह केवल मोटर यान अधिनियम की धारा 167 में मान्यताप्राप्त अपवाद के अधीन रहते हुए उस अधिनियम के उपबंधों द्वारा नियंत्रित है ।

34. मोटर यान अधिनियम की धारा 167 की भाषा के आधार पर और उपचार के विकल्प के सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन कार्यवाही करने का विकल्प अपनाने वाला दावेदार मोटर यान अधिनियम की धारा 167 द्वारा जो कुछ विनिर्दिष्ट रूप से व्यावृत्त है उससे भिन्न मोटर यान अधिनियम, 1988 के किसी उपबंध का अवलंब नहीं ले सकता या उससे प्रेरणा नहीं ले सकता है । अधिनियम की धारा 167 कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन भी किसी दावेदार को मोटर यान अधिनियम, 1988 के अध्याय 10 के उपबंधों का अवलंब लेने का अधिकार प्रदान करती है । मोटर यान अधिनियम, 1988 का अध्याय 10 किसी दुर्घटना की दशा में 'त्रुटि न होने' के रूप में ज्ञात दायित्व के संबंध

> में है । मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 140 यान के स्वामी पर उसमें नियत प्रतिकर का संदाय करने का दायित्व अधिरोपित करती है भले ही यान के चालक या स्वामी के विरुद्ध त्रुटि न होना साबित हो जाता है । धारा 141 और धारा 142 त्रुटि न होने संबंधी दायित्व के आधार पर विशिष्ट दावों के संबंध में हैं और धारा 143 में उस बात पर पुनः बल दिया गया है जिस पर अधिनियम की धारा 67 द्वारा जोर दिया गया है कि मोटर यान अधिनियम, 1988 के अध्याय 10 के उपबंध तब भी लागू होंगे भले ही दावा कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन किया जाता है । अधिनियम की धारा 144 द्वारा मोटर यान अधिनियम, 1988 के अध्याय 10 के उपबंधों को अध्यारोही प्रभाव दिया गया है ।"

इसमें इसके ऊपर उद्धृत मताभिव्यक्तियों के आधार पर अपीलार्थी के विद्वान् काउन्सेल की यह प्रबल दलील थी कि चूंकि प्रत्यर्थी-दावेदारों ने कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 के अधीन प्रतिकर स्वीकार कर लिया है इसलिए उनके बारे में यह समझा जाना चाहिए कि उन्होंने कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 के अधीन प्रतिकर की ईप्सा करने संबंधी अपने विकल्प का प्रयोग किया है । इस प्रकार वे पुनः मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 166 के अधीन प्रतिकर की ईप्सा नहीं कर सकेंगे ।

7. इस न्यायालय के समक्ष सफल होने के लिए अपीलार्थी के लिए यह साबित करना आवश्यक होगा कि प्रत्यर्थी-दावेदारों ने कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 के अधीन प्रतिकर की ईप्सा करने संबंधी अपने विकल्प का प्रयोग किया था और इसलिए वे एक बार फिर मोटर यान अधिनियम, 1988 के उपबंधों के अधीन प्रतिकर की ईप्सा करने से प्रवारित थे । क्योंकि जब ऐसे किसी विकल्प का प्रयोग किया गया है केवल तभी मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 167 के उपबंध दावेदारों को मोटर यान अधिनियम, 1988 के अधीन प्रतिकर की ईप्सा करने से निर्हकित करेंगे ।

8. अपीलार्थी के विद्वान् काउन्सेल की ओर से जिस मुद्दे पर बहस की गई है उससे उद्भूत होने वाली विधिक तथा तथ्यात्मक स्थिति का अवधारण करने के लिए हमारे लिए कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 की धारा 8 और धारा 10 की परिधि और विस्तार का अवधारण करना आवश्यक है । उपर्युक्त उपबंधों को तदनुसार इसके नीचे उद्धृत किया जा रहा है :–

"**8. प्रतिकर का वितरण** – (1) किसी ऐसे कर्मकार के बारे में, जिसकी मृत्यु क्षति के परिणामस्वरूप हो गई है, प्रतिकर का कोई भी संदाय और किसी स्त्री को या विधिक निर्योग्यता के अधीन व्यक्ति को प्रतिकर के रूप में एकमुश्त राशि का कोई संदाय आयुक्त के पास निक्षेप करने से अन्यथा नहीं किया जाएगा, और सीधे नियोजक द्वारा कर दिए गए किसी ऐसे संदाय के बारे में यह न समझा जाएगा कि वह प्रतिकर का संदाय है :

परन्तु मृत कर्मकार की दशा में नियोजक किसी भी आश्रित को ऐसे कर्मकार की तीन मास की मजदूरी के बराबर रकम का अभिदाय प्रतिकर मद्धे कर सकेगा और उतनी रकम, जितनी उस आश्रित को संदेय प्रतिकर से अधिक न हो, ऐसे प्रतिकर में से आयुक्त द्वारा काट ली जाएगी और नियोजक को प्रतिसंदत्त कर दी जाएगी ।

(2) दस रुपए से अन्यून कोई अन्य ऐसी राशि, जो प्रतिकर के रूप में संदेय है, उस नियुक्ति के लिए, जो उसका हकदार है, आयुक्त के पास निक्षिप्त की जा सकेगी ।

(3) आयुक्त के पास निक्षिप्त किसी प्रतिकर के संबंध में आयुक्त की रसीद पर्याप्त उन्मोचन होगी ।

(4) आयुक्त किसी मृत कर्मकार के बारे में प्रतिकर के रूप में उपधारा (1) के अधीन किसी धन के निक्षेप पर, यदि वह आवश्यक समझे तो आश्रितों को ऐसी तारीख को, जिसे वह प्रतिकर का वितरण अवधारित करने के लिए नियत करे, अपने समक्ष उपसंजात होने के लिए अपेक्षित करने वाली सूचना का प्रकाशन या हर एक आश्रित पर उसकी तामील ऐसी रीति में कराएगा जैसी यह उचित समझे । यदि आयुक्त का समाधान किसी ऐसी जांच के पश्चात्, जिसे वह आवश्यक समझे, हो जाता है कि कोई भी आश्रित विद्यमान नहीं है तो वह उस धन का अतिशेष उस नियोजक को, जिसके द्वारा वह संदत्त किया गया था, प्रतिसंदत्त कर देगा । आयुक्त, किए गए सभी संवितरणों को विस्तारपूर्वक दर्शित करते हुए एक विवरण नियोजक को आवेदन पर देगा ।

(5) किसी मृत कर्मकार के बारे में निक्षिप्त प्रतिकर, उपधारा (4) के अधीन की गई किसी कटौती के अध्यधीन रहते हुए, मृत कर्मकार के आश्रितों में या उनमें से किन्हीं में ऐसे अनुपात में, जिसे

आयुक्त ठीक समझे, प्रभाजित कर दिया जाएगा या आयुक्त के स्वविवेकानुसार किसी एक आश्रित को आबंटित किया जा सकेगा ।

(6) जहां कि आयुक्त के पास निक्षिप्त किया गया कोई प्रतिकर किसी व्यक्ति को संदेय है वहां आयुक्त वह धन उसके हकदार व्यक्ति को उस दशा में जिसमें कि वह व्यक्ति जिससे प्रतिकर संदेय है स्त्री या विधिक निर्योग्यता के अधीन व्यक्ति नहीं है, देगा और अन्य दशाओं में दे सकेगा ।

(7) जहां कि आयुक्त के पास निक्षिप्त कोई एकमुश्त राशि किसी स्त्री या विधिक निर्योग्यता के अधीन व्यक्ति को संदेय है, वहां, ऐसी राशि उस स्त्री के या ऐसे व्यक्ति की निर्योग्यता के दौरान उस व्यक्ति के फायदे के लिए ऐसी रीति से, जैसी आयुक्त द्वारा निर्दिष्ट की जाए, विनिहित की जा सकेगी, उपयोजित की जा सकेगी या अन्यथा बरती जा सकेगी, और जहां कि विधिक निर्योग्यता के अधीन व्यक्ति को कोई अर्धमासिक संदाय संदेय है वहां, आयुक्त स्वप्रेरणा से या इस निमित्त अपने को किए गए किसी आवेदन पर, यह आदेश दे सकेगा कि संदाय उस निर्योग्यता के दौरान कर्मकार के किसी आश्रित को या किसी अन्य ऐसे व्यक्ति को, जिसे आयुक्त कर्मकार के कल्याणार्थ उपबंध करने के लिए सबसे अधिक उपयुक्त समझे, किया जाए ।

(8) जहां कि इस निमित्त अपने को किए गए किसी आवेदन पर या अन्यथा आयुक्त का समाधान हो जाता है कि प्रतिकर के रूप में दी गई किसी राशि के वितरण के संबंध में, या उस रीति के संबंध में, जिसमें ऐसे किसी आश्रित को संदेय कोई राशि विनिहित की जानी, उपयोजित की जानी या अन्यथा बरती जानी है, आयुक्त के आदेश में फेरफार, किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा, जो माता या पिता है संतान की उपेक्षा के कारण, या किसी आश्रित की परिस्थितियों में फेरफार के कारण, या किसी अन्य पर्याप्त हेतुक से किया जाना चाहिए वहां, आयुक्त पूर्ववर्ती आदेश में फेरफार के लिए ऐसे आदेश कर सकेगा, जैसे वह मामले की परिस्थितियों में न्यायसंगत समझे :

परन्तु किसी व्यक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला ऐसा कोई भी आदेश तब तक न किया जाएगा जब तक कि उस व्यक्ति को इस बात का हेतुक दर्शित करने के लिए अवसर न दे दिया गया हो

कि ऐसा आदेश क्यों न किया जाए, और न वह किसी ऐसी दशा में किया जाएगा, जिसमें कि उस आदेश में आश्रित द्वारा किसी ऐसी राशि का प्रतिसंदाय अंतर्वलित होता हो जो उस आश्रित को पहले ही संदत्त की जा चुकी है ।

(9) जहां कि आयुक्त किसी आदेश में उपधारा (8) के अधीन इस तथ्य के कारण फेरफार करता है कि व्यक्ति को प्रतिकर का संदाय कपट, प्रतिरूपण या अन्य अनुचित साधनों द्वारा अभिप्राप्त किया गया है, वहां ऐसे व्यक्ति को या उस निमित्त इस प्रकार दी गई कोई रकम आगे धारा 31 में उपबंधित रीति से वसूल की जा सकेगी ।

* * * * *

10. सूचना और दावा – (1) प्रतिकर के लिए कोई भी दावा तब तक आयुक्त द्वारा ग्रहण नहीं किया जाएगा जब तक कि दुर्घटना की सूचना उसके घटित होने के पश्चात् यथासाध्य शीघ्र उस रीति से, जो इसमें इसके पश्चात् उपबंधित की गई है, न दे दी गई हो और जब तक कि दावा दुर्घटना होने के दो वर्ष के भीतर या मृत्यु हो जाने की दशा में, मृत्यु की तारीख से दो वर्ष के भीतर, उसके समक्ष कर न दिया गया हो :

परन्तु जहां कि दुर्घटना ऐसे रोग का लगना है, जिसके संबंध में धारा 3 की उपधारा (2) के उपबंध लागू होते हैं वहां, दुर्घटना के बारे में यह समझा जाएगा कि वह उन दिनों में से पहले दिन को हुई थी, जिनके दौरान कर्मकार उस रोग द्वारा कारित निःशक्तता के परिणामस्वरूप काम पर से निरन्तर अनुपस्थित रहा था :

परन्तु यह भी कि ऐसा कोई रोग लगने के कारण हुई ऐसी आंशिक निःशक्तता की दशा में, जो कर्मकार को काम से अनुपस्थित रहने के लिए मजबूर नहीं करती, दो वर्ष की कालावधि की गणना उस दिन से की जाएगी जिसको कर्मकार निःशक्तता की सूचना अपने नियोजक को देता है :

परन्तु यह भी कि यदि कोई कर्मकार, जो किसी नियोजन में, धारा 3 की उपधारा (2) के अधीन उस नियोजन के संबंध में विनिर्दिष्ट निरन्तर कालावधि के लिए नियोजित किए जा चुकने पर,

इस प्रकार नियोजित नहीं रह जाता और उस नियोजन में विशिष्टतः होने वाले किसी उपजीविकाजन्य रोग के लक्षण नियोजन की समाप्ति से दो वर्ष के भीतर उसमें विकसित हो जाते हैं, दुर्घटना उस दिन हुई समझी जाएगी जिस दिन उन लक्षणों का पता पहले पहल चला था :

परन्तु यह भी कि –

(क) यदि दावा कर्मकार की ऐसी दुर्घटना के परिणामस्वरूप हुई मृत्यु के बारे में किया गया है जो नियोजक के परिसर में या किसी ऐसे स्थान में हुई थी, जहां कर्मकार दुर्घटना के समय नियोजक या उसके द्वारा नियोजित किसी व्यक्ति के नियंत्रण के अधीन काम कर रहा था और कर्मकार ऐसे परिसर में, या ऐसे स्थान में, या नियोजक के किसी परिसर में मरा था, या उस परिसर या स्थान का, जहां दुर्घटना हुई थी, सामीप्य छोड़े बिना मरा था, अथवा

(ख) यदि नियोजक को या कई नियोजकों में से किसी एक को, या व्यवसाय या कारबार की किसी ऐसी शाखा के प्रबंध के लिए जिसमें क्षत कर्मकार नियोजित था, नियोजक के प्रति उत्तरदायी किसी व्यक्ति को दुर्घटना का ज्ञान किसी अन्य स्रोत से, उस समय या उस समय के आसपास हो गया था, जब वह दुर्घटना हुई थी,

तो सूचना का अभाव या उसमें कोई त्रुटि या अनियमितता दावे को ग्रहण किए जाने के लिए वर्जन न होगी :

परन्तु यह भी कि इस बात के होते हुए भी कि इस उपधारा में यथा उपबंधित सम्यक् समय के भीतर सूचना नहीं दी गई है या दावा नहीं किया गया है, आयुक्त किसी भी मामले में, प्रतिकर के किसी भी दावे को उस दशा में ग्रहण और विनिश्चित कर सकेगा, जिसमें उसका समाधान हो जाए कि, यथास्थिति, वैसे सूचना देने या दावा करने में असफलता पर्याप्त हेतुक से हुई थी ।

(2) ऐसी हर सूचना में क्षत व्यक्ति का नाम और पता दिया होगा और सरल भाषा में क्षति का कारण और वह तारीख जिसको दुर्घटना हुई, कथित होगी और उसकी तामील नियोजक पर या कई नियोजकों में से किसी एक पर, या व्यवसाय या कारबार की किसी

ऐसी शाखा के, जिसमें क्षत कर्मकार नियोजित था, प्रबंध के लिए नियोजक के प्रति उत्तरदायी किसी व्यक्ति पर की जाएगी ।

(3) राज्य सरकार यह अपेक्षा कर सकेगी कि विहित वर्ग के नियोजक अपने परिसर में, जिसमें कर्मकार नियोजित है, विहित प्ररूप में एक सूचना-पुस्तक रखेंगे जिस तक परिसर में नियोजित किसी भी क्षत कर्मकार की या सद्भावपूर्वक उसकी ओर से कार्य करने वाले किसी भी व्यक्ति की सभी युक्तियुक्त समयों पर आसानी से पहुंच हो सकेगी ।

(4) इस धारा के अधीन सूचना की तामील, उस व्यक्ति के, जिस पर उसकी तामील की जानी है, निवास-स्थान या किसी कार्यालय या कारबार के स्थान में परिदत्त करके या उस पते पर रजिस्ट्रीकृत डाक से भेजकर, या जहां कि सूचना-पुस्तक रखी जानी है वहां सूचना-पुस्तक में प्रविष्टि करके, की जा सकेगी ।"

9. ऊपर उद्धृत धारा 8 की उपधारा (1) से उपधारा (3) तक में इस बारे में किसी संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है कि जब कोई कर्मकार अपने नियोजन के दौरान किन्हीं ऐसी क्षतियों से ग्रस्त हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो जाती है तब नियोजक को संदेय प्रतिकर कर्मकार प्रतिकर आयुक्त के पास जमा कराना होगा । नियोजक द्वारा सीधे आश्रितों को किया गया संदाय प्रतिकर का विधिमान्य संवितरण नहीं माना जाता है । कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 की धारा 8 में परिकल्पित प्रक्रिया का अवलंब केवल नियोजक द्वारा कर्मकार प्रतिकर आयुक्त के पास प्रतिकर जमा कराने के लिए लिया जा सकता है । कर्मकार प्रतिकर आयुक्त के पास (नियोजक द्वारा) इस प्रकार स्वप्रेरणा से प्रतिकर का निक्षेप करने के परिणामस्वरूप आयुक्त संबंधित कर्मचारी के आश्रितों को उपर्युक्त धारा 8 की उपधारा (4) के अधीन उसके समक्ष उपस्थित होने के लिए समन कर सकेगा (या नहीं कर सकेगा) । ऐसे प्रतिकर के लिए आश्रितों की हकदारी के बारे में अपना समाधान कर लेने के पश्चात् आयुक्त से यह अपेक्षित है कि वह कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 की धारा 8 की उपधारा (5) से उपधारा (9) तक के अधीन उसके न्यायसंगत प्रभाजन का आदेश करे । अतिशेष, यदि कोई हों, नियोजक को वापस किया जाना होगा ।

10. उपर्युक्त के विपरीत, जहां किसी नियोजक ने, कर्मचारी को ऐसी क्षतियां पहुंचने के बावजूद, जिनके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई थी,

किसी कर्मचारी या उसके आश्रितों को प्रतिकर का संदाय करने के लिए स्वप्रेरणा से कार्रवाई संस्थित नहीं की है वहां ऐसे कर्मचारी के आश्रित कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 की धारा 10 के अधीन प्रतिकर के लिए दावा करने के लिए स्वतंत्र हैं । धारा 10 की उपधारा (1) में ऐसा दावा करने के लिए परिसीमा अवधि घटना (या मृत्यु) की तारीख से दो वर्ष विहित की गई है । कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 की धारा 10 की शेष उपधाराएं ऐसा दावा करने के लिए प्रक्रिया संबंधी अन्य अपेक्षाओं को निरुपित करती हैं ।

11. उपर्युक्त उपबंधों का परिशीलन करने और उनके प्रभाव का निर्धारण करने के पश्चात् यह स्पष्ट रूप से प्रकट होता है कि पत्तन न्यास ने मृतक यलगुरदप्पा बी. गौडर के आश्रितों को प्रतिकर का संदाय करने के लिए कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 की धारा 8 के अधीन स्वप्रेरणा से कार्यवाहियां संस्थित की थीं । पत्तन न्यास ने उपर्युक्त प्रयोजन के लिए तारीख 4 नवम्बर, 2003 को कर्मकार प्रतिकर आयुक्त के पास 3,26,140/- रुपए की राशि जमा की थी । तत्पश्चात्, कर्मकार प्रतिकर आयुक्त ने दावेदारों (मृतक यलगुरदप्पा बी. गौडर के आश्रितों) को सूचना जारी करने के बाद सुनवाई की तारीख 20 अप्रैल, 2004 नियत की । उपर्युक्त तारीख को यलगुरदप्पा बी. गौडर की विधवा, अर्थात् दयामावा यलगुरदप्पा का कथन अभिलिखित किया गया था और इसके पश्चात् कर्मकार प्रतिकर आयुक्त ने तारीख 29 अप्रैल, 2004 के आदेश द्वारा 3,26,140/- रुपए की राशि के उन्मोचन का निदेश दिया था जो कि मृतक की विधवा और उसकी पुत्रियों के बीच निश्चित अनुपात में बांटी जानी थी ।

12. हमारे द्वारा जिस विवाद्यक का निर्धारण किया जाना है वह यह है कि क्या उपर्युक्त प्रतिकर को प्रतिगृहीत करना कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 के अधीन प्रतिकर की ईप्सा करने के संबंध में दावेदारों द्वारा अपने विकल्प का प्रयोग करने की कोटि में आएगा । उपर्युक्त धारा 8 (जैसी कि ऊपर अवेक्षा की गई है) के अधीन प्रक्रिया नियोजक के आदेश पर स्वप्रेरणा से आरंभ की जाती है और इसलिए हमारी राय में इसे आश्रितों/दावेदारों द्वारा कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 के उपबंधों के अधीन प्रतिकर की ईप्सा करने के लिए विकल्प का प्रयोग करना नहीं समझा जा सकता है । यह स्थिति तब भिन्न होती यदि आश्रितों ने कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 की धारा 10 के अधीन प्रतिकर के लिए दावा किया होता । उक्त दशा में, निश्चित रूप से प्रतिकर दावेदारों के कहने पर (और विकल्पानुसार)

आश्रितों को संदत्त किया जाएगा । दूसरे शब्दों में, यदि दावेदारों ने कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 की धारा 10 के अधीन आवेदन फाइल किया होता तो उनके बारे में यह समझा गया होता कि उन्होंने कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के उपबंधों के अधीन प्रतिकर की ईप्सा करने संबंधी अपने विकल्प का प्रयोग किया है । यह कहना पर्याप्त है कि प्रस्तुत प्रत्यर्थियों-दावेदारों द्वारा उपर्युक्त धारा 10 के अधीन कभी भी ऐसा कोई आवेदन फाइल नहीं किया गया था । मामले को इस दृष्टि से देखते हुए, यह नहीं कहा जा सकता है कि चूंकि प्रत्यर्थी-दावेदारों ने कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 की धारा 10 के अधीन प्रतिकर की ईप्सा करने संबंधी अपने विकल्प का कभी प्रयोग नहीं किया था इसलिए उनके बारे में यह नहीं समझा जा सकता है वे मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 166 के अधीन प्रतिकर की ईप्सा करने से प्रवारित हो गए थे ।

13. हालांकि उपर्युक्त अवधारण से वर्तमान विवाद्यक का अंत हो जाता है तथापि, यदि कोई अस्पष्टता है तो उसका समाधान भी प्रस्तुत मामले में स्वीकृत तथ्यात्मक स्थिति के आधार पर किया जा सकता है । यलगुरदप्पा बी. गौडर की मृत्यु के कारण प्रत्यर्थी-दावेदारों की ओर से प्रतिकर की ईप्सा करने संबंधी प्रथम कार्यवाही तारीख 30 मई, 2003 को मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 166 के अधीन दावा याचिका फाइल करके की गई थी । उपर्युक्त दावा याचिका प्रत्यर्थी-दावेदारों की ओर से प्रतिकर के लिए किया गया प्रथम दावा था । यदि अपीलार्थी द्वारा उद्भूत प्रश्न का अवधारण मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 167 के प्रति निर्देश से किया जाना है तो वह प्रत्यर्थी-दावेदारों द्वारा तारीख 30 मई, 2003 को फाइल किए गए उपर्युक्त दावा आवेदन के आधार पर अवधारित किया जाना चाहिए । पत्तन न्यास द्वारा प्रत्यर्थी-दावेदारों को संदाय करने के लिए कर्मकार प्रतिकर आयुक्त के पास काफी समय बाद तारीख 4 नवम्बर, 2003 को प्रतिकर निक्षिप्त किया गया था । उपर्युक्त निक्षेप, जैसी कि ऊपर अवेक्षा की गई है, प्रत्यर्थी-दावेदारों के कहने पर नहीं किया गया था बल्कि वह कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 की धारा 8 के अधीन नियोजक (पत्तन न्यास) के एकपक्षीय स्वप्रेरणा से किए गए अवधारण पर आधारित था । कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 के अधीन पत्तन न्यास द्वारा आरंभ की गई कार्यवाहियों में दयामावा यलगुरदप्पा ने प्रथम बार तारीख 20 अप्रैल, 2004 को भाग लिया था । कर्मकार आयुक्त द्वारा समन किए जाने पर उसने तारीख 20 अप्रैल, 2004 को आयुक्त के समक्ष कथन

अभिलिखित कराया था । किन्तु उस तारीख से बहुत पहले, उसने (तथा अन्य दावेदारों ने) तारीख 30 मई, 2003 को मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 166 के अधीन दावा याचिका पहले ही फाइल कर दी थी । हमारी राय में, उपर्युक्त धारा 166 के अधीन उपर्युक्त दावा आवेदन फाइल करना उसका (तथा मृतक के अन्य आश्रितों का) मोटर यान अधिनियम, 1988 के अधीन प्रतिकर की ईप्सा करने का विकल्प गठित करता है । वर्तमान निष्कर्ष से पुनः वर्तमान अपीलार्थी द्वारा मोटर यान अधिनियम, 1988 के अधीन उद्भूत प्रश्न का उसी रीति में उत्तर मिल जाएगा जैसा कि ऊपर पहले ही अवधारित किया जा चुका है ।

14. मामले को इस दृष्टि से देखने पर, हम मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, बागलकोट और उच्च न्यायालय द्वारा किए गए अवधारण को अभिपुष्ट करते हैं जिसके द्वारा दावेदारों को 11,44,440/- रुपए का प्रतिकर अधिनिर्णीत किया गया था । मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, बागलकोट तथा उच्च न्यायालय ने भी उसमें से 3,26,140/- रुपए की राशि (जो कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 के अधीन दावेदारों को संदत्त की जा चुकी है) काटने का निदेश दिया था । उक्त कटौती से मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 167 को पूर्ण प्रभाव मिल जाता है चूंकि इससे प्रत्यर्थी-दावेदारों को प्रथम बार प्रयोग किए गए विकल्प के आधार पर अधिनियमिति के अधीन प्रतिकर अधिनिर्णीत हो जाता है और यह भी सुनिश्चित हो जाता है कि प्रत्यर्थी-दावेदारों को दो अधिनियमितियों के अधीन दोहरा फायदा अनुज्ञात न किया जाए ।

15. इसमें इसके ऊपर अभिलिखित कारणों से हमें वर्तमान अपील में कोई सार प्रतीत नहीं होता है । उच्च न्यायालय द्वारा दिया गया निर्णय अभिपुष्ट किया जाता है । तदनुसार वर्तमान अपील खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

ग्रो.

———

[2013] 4 उम. नि. प. 188

गौडप्पा और अन्य

बनाम

कर्नाटक राज्य

11 मार्च, 2013

न्यायमूर्ति ए. के. पटनायक और न्यायमूर्ति चंद्रमौली कुमार प्रसाद

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 और धारा 34 – हत्या – सामान्य आशय – एक से अधिक व्यक्तियों द्वारा अपराध कारित किया जाना – दोषसिद्धि के लिए संपूर्ण परिस्थितियों पर विचार करने की आवश्यकता – सामान्य आशय का निष्कर्ष, अपराध की रीति, अपराध के पूर्व और पश्चात् अभियुक्त का आचरण, आहत व्यक्तियों की क्षतियों की प्रकृति को विचार में लेकर निकाला जाना चाहिए, इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कि क्या अभियुक्तों का ऐसा अपराध कारित करने का आशय था या नहीं, संपूर्ण परिस्थितियों पर विचार किया जाना चाहिए ।

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 और धारा 34 – हत्या – सामान्य आशय – अपराध सामान्य आशय को अग्रसर करने में कारित किया गया है या नहीं, उस मामले में प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के आधार पर विनिश्चित किया जाता है अभियुक्त-अपीलार्थियों के विरुद्ध अपराध साबित होने पर उनकी दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील खारिज की गई ।

इस मामले में कुल मिलाकर पांच अभियुक्तों का विचारण किया गया है । विचारण न्यायालय ने दो अभियुक्तों को आरोपों से मुक्त कर दिया और उनमें से दो अभियुक्तों को दंड संहिता की धारा 109 के साथ पठित धारा 304 भाग II के अधीन दोषी ठहराया है तथा पांचवें अभियुक्त को दंड संहिता की धारा 304, भाग II के अधीन दोषसिद्ध किया है । दोषसिद्ध किए गए अभियुक्तों ने कर्नाटक उच्च न्यायालय के समक्ष अपील की । उच्च न्यायालय ने अपने आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा दोषमुक्ति के निर्णय को अपास्त कर दिया और सभी अभियुक्तों को दंड संहिता की धारा 143 और 148 के अधीन दोषी ठहराया । ऐसे अभियुक्त जिन्हें दंड संहिता की धारा 109 के साथ पठित धारा 304 भाग II के अधीन दोषी ठहराया गया था उन्हें इसके बजाय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन दोषसिद्ध किया । इस निर्णय से व्यथित होकर गौडप्पा, चन्नप्पा **उर्फ** अजप्पा और महादेवप्पा ने दोषसिद्धि और दंडादेश से व्यथित होकर उच्चतम

न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय ने दी गई परस्पर विरोधी दलीलों पर विचार किया है । सामान्यतया, प्रत्येक व्यक्ति उसके द्वारा किए गए आपराधिक कार्य के लिए जिम्मेदार है । किसी भी व्यक्ति को किसी स्वतंत्र कार्य के लिए या अन्य किसी व्यक्ति द्वारा कारित किए गए अपराध के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है । आपराधिक दायित्व का सिद्धांत यह है कि वह व्यक्ति जो अपराध करता है वही उस अपराध के लिए जिम्मेदार होता है और केवल उसे ही दोषी ठहराया जा सकता है । तथापि, दंड संहिता की धारा 34 इस सिद्धांत का एक अपवाद है । इसके अधीन आपराधिक कार्य करने के संबंध में संयुक्त दायित्व का सिद्धांत अधिकथित किया गया है । इस दायित्व का मुख्य सार सामान्य आशय में पाया जाता है जिसके आधार पर अभियुक्त ऐसे आशय को अग्रसर करने में आपराधिक कार्य करता है । यह धारा अनेक व्यक्तियों द्वारा किए गए अलग-अलग कार्यों, एक जैसे कार्यों या प्रतिकूल कार्यों के संबंध में है यदि वे कार्य सामान्य उद्देश्य को अग्रसर करने में किए गए हैं । ऐसी स्थिति में, प्रत्येक व्यक्ति सभी कार्यों के परिणाम के लिए इस प्रकार जिम्मेदार होगा मानो स्वयं उसी ने वह कार्य किया हो । इस प्रकार, दंड संहिता की धारा 34 के अधीन संयुक्त आपराधिक दायित्व का सिद्धांत अधिकथित किया गया है जो कि मात्र साक्ष्य का नियम है किन्तु इससे सारभूत अपराध सृजित नहीं होता है । अतः, किया गया अपराध सामान्य आशय का ऐसा परिणाम है कि प्रत्येक व्यक्ति ने उस कार्य में भाग लिया हो, तब ऐसे सामान्य आशय से वह व्यक्ति कारित किए गए अपराध के लिए जिम्मेदार होगा भले ही उसकी अपराध में भूमिका कुछ भी रही हो । सामान्य आशय का अर्थ कैसे लगाया जाए ? सामान्य आशय का अर्थ अपराध कारित किए जाने की रीति, अपराध के पूर्व और पश्चात् अभियुक्त के आचरण, अपराध करने के इरादे और संबंध, अभियुक्त द्वारा धारण किए गए हथियार और एक या अधिक आहत व्यक्तियों की क्षतियों की प्रकृति से भी लगाया जा सकता है । अतः, इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कि क्या अभियुक्तों का ऐसा अपराध कारित करने का आशय था या नहीं जिसके लिए उन्हें दोषसिद्ध किया जा सकता है, संपूर्ण परिस्थितियों पर विचार किया जाना चाहिए । (पैरा 16)

न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया कि प्रत्येक मामले के अपने अलग तथ्य होते हैं और एक मामले के तथ्यों की मात्र समानता के आधार पर अन्य किसी मामले के तथ्यों का निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है ।

अपराध सामान्य आशय को अग्रसर करने में कारित किया गया है या नहीं, उस मामले में प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के मूल्यांकन के आधार पर विनिश्चित किया जाता है और एक मामले के तथ्यों की समानता के आधार पर अन्य किसी मामले के तथ्यों का सुनिश्चित निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है । इस प्रकार, ऐसे प्रश्न का उत्तर उसी मामले के तथ्यों के आधार पर ही दिया जाना चाहिए । (पैरा 19)

अवलंबित निर्णय

पैरा

[1955] ए. आई. आर. 1955 एस. सी. 216 :
पांडुरंग बनाम **हैदराबाद राज्य** । 19

निर्दिष्ट निर्णय

[2004] (2004) 11 एस. सी. सी. 305 :
रमेश सिंह बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** ; 15

[1999] (1999) 8 एस. सी. सी. 555 :
रामाशीष यादव बनाम **बिहार राज्य** । 14

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2007 की दांडिक अपील सं. 229.

2000 की दांडिक अपील सं. 59 और 1999 की दांडिक अपील सं. 879 में कर्नाटक उच्च न्यायालय, के तारीख 28 जुलाई, 2006 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री बसावा प्रभू एस. पाटिल (वरिष्ठ अधिवक्ता), बी. सुब्रमण्य प्रसाद, अनिरुध संगानेरिया, वेंकटकृष्णा कुन्दुरू और आर. डी. उपाध्याय

प्रत्यर्थी की ओर से सुश्री अनिता शिनॉय

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति चन्द्रमौली कुमार प्रसाद ने दिया ।

न्या. प्रसाद – अपीलार्थी सं. 1 अर्थात् गौडप्पा (अभियुक्त 3), अपीलार्थी सं. 2 अर्थात् चन्नप्पा **उर्फ** अजप्पा (अभियुक्त 4) और अपीलार्थी सं. 3 अर्थात् महादेवप्पा (अभियुक्त 5) ने दोषसिद्धि और दंडादेश से व्यथित होकर न्यायालय की इजाजत द्वारा यह अपील की है ।

2. कुल मिलाकर पांच भाइयों अर्थात् बसप्पा, विपक्षप्पा, गौडप्पा,

चन्नप्पा **उर्फ** अजप्पा और महादेवप्पा का विचारण भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में 'दंड संहिता' कहा गया है) की धारा 149 के साथ पठित धारा 143, 148, 452, 341, 302, 427, 504 और 506 के अधीन अपराधों के लिए किया गया । विचारण न्यायालय ने बसप्पा (अभियुक्त 1) और विपक्षप्पा (अभियुक्त 2) को सभी आरोपों से दोषमुक्त कर दिया । तथापि, गौडप्पा (अभियुक्त 3) और चन्नप्पा **उर्फ** अजप्पा (अभियुक्त 4) को दंड संहिता की धारा 109 के साथ पठित धारा 304, भाग II के अधीन दोषी ठहराया और एक वर्ष का साधारण कारावास भोगने का दंडादेश दिया । महादेवप्पा (अभियुक्त 5) को दंड संहिता की धारा 304, भाग II के अधीन दोषसिद्ध किया गया है और पांच वर्ष का कठोर कारावास भोगने के लिए दंडादिष्ट किया । तथापि, उन्हें अन्य सभी आरोपों से दोषमुक्त कर दिया ।

3. कर्नाटक राज्य ने उपर्युक्त दोनों अभियुक्तों की दोषमुक्ति के आदेश से व्यथित होकर और अन्य तीन अभियुक्तों की दोषसिद्धि धारा 302 के अधीन किए जाने के बजाय केवल धारा 304, भाग II के अधीन किए जाने से व्यथित होकर, अपील फाइल की और उन अभियुक्तों ने भी उच्च न्यायालय के समक्ष अलग से अपील फाइल की जिन्हें दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया गया था । दोनों अपीलों की एक साथ सुनवाई की गई और एक ही निर्णय द्वारा उनका निपटारा किया गया । उच्च न्यायालय ने अपने आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा दोषमुक्ति के निर्णय को अपास्त कर दिया और सभी अभियुक्तों को दंड संहिता की धारा 143 और 148 के अधीन दोषी ठहराया तथा एक हजार रुपए के जुर्माने का संदाय करने के लिए दंडादिष्ट किया जिसका व्यतिक्रम किए जाने के लिए भी कारावास से दंडादिष्ट किया । ऐसे अभियुक्त जिन्हें दंड संहिता की धारा 109 के साथ पठित धारा 304 भाग II के अधीन दोषी ठहराया गया है उन्हें इसके बजाय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन दोषसिद्ध किया गया है और जुर्माने में व्यतिक्रम किए जाने के दंड के साथ आजीवन कारावास भोगने के लिए दंडादिष्ट किया गया है ।

4. अपराध का कारण मृतक चन्नप्पा और कलावती (बसप्पा अर्थात् अभियुक्त 1 की पुत्री) के बीच वैवाहिक विवाद है । सभी अभियुक्त भाई हैं और कर्नाटक राज्य के जिला धारवाड के ग्राम नवलूर के निवासी हैं । कलावती का विवाह मृतक चन्नप्पा से हुआ था और वह भी उसी ग्राम में रहता था और दोनों के मकान एक-दूसरे से सौ फुट की दूरी पर स्थित थे । कलावती और चन्नप्पा का विवाह 5 मई, 1996 को हुआ था । पति-पत्नी के बीच संबंध सौहार्द नहीं थे और अभियोजन पक्ष के अनुसार, ग्राम के

बुजुर्गों ने पंचायत बैठाई जिसमें कलावती के पिता अर्थात् बसप्पा (अभियुक्त 1) ने एक वचनपत्र (प्रदर्श पी 6) निष्पादित किया कि वह अपनी पुत्री को समझाएगा यदि भविष्य में कोई भी अप्रिय घटना घटित होती हो तो अन्य किसी भी व्यक्ति को दोष नहीं देगा । तथापि, इस बात से भी वैवाहिक शांति और सौहार्द कायम नहीं रहा तथा कलावती बिना किसी को बताए वैवाहिक गृह छोड़कर चली गई । कलावती के इस कार्य को उसके पति चन्नप्पा ने पसंद नहीं किया और उसने कलावती को उसके वैवाहिक गृह में आने पर रोक लगा दी । इस प्रकार सभी अभियुक्तों के मन में चन्नप्पा के प्रति दुर्भावना पैदा हो गई ।

5. अभियोजन पक्ष के अनुसार, 9 जनवरी, 1998 को लगभग 9.30 बजे अपराह्न में मृतक चन्नप्पा उसका भाई मंजूनाथा (अभि. सा. 1), माता सिदव्वा (अभि. सा. 2) और सिद्दवा का पौत्र मंजूनाथ (अभि. सा. 3) टेलीविजन देख रहे थे । मृतक चन्नप्पा उस समय पान खा रहा था और घर से बाहर थूकने के लिए आया । अभियुक्त बसप्पा उसे यह कहते हुए गालियां देने लगा कि वह उसकी पुत्री को साथ रखने में असफल रहा है, जिस पर सभी अभियुक्त घर में घुस आए और गौडप्पा (अभियुक्त 3) तथा चन्नप्पा **उर्फ** अजप्पा (अभियुक्त 4) ने मृतक को दबोच लिया और महादेवप्पा (अभियुक्त 5) ने उसके वक्ष के बाईं ओर जंबिया से घोंप कर वार किया । वार इतना तीव्र था कि वह मृतक के हृदय और यकृत को बेध गया । अभियोजन पक्ष ने यह भी अभिकथन किया है कि बसप्पा (अभियुक्त 1) ने मकान के द्वार पर पथराव किया था और विपक्षप्पा (अभियुक्त 2) ने मकान के मुख्य द्वार को कुल्हाड़ी से क्षतिग्रस्त किया । मंजूनाथा (अभि. सा. 1) सिदव्वा (अभि. सा. 2) और मंजूनाथ (अभि. सा. 3) ने यह दावा किया है कि उन्होंने घटना देखी है । मंजूनाथा (अभि. सा. 1) ने पुलिस नियंत्रण कक्ष को संदेश भेजा और उपचार के लिए डा. शमसुद्दीन कासिमसाब जमादार (अभि. सा. 18) को बुलाया किन्तु गंभीर रक्तस्राव देखकर चिकित्सक ने आहत को सरकारी अस्पताल भेजने की सलाह दी । जब आहत को अस्पताल भेजने का प्रबंध किया जा रहा था, तब पुलिस कांस्टेबल शशिधर (अभि. सा. 24), पुलिस थाना विद्यागिरि के पुलिस उप निरीक्षक सिदप्पा अरेर (अभि. सा. 27) और अन्य दो पुलिस कांस्टेबल घटनास्थल पर आए और आहत को सिविल अस्पताल धारवाड पहुंचाया गया । चिकित्सक द्वारा उसकी परीक्षा की गई और उसे मृत घोषित कर दिया गया । मंजूनाथा (अभि. सा. 1) ने मनप्पा सिदप्पा अरेर को रिपोर्ट दी जिसके आधार पर दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित

धारा 143, 147, 148, 323, 427, 452, 302, 504 और 506 के अधीन 1998 का अपराध मामला सं. 14 रजिस्ट्रीकृत किया गया ।

6. औपचारिक अन्वेषण किए जाने के पश्चात् पुलिस ने आरोपपत्र प्रस्तुत किया और अंततः पांचों अभियुक्तों को विचारण के लिए सेशन न्यायालय को सुपुर्द कर दिया । विचारण न्यायालय ने दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 143, 148, 452, 341, 302, 427, 504 और 506 के अधीन आरोप विरचित किए । अभियुक्तों ने दोषी न होने का अभिवाक् किया और विचारण किए जाने की मांग की । अभियोजन पक्ष ने आरोपों को साबित करने के लिए कुल मिलाकर 28 साक्षियों की परीक्षा की है और बहुत से दस्तावेज (प्रदर्श पी 1 से पी 2) तथा तात्विक वस्तुएं (एम ओ 1 से एम ओ 14) प्रदर्शित किए हैं । उपर्युक्त साक्षियों में से मंजूनाथा (अभि. सा. 1) सिदव्वा (अभि. सा. 2) और मंजूनाथ (अभि. सा. 3) ने घटना के प्रत्यक्षदर्शी साक्षी होने का दावा किया है । डा. राजशेकरा ने मृतक के शव का शव परीक्षण किया है । अभियुक्त ने अपनी प्रतिरक्षा में अभियोजन के अभिकथनों से पूर्णतया इनकार किया है और उन्होंने कोई भी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है । मंजूनाथा (अभि. सा. 1) सिदव्वा (अभि. सा. 2) और मंजूनाथ (अभि. सा. 3) का सुसंगत साक्ष्य है कि बसप्पा अर्थात् अभियुक्त 1 की पुत्री कलावती और उसके पति अर्थात् मृतक चन्नप्पा के बीच संबंध तनावपूर्ण थे और अभियुक्त ने अभियोजन वृत्तांत के इस भाग को वास्तविक रूप से स्वीकार किया है । मंजूनाथा (अभि. सा. 1) ने अपने साक्ष्य में यह कथन दिया है कि जब वह अन्य दो प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों अर्थात् सिदव्वा (अभि. सा. 2) और मंजूनाथ (अभि. सा. 3) तथा मृतक चन्नप्पा के साथ टेलीविजन देख रहा था, तब सभी अभियुक्त गौडप्पा अर्थात् अभियुक्त 3 के मकान में इकट्ठा हो गए और वे गालियां दे रहे थे । इस साक्षी के अनुसार, मृतक चन्नप्पा को पान खाने की आदत थी, अतः वह मकान के बाहर थूकने गया था । उस समय बसप्पा (अभियुक्त 1) ने उसे यह कहते हुए गाली दी कि वह उसकी पुत्री के साथ वैवाहिक जीवन बिताने के लिए योग्य नहीं है । इसके तुरंत पश्चात् सभी अभियुक्त मकान में घुस आए । उस समय विपक्षप्पा (अभियुक्त 2) कुल्हाड़ी से लैस था और महादेवप्पा (अभि. सा. 5) के पास जंबिया थी । इस साक्षी के अनुसार, गौडप्पा (अभियुक्त 3) और चन्नप्पा **उर्फ** अजप्पा (अभियुक्त 4) ने मृतक चन्नप्पा को दबोच लिया जब कि महादेवप्पा (अभियुक्त 5) ने मृतक के वक्ष पर जंबिया से हमला किया । यह

भी कथन किया गया है कि बसप्पा (अभियुक्त 1) ने द्वार पर पथराव किया था तथा विपक्षप्पा (अभियुक्त 2) ने कुल्हाड़ी से मुख्य द्वार को क्षतिग्रस्त किया था । इस साक्षी ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह स्वीकार किया है कि मृतक चन्नप्पा सहित वे सभी मकान के अंदर थे और उस समय टेलीविजन देख रहे थे जब अभियुक्त अपने मकान के सामने आए थे और यह घटना मकान के अंदर घटित हुई थी । इस साक्षी ने यह भी स्वीकार किया है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में उसने मकान और गली में घटना के समय बिजली की रोशनी की उपलब्धता के संबंध में उल्लेख नहीं किया है ।

7. सिदव्वा (अभि. सा. 2) जो मृतक की माता है, ने अपने साक्ष्य में यह कथन किया है कि सभी अभियुक्त उनके मकान पर आए थे, चूंकि मृतक कलावती को पत्नी के रूप में अपने साथ रखने के लिए सहमत नहीं हो रहा था इसलिए उन्होंने गालियां दीं और दुष्परिणामों की धमकी दी । इस साक्षी ने यह भी कथन किया है कि गौडप्पा (अभियुक्त 3) और चन्नप्पा **उर्फ** अजप्पा (अभियुक्त 4) ने मृतक के हाथों को दबोच लिया था और महादेवप्पा (अभियुक्त 5) ने मृतक के वक्ष पर जंबिया से वार किया था । मंजूनाथ (अभि. सा. 3) अर्थात् सिदव्वा (अभि. सा. 2) के पौत्र का साक्ष्य अन्य दो प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साक्ष्य जैसा है । इस साक्षी ने अपने प्रतिपरीक्षा में यह कथन किया है कि मृतक चन्नप्पा उस समय मकान के भीतर था, जब अभियुक्त घटनास्थल पर आए थे ।

8. डा. राजशेकरा (अभि. सा. 6) ने मृतक चन्नप्पा के शव का शवपरीक्षण किया और उन्होंने उसके शरीर पर निम्न बाह्य क्षतियां पाई हैं :–

> "1. वक्ष के बाईं ओर छिद्रमय घाव है जो पर्शुकान्तर सं. 2, 3 और 4 पर मध्य का संधि के नीचे 3 इंच की दूरी पर है और अक्षक (कंठास्थि) का दो तिहाई भाग मध्य रेखा से 3 इंच की दूरी पर क्षतिग्रस्त है ।"

9. चिकित्सक ने शव में निम्नलिखित आंतरिक क्षतियां भी पाईं :–

> "करोटि का विच्छेदन करने पर मस्तिष्क पीले रंग का दिखाई देता है । वक्ष के परीक्षा करने पर उरो-पर्शुकीय संधि से 3 इंच की दूरी पर बाईं ओर द्वितीय पसली में अस्थिभंग मौजूद है । फुप्फुसावरण घाव में जाकर खुलता है जिसका वर्णन ऊपर किया गया है । फुप्फुसावरण में लगभग 1000 मिलीलीटर रक्त मौजूद है जिसमें रक्त के कुछ थक्के भी बने हुए हैं ।

कंठनाल और श्वासनली अविकृत हैं और उनका रंग पीला है ।

फेफड़े अविकृत और पीले हैं । फुप्फुसावरण हृदय के बाएं उत्कोष्ठ पर जाकर खुलता है ।

बाएं उत्कोष्ठ पर छिद्रमय घाव है जिसकी माप 1.5 इंच x 1.0 इंच है और उत्कोष्ठ के किनारों पर रक्त का थक्का जमा हुआ है और इसका रंग लाल है ।"

10. अपीलार्थियों की ओर से वरिष्ठ अधिवक्ता श्री बसावा प्रभू एस. पाटिल और प्रत्यर्थी कर्नाटक राज्य की ओर से सुश्री अनिता शिनॉय हाजिर हुई हैं ।

11. श्री पाटिल ने यह दलील दी है कि मंजूनाथा (अभि. सा. 1), सिदव्वा (अभि. सा. 2) और मंजूनाथ (अभि. सा. 3) ने घटना के प्रत्यक्षदर्शी साक्षी होने का दावा किया है और यह बात कि उन्होंने यह घटना देखी है खारिज किए जाने योग्य है क्योंकि उनके अपने साक्ष्य के अनुसार वे घटना के समय मकान के पडासले में टेलीविजन देख रहे थे जबकि घटना मकान के अंदर मुख्य द्वार के निकट घटित हुई है । इस संबंध में, उन्होंने हमारा ध्यान स्थलनक्शे की ओर दिलाया है और यह इंगित किया है कि जिस स्थान पर ये साक्षी टेलीविजन देख रहे थे, वहां से वह स्थान दिखाई नहीं देता है जहां पर मृतक पर हमला किया गया था । तथापि, सुश्री शिनॉय ने यह दलील दी है कि जिस मकान में घटना घटित हुई है वह एक छोटा मकान है और घटनास्थल तथा पडासले (जहां पर साक्षी टेलीविजन देख रहे थे) के बीच की दूरी मुश्किल से 20 फीट है । काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि अभियुक्तों के मकान में प्रवेश करने के पश्चात् उन्होंने मृतक चिन्नप्पा को देखा और मृतक ने शोर मचाया जिससे साक्षियों का ध्यान उस ओर गया और वे घटनास्थल पर आ गए और इस प्रकार उन्होंने घटना देखी ।

12. हमने परस्पर विरोधी दलीलों पर विचार किया है और हमें सुश्री शिनॉय की दलील में सार दिखाई देता है । प्रश्नगत मकान एक छोटा-सा मकान है और घटनास्थल जहां पर साक्षी टेलीविजन देख रहे थे और घटनास्थल की बीच की दूरी लगभग 20 फीट है । इसके अतिरिक्त, मृतक चन्नप्पा ने शोर मचाया जिससे उनका ध्यान उस ओर गया और इस प्रकार उनके इस दावे को इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है कि वे घटना के प्रत्यक्षदर्शी साक्षी हैं ।

13. इसके पश्चात् श्री पाटिल ने यह दलील दी है कि अभियोजन

साक्षियों के साक्ष्य के अनुसार जब मृतक थूकने के लिए मकान के बाहर आया, तब तक घटना घटित हो चुकी थी, शव मकान के अंदर पड़ा हुआ पाया गया था, अतः अभियोजन पक्ष सभी युक्तियुक्त संदेहों के परे घटनास्थल को साबित नहीं कर सका है श्री पाटिल के अनुसार अभियोजन पक्ष का सुसंगत पक्षकथन यह है कि मृतक अन्य प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साथ पडासले में टेलीविजन देख रहा था और मृतक पर उस समय हमला किया गया था जब वह थूकने के लिए मकान के बाहर आया था । इस संबंध में, काउंसेल ने हमारा ध्यान स्थलनक्शे की ओर दिलाया है जिसमें मकान और घटनास्थल के ब्योरे दिए गए हैं । श्री पाटिल के अनुसार इस बात से यह स्पष्ट हो जाता है कि घटना मकान के अन्दर घटित हुई है । हमें श्री पाटिल की दलील में कोई सार दिखाई नहीं देता है और यह खारिज किए जाने योग्य है । इस दलील का मूल्यांकन करने के लिए यह ध्यान में रखना चाहिए कि जहां घटना घटित हुई है वह मकान एक छोटा-सा मकान है और शव मुख्य द्वार के भीतर सात फीट की दूरी पर पाया गया है । अभियोजन साक्षियों का यह सुसंगत साक्ष्य है कि मृतक चन्नप्पा पान खा रहा था और वह मकान के बाहर थूकने के लिए आया था और उस समय बसप्पा (अभियुक्त 1) ने उसे यह कहते हुए गाली दी कि वह उसकी पुत्री को रखने में असफल रहा है जिस पर सभी अभियुक्त मकान में घुस आए और अपराध कारित किया गया । जैसा कि पहले ही कथन किया गया है, शव मुख्य द्वार के भीतर सात फीट की दूरी पर पाया गया है, इसलिए हमें घटनास्थल के संबंध में कोई भी असंगतता दिखाई नहीं देती है ।

14. श्री पाटिल ने अंततः यह दलील दी है कि स्वयं अभियोजन पक्ष के अनुसार गौडप्पा (अभियुक्त 3) और चन्नप्पा **उर्फ** अजप्पा (अभियुक्त 4) की अपराध में यह भूमिका है कि उन्होंने मृतक चन्नप्पा को दबोच लिया था और इस बात से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि यह अपराध सामान्य आशय को अग्रसर करने में कारित किया गया है । विद्वान् काउंसेल के अनुसार, इन अपीलार्थियों का मृतक की मृत्यु कारित करने का आशय नहीं था और इस प्रकार उन्हें दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता है । इस दलील के समर्थन में **रामाशीष यादव** बनाम **बिहार राज्य**[1] वाले मामले में किए गए इस न्यायालय के निर्णय का अवलंब लिया गया है :–

---

[1](1999) 8 एस. सी. सी. 555.

"दंड संहिता की धारा 34 के लागू किए जाने के लिए विधि की यह अपेक्षा है कि मात्र इस तथ्य से कि अभियुक्त राम प्रवेश यादव और रामानंद यादव आए और उन्होंने तपेश्वर को दबोच लिया जिसके पश्चात् समुन्दर यादव और शिव लायक यादव गड़ासा अपने हाथों में लेकर आए और उन्होंने गड़ासे से वार किए, ऐसी स्थिति में यह नहीं कहा जा सकता है कि अभियुक्त राम प्रवेश यादव और रामानंद यादव का सामान्य आशय अभियुक्त समुन्दर यादव और अभियुक्त शिव लायक यादव जैसा था । परिणामतः, अभियुक्त राम प्रवेश यादव और रामानंद यादव को दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन आरोप का दोषी नहीं ठहराया जा सकता है किन्तु मृतक तपेश्वर के सिर पर गड़ासे से हमला करके अभियुक्त समुन्दर यादव और शिव लायक यादव ने दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन अपराध कारित किया है जिससे तपेश्वर की मृत्यु हुई है । अतः, अभियुक्त राम प्रवेश यादव और रामानंद यादव को उन पर लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है और उन्हें तत्काल उन्मुक्त किया जाए ।"

15. तथापि, सुश्री शिनॉय ने यह दलील दी है कि जिस रीति में अपराध कारित किया गया है और दोनों उपर्युक्त अपीलार्थियों की अपराध में निभाई गई भूमिका से यह स्पष्ट होता है कि अनेक व्यक्तियों द्वारा सामान्य आशय को अग्रसर करने में आपराधिक कार्य किया गया है, इसलिए ऐसा प्रत्येक व्यक्ति उसी प्रकार आपराधिक कार्य के लिए जिम्मेदार होगा जैसे उसने वह अपराध अकेले किया हो । इस संबंध में, **रमेश सिंह** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में किए गए विनिश्चय को निर्दिष्ट किया गया है ।

16. हमने सुश्री शिनॉय द्वारा दी गई परस्पर विरोधी दलीलों पर विचार किया है । सामान्यतया, प्रत्येक व्यक्ति उसके द्वारा किए गए आपराधिक कार्य के लिए जिम्मेदार है । किसी भी व्यक्ति को किसी स्वतंत्र कार्य के लिए या अन्य किसी व्यक्ति द्वारा कारित किए गए अपराध के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है । आपराधिक दायित्व का सिद्धांत यह है कि वह व्यक्ति जो अपराध करता है वही उस अपराध के लिए जिम्मेदार होता है और केवल उसे ही दोषी ठहराया जा सकता है । तथापि, दंड संहिता की धारा 34 इस सिद्धांत का एक अपवाद है । इसके अधीन आपराधिक कार्य करने के संबंध में संयुक्त दायित्व का सिद्धांत अधिकथित

---

[1] (2004) 11 एस. सी. सी. 305.

किया गया है । इस दायित्व का मुख्य सार सामान्य आशय में पाया जाता है जिसके आधार पर अभियुक्त ऐसे आशय को अग्रसर करने में आपराधिक कार्य करता है । यह धारा अनेक व्यक्तियों द्वारा किए गए अलग-अलग कार्यों, एक जैसे कार्यों या प्रतिकूल कार्यों के संबंध में है यदि वे कार्य सामान्य उद्देश्य को अग्रसर करने में किए गए हैं । ऐसी स्थिति में, प्रत्येक व्यक्ति सभी कार्यों के परिणाम के लिए इस प्रकार जिम्मेदार होगा मानो स्वयं उसी ने वह कार्य किया हो । इस प्रकार, दंड संहिता की धारा 34 के अधीन संयुक्त आपराधिक दायित्व का सिद्धांत अधिकथित किया गया है जो कि मात्र साक्ष्य का नियम है किन्तु इससे सारभूत अपराध सृजित नहीं होता है । अतः, किया गया अपराध सामान्य आशय का ऐसा परिणाम है कि प्रत्येक व्यक्ति ने उस कार्य में भाग लिया हो, तब ऐसे सामान्य आशय से वह व्यक्ति कारित किए गए अपराध के लिए जिम्मेदार होगा भले ही उसकी अपराध में भूमिका कुछ भी रही हो । सामान्य आशय का अर्थ कैसे लगाया जाए ? सामान्य आशय का निष्कर्ष अपराध कारित किए जाने की रीति, अपराध के पूर्व और पश्चात् अभियुक्त के आचरण, अपराध कारित करने की प्रबलता और इरादा अभियुक्त द्वारा धारण किए गए हथियार और एक या अधिक अभियुक्तों द्वारा पहुंचाई गई क्षतियों की प्रकृति से भी लगाया जा सकता है । अतः, इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कि क्या अभियुक्तों का ऐसा अपराध कारित करने का आशय था या नहीं जिसके लिए उन्हें दोषसिद्ध किया जा सकता है, संपूर्ण परिस्थितियों को विचार में लिया जाना चाहिए ।

17. उपर्युक्त सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए, जब हमने इन दो अपीलार्थियों अर्थात् गौडप्पा (अभियुक्त 3) और चन्नप्पा **उर्फ** अजप्पा (अभियुक्त 4) के मामले पर विचार किया है तो हमें इस निष्कर्ष पर पहुंचने में कोई संकोच नहीं है कि मृतक चन्नप्पा की मृत्यु सामान्य आशय को अग्रसर करने में हुई है । सभी अभियुक्त एक जगह एकत्र हुए और जैसे ही मृतक थूकने के लिए मकान के बाहर आया, अभियुक्तों में एक अभियुक्त उसे गालियां देने लगा । अभियुक्त कुल्हाड़ी और जंबिया से लैस थे और मृतक को दबोच कर और बेबस करके इन दो अभियुक्तों ने अभियुक्त 5 द्वारा किए गए हमले को सुकर बनाया । अभियुक्त 5 ने मृतक के वक्ष के बाईं ओर पर जंबिया से घोंपकर वार किया और वार इतना तीव्र था कि वह हृदय और यकृत को बेध गया । यह तथ्य कि इन अपीलार्थियों ने मृतक को दबोच लिया था और अन्य अभियुक्तों द्वारा किए जाने वाले घातक वार को सुकर बनाया था और उन्होंने मृतक पर हमला करने से उसे रोकने का

कोई प्रयास नहीं किया था, इस बात से केवल यही निष्कर्ष निकलता है कि इन दोनों अपीलार्थियों ने अभियुक्त 5 के आशय जैसे सामान्य आशय में भाग लिया था । अभियुक्त 5 का आशय, प्रयोग किए गए हथियार की प्रकृति और वार की तीव्रता से स्पष्ट हो जाता है जो मृतक के वक्ष को बेध कर हृदय और यकृत में प्रविष्ट हो गया था जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हुई ।

18. जो मत हमने व्यक्त किया है उसका समर्थन **रमेश सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में किए गए इस न्यायालय के निर्णय से होता है जिसमें निम्न मत व्यक्त किया गया है :–

> "जब एक बार अभि. सा. 1 से अभि. सा. 3 के रूप में दिया गया अभियोजन साक्ष्य स्वीकार कर लिया गया है, तब यह स्पष्ट हो जाता है कि अभियुक्त 2 और अभियुक्त 3 ने मृतक के हाथों को दबोच लिया था, उनका आशय मृतक को बेबस करना था । ऐसा निष्कर्ष निकालना इसलिए संभव है कि अपीलार्थियों ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभिलिखित अपने कथन में ऐसा कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया है कि उन्होंने मृतक के हाथों को क्यों दबोचा था जिससे यह उपदर्शित होता है कि अपीलार्थियों को यह ज्ञान था कि अभियुक्त 1 को मृतक पर वार करना है । यह तथ्य कि अपीलार्थियों ने मृतक पर आगे और हमला करने से अभियुक्त 1 को रोकने का कोई प्रयास किए बिना मृतक को दबोचे रखा, हमारी राय में इस बात से केवल यही निष्कर्ष निकलता है कि इन अभियुक्तों ने अभियुक्त 1 के साथ सामान्य आशय में भाग लिया है ।"

19. तथापि, हम यह भी मत व्यक्त करना चाहेंगे कि प्रत्येक मामले के अपने अलग तथ्य होते हैं और एक मामले के तथ्यों की मात्र समानता के आधार पर अन्य किसी मामले के तथ्यों का निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है । अपराध सामान्य आशय को अग्रसर करने में कारित किया गया है या नहीं, उस मामले में प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के मूल्यांकन के आधार पर विनिश्चित किया जाता है और एक मामले के तथ्यों की समानता के आधार पर अन्य किसी मामले के तथ्यों का सुनिश्चित निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है । इस प्रकार, ऐसे प्रश्न का उत्तर उसी मामले के तथ्यों के आधार पर ही दिया जाना चाहिए । इस संबंध में, **पांडुरंग** बनाम **हैदराबाद**

राज्य[1] वाले मामले में किए गए विनिश्चय के निम्न पैरे को उद्धृत करना उचित होगा :–

> "ऐसा कहने के लिए पारिस्थितिक साक्ष्य के संबंध में सामान्य नियम को पुनः उद्धृत करना होगा क्योंकि इस वर्ग के मामलों के लिए साक्ष्य का कोई भी विशेष नियम नहीं है । मूल बात यह है कि प्रत्येक मामले में तथ्य का प्रश्न होता है और परिस्थितियां कितनी ही भी अनुरूप क्यों न हों, एक मामले के तथ्यों का प्रयोग, अन्य मामले के तथ्यों के आधार पर निकाले गए निष्कर्ष को विनिश्चित करने के लिए नजीर के रूप में नहीं किया जा सकता है । जो कुछ आवश्यक है, वह या तो पूर्व सम्मति का सीधा सबूत होना चाहिए या ऐसी परिस्थितियों का सबूत होना चाहिए जिनसे वही निष्कर्ष निकले, या, जैसा हम चिर-प्रचलित रीति में चाहते हैं, अपराध में फंसाने वाले तथ्यों को अभियुक्त की निर्दोषिता के साथ मेल नहीं खाना चाहिए और उनसे निर्दोषित से हटकर कोई भी युक्तियुक्त परिकल्पना नहीं की जा सके।" (सरकार्स एवीडेन्स नामक पुस्तक के 8वें संस्करण का पृष्ठ-30 देखिए)

20. उपर्युक्त चर्चा के आधार पर, यह स्पष्ट हो गया है कि उच्च न्यायालय ने दोषमुक्ति के निर्णय को अपास्त करने और सभी अभियुक्तों को दंड संहिता, 1860 की धारा 143 और 148 के अधीन दोषी अभिनिर्धारित करने तथा अपीलार्थियों को दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन दोषसिद्ध करने और जुर्माने में व्यतिक्रम किए जाने के दंड के साथ आजीवन कारावास भोगने का दंडादेश देकर कोई त्रुटि नहीं की है ।

21. परिणामतः, हमारा यह निष्कर्ष है कि अपील में कोई गुणता नहीं है और तदनुसार खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

अस./अनू.

---

[1] ए. आई. आर. 1955 एस. सी. 216.

[2013] 4 उम. नि. प. 201

सत्यपाल

बनाम

हरियाणा राज्य

13 मार्च, 2013

न्यायमूर्ति ए. के. पटनायक और न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 304ख और धारा 498क [सपठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 162(1)] – साक्ष्य में सुधार और लोप – न्यायालय को यह सुनिश्चित करने का कर्तव्य है कि साक्ष्य में किया गया लोप या सुधार किसी विशिष्ट संदर्भ में महत्वपूर्ण और संगत है या नहीं ।

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 304ख और धारा 498क [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धारा 113ख और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 313] – दहेज मृत्यु – क्रूरता – वैवाहिक गृह में मृतका की अप्राकृतिक मृत्यु – दहेज की मांग और मृतका के साथ मारपीट – अभियुक्त द्वारा मृतका के हृदय रोगी होने का अभिवाक् किया जाना – चिकित्सक की परीक्षा न कराना – यदि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन कथन में अभियुक्त मृतका के हृदय रोगी होने तथा उसकी प्राकृतिक मृत्यु होने का अभिवाक् करता है, तब ऐसी स्थिति में अभियुक्त की यह जिम्मेदारी होगी कि वह संबंधित चिकित्सक की परीक्षा कराए अन्यथा वह साक्ष्य अधिनियम की धारा 113ख के अधीन उपधारणा का खंडन करने में असफल समझा जाएगा ।

इस मामले में अभियुक्त अपीलार्थी का विचारण भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34, 498क और 304ख के अधीन किया गया और उसे दोषमुक्त कर दिया गया । दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध राज्य द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की गई जिसमें अभियुक्त को धारा 302/34 के अधीन दोषमुक्त किया गया परंतु धारा 304ख और धारा 498क के अधीन दोषसिद्ध किया गया । उच्च न्यायालय के इस आदेश के विरुद्ध अपीलार्थी ने उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि अभि. सा. 2 ने पुलिस को दिए गए अपने कथन (प्रदर्श-डी.ए.) में यह नहीं कहा है कि अभि. सा. 1 ने उसे यह नहीं बताया था कि मृतका को अपीलार्थी और उसके परिवार के सदस्यों द्वारा पीटा गया है और यह कि मृतका को कमरे में बंद कर दिया गया था, किंतु अभि. सा. 1 के साक्ष्य का परिशीलन करने पर न्यायालय को यह पता चला कि मृतका के साथ दहेज की मांग को लेकर दो या तीन बार मारपीट की गई थी । इसके अतिरिक्त, अभि. सा. 2 से यह पूछे जाने पर कि क्या उसने पुलिस को मृतका के साथ की गई उपर्युक्त मारपीट के बारे में बताया था, यह उत्तर दिया कि वास्तव में उसने पुलिस को इस मारपीट के संबंध में बताया था । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 162 के स्पष्टीकरण के अंतर्गत यह उल्लेख किया गया है कि उपधारा (1) में निर्दिष्ट कथन में किसी तथ्य या परिस्थिति के कथन का लोप या खंडन हो सकता है यदि वह उस संदर्भ को ध्यान में रखते हुए जिसमें ऐसा लोप किया गया है महत्वपूर्ण और अन्यथा संगत प्रतीत होता है और कोई लोप किसी विशिष्ट संदर्भ में खंडन है या नहीं यह तथ्य का प्रश्न होगा । अतः यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह यह विनिश्चित करे कि क्या मृतका के साथ की गई मारपीट के संबंध में पुलिस को दिए गए अभि. सा. 2 के कथन में किया गया लोप न्यायालय के लिए यह बात अविश्वसनीय ठहराने के लिए पर्याप्त है या नहीं कि मृतका के साथ मारपीट का व्यवहार दहेज की मांग के संबंध में किया गया था । अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 के साक्ष्य पर पूर्ण रूप से विचार करने पर न्यायालय का यह मत है कि उच्च न्यायालय ने इस निष्कर्ष पर पहुंचकर ठीक ही किया है कि मृतका से न केवल दहेज की पश्चात्वर्ती मांग की गई थी अपितु इस मांग को लेकर मृत्यु के कुछ पूर्व उसके साथ क्रूरता की गई थी और यह कि विचारण न्यायालय ने अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 के साक्ष्य का सही अर्थ नहीं लगाया है । (पैरा 8)

उच्च न्यायालय ने साक्ष्य अधिनियम की धारा 113ख के अधीन ठीक ही उपधारित किया है कि अपीलार्थी ने दंड संहिता की धारा 304ख के अर्थांतर्गत मृतका की दहेज मृत्यु कारित की है और अपीलार्थी से इस उपधारणा का खंडन करने की अपेक्षा की गई थी कि उसने दहेज मृत्यु कारित की है । अपीलार्थी ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अपने कथन में इस उपधारणा का खंडन करने का प्रयास प्रश्न सं. 16 का उत्तर देते समय अवश्य किया है । अपीलार्थी ने यह कथन किया है कि मृतका की मृत्यु प्राकृतिक है क्योंकि वह हृदय रोग से पीड़ित थी और यह कि उस

समय डा. रूपचंद्र द्वारा सतनाली में उसका उपचार किया जा रहा था और उसकी मृत्यु वाले दिन भी डा. रूपचंद्र द्वारा उसकी चिकित्सा परीक्षा की गई थी । यदि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन किए गए अपीलार्थी के कथन में उसकी यही प्रतिरक्षा है, तब उसकी यह जिम्मेदारी थी कि वह डा. रूपचंद्र को प्रतिरक्षा साक्षी के रूप में प्रस्तुत करता किंतु उसने ऐसा नहीं किया । परिणाम यह हुआ है कि अपीलार्थी भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 113ख के अधीन इस उपधारणा का खंडन करने में असफल रहा है कि उसने दंड संहिता की धारा 304ख के अर्थांतर्गत मृतका की दहेज मृत्यु कारित की है । (पैरा 9)

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2007 की दांडिक अपील सं.1447 और 1448.

1997 की दांडिक अपील सं. 334 और 246 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के तारीख 16 मार्च, 2007 के निर्णय के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री राकेश दहिया

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री कमल मोहन गुप्ता

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति ए. के. पटनायक ने दिया ।

न्या. पटनायक – ये अपीलें 1997 की दांडिक अपील सं. 334 और 246 में किए गए पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के तारीख 16 मार्च, 2007 के निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई हैं ।

2. संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि तारीख 14 जुलाई, 1992 को सोमबीर (परिवादी) द्वारा प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई गई जिसमें अन्य बातों के साथ यह अभिकथन किया गया कि उसकी बहिन राजवंती का विवाह अपीलार्थी के साथ हुआ था और विवाह के एक या दो मास के पश्चात् वह घर आई और उसने अपनी माता को यह बताया कि उसके ससुराल वाले उससे दहेज के रूप में आटा-चक्की, बिजली की मोटर के साथ चारा काटने की मशीन मांग रहे हैं और यह सामान दिसंबर, 1991 में उस समय दे दिया गया जब उसकी बहिन राजवंती ने एक पुत्र को जन्म दिया था और इससे राजवंती के ससुराल वाले प्रसन्न हुए किंतु इसके कुछ समय पश्चात् राजवंती आई और उसने बताया कि उसकी सास, ननद और देवर तथा पति (अपीलार्थी) फ्रिज, कूलर और टेलीविजन की मांग कर रहे

हैं जिस पर राजवंती के माता-पिता ने कहा कि यदि उनकी ये मांगे पूरी की गईं तो उनकी मांगे और बढ़ती चली जाएंगी और राजवंती तारीख 19 जून, 1992 को अपनी ससुराल चली गई । इसके पश्चात् तारीख 12 जुलाई, 1992 को लगभग 9.00 बजे पूर्वाह्न में परिवादी राजवंती के घर पर आया और उसने देखा कि अपीलार्थी और सुभाष ने राजवंती को कुंए में धक्का दे दिया है जिसके परिणामस्वरूप राजवंती की मृत्यु हो गई है । इस संबंध में मामला रजिस्ट्रीकृत किया गया और पुलिस द्वारा मामले का अन्वेषण किया गया और अपीलार्थी तथा उसके परिवार के सदस्यों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में 'दंड संहिता' कहा गया है) की धारा 302/34 तथा धारा 304ख के अधीन आरोप पत्र फाइल किया गया ।

3. विचारण के दौरान, अन्य साक्षियों के साथ परिवादी की परीक्षा अभि. सा. 1 के रूप में की गई और राजवंती (मृतका) की माता की परीक्षा अभि. सा. 2 के रूप में की गई । तथापि, विचारण न्यायालय ने तारीख 9 अक्तूबर, 2006 के अपने निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया कि पुलिस थाने में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में हुए 51 घंटों के असामान्य विलंब के संबंध में कोई भी संतोषजनक उत्तर नहीं दिया गया है और यह प्रतीत होता है कि उपर्युक्त समय का प्रयोग सोच-विचार के पश्चात् जानबूझकर कतिपय व्यक्तियों को आलिप्त करने में किया गया है । इस प्रकार विचारण न्यायालय ने यह राय व्यक्त की है कि अभियुक्तों के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन अपराध अभियोजन पक्ष द्वारा संदेह के परे साबित नहीं किया गया है । दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन आरोप के संबंध में विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 द्वारा न्यायालय में दिए गए साक्ष्य में दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 161 के अधीन पुलिस को दिए गए कथनों की अपेक्षाकृत सुधार किए गए हैं और तदनुसार न्यायालय ने अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 को अविश्वसनीय ठहराते हुए यह अभिनिर्धारित किया है कि अपीलार्थी या उसके किसी भी नातेदार द्वारा दहेज की मांग तथा इस मांग के संबंध में तंग किए जाने का तथ्य साबित नहीं किया गया है और इस प्रकार भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 113ख के अधीन उपधारणा लागू नहीं हुई और अपीलार्थी तथा उसके परिवार के सदस्यों को दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन दोषी अभिनिर्धारित नहीं किया जा सका ।

4. राज्य तथा परिवादी ने क्रमशः 1997 की दांडिक अपील सं. 334

और 246 अलग-अलग फाइल कीं और उच्च न्यायालय ने तारीख 16 मार्च, 2007 के अपने आक्षेपित निर्णय में अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 के साक्ष्य के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि नवंबर, 1991 से लगभग दो मास के पश्चात् जब दहेज की पूर्ववर्ती मांग छोछक के समय पर पूरी की गई थी तब अपीलार्थी और उसके परिवार के सदस्यों ने टेलीविजन, फ्रिज, कूलर जैसे सामान की और मांग की और पुनः की गई इस मांग के लिए मृतका के साथ मारपीट की गई और इसके परिणामस्वरूप जून, 1992 में अभि. सा. 1 मृतका के वैवाहिक गृह पर आया और उसने अपीलार्थी और उसके परिवार के सदस्यों से ऐसी मांगे न करने का आग्रह किया किंतु तारीख 12 जुलाई, 1992 को अभि. सा. 1 की इस मुलाकात के एक मास के भीतर मृतका की मृत्यु उसके वैवाहिक गृह में हो गई । उच्च न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि चूंकि अभियोजन पक्ष ने टेलीविजन, फ्रिज और कूलर की दहेज के रूप में मांग किए जाने और मृतका की मृत्यु के कुछ पूर्व उसे तंग किए जाने और क्रूरता किए जाने के दोनों तथ्यों को साबित किया है, इसलिए साक्ष्य अधिनियम की धारा 113ख के अधीन उपधारणा लागू होगी और अपीलार्थी इस उपधारणा का खंडन नहीं कर सका है और इस प्रकार वह दंड संहिता की धारा 304ख तथा धारा 498क के अधीन अपराधों का दोषी है ।

5. हमारे समक्ष सुनवाई के दौरान, अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने दृढ़तापूर्वक यह दलील दी है कि अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 के साक्ष्य पर विचारण न्यायालय द्वारा जो मत व्यक्त किया गया है वह उचित है क्योंकि अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 ने न्यायालय में अपने जो कथन दिए हैं उनमें दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन पुलिस को दिए गए कथनों की तुलना में सारभूत सुधार हैं । उन्होंने यह दलील दी है कि अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 के साक्ष्य के आधार पर उच्च न्यायालय द्वारा निकाला गया यह निष्कर्ष बिल्कुल भी सही नहीं है कि मृतका से टेलीविजन, फ्रिज और कूलर की पश्चात्वर्ती मांग की गई थी और उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व उसके साथ क्रूरता की गई थी । काउंसेल ने यह दलील दी है कि विचारण न्यायालय ने यह मत ठीक ही व्यक्त किया है कि अभि. सा. 1 द्वारा प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में किया गया 51 घंटों का विलंब समुचित रूप से स्पष्ट नहीं किया गया है, अतः अभियोजन वृत्तांत पर विश्वास नहीं किया जा सकता है ।

6. विचारण न्यायालय के निर्णय का परिशीलन करने पर हमारा यह

निष्कर्ष है कि विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अभि. सा. 1 द्वारा पुलिस थाने में दर्ज कराई गई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में 51 घंटों का विलंब अभियोजन के इस पक्षकथन को खारिज करने के लिए एक ठोस आधार है कि अभियुक्त व्यक्ति दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन अपराधों के दोषी हैं जिसका यह कारण है कि 51 घंटों के इस समय का प्रयोग विचार-विमर्श के पश्चात् जानबूझकर झूठी कहानी बनाने के लिए तथा कुछ निर्दोष व्यक्तियों को आलिप्त करने के लिए किया जा सकता है । उच्च न्यायालय ने अभियुक्तों को दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन अपराधों का दोषी अभिनिर्धारित नहीं किया है, संभवतः इसी कारण से, यद्यपि राज्य तथा परिवादी द्वारा इस संबंध में विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को चुनौती देते हुए अपील फाइल की गई है ।

7. जहां तक दंड संहिता की धारा 304ख और 498क के अधीन आरोपों का संबंध है, हमारा यह निष्कर्ष है कि विचारण न्यायालय ने अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 के साक्ष्यों को इस आधार पर अविश्वसनीय ठहराया है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 161 के अधीन पुलिस को दिए गए कथनों की अपेक्षाकृत न्यायालय में दिए गए कथनों में सुधार किए हैं और इस आधार पर भी अविश्वसनीय ठहराया है कि इन साक्षियों के साक्ष्यों में विरोधाभास हैं । हमने अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 के साक्ष्यों का परिशीलन किया है और हमारा यह निष्कर्ष है कि अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 के साक्ष्यों के आधार पर उच्च न्यायालय द्वारा निकाला गया निष्कर्ष उचित है कि वास्तव में नवंबर, 1991 में पुत्र के जन्म पर छोछक के समय दहेज की पूर्ववर्ती मांग पूरी किए जाने के लगभग दो मास के पश्चात् टेलीविजन, फ्रिज और कूलर की भी मांग की गई और यह पश्चात्वर्ती मांग किए जाने के पश्चात् मृतका के साथ मारपीट की गई और उसे तंग किया गया जिसके परिणामस्वरूप अभि. सा. 1 को मृतका के वैवाहिक गृह पर अपीलार्थी और उसके परिवार के सदस्यों को यह समझाने के लिए आना पड़ा कि वे ऐसी मांग न करें और इस मुलाकात के पश्चात् ही अर्थात् 12 जुलाई, 1992 को मृतका की मृत्यु हो गई ।

8. तथापि, हमारा यह निष्कर्ष है कि अभि. सा. 2 ने पुलिस को दिए गए अपने कथन (प्रदर्श-डी.ए.) में यह नहीं कहा है कि अभि. सा. 1 ने उसे यह नहीं बताया था कि मृतका को अपीलार्थी और उसके परिवार के सदस्यों द्वारा पीटा गया है और यह कि मृतका को कमरे में बंद कर दिया गया था, किंतु अभि. सा. 1 के साक्ष्य का परिशीलन करने पर हमें यह पता

चलता है कि मृतका के साथ दहेज की मांग को लेकर दो या तीन बार मारपीट की गई थी । इसके अतिरिक्त, अभि. सा. 2 से यह पूछे जाने पर कि क्या उसने पुलिस को मृतका के साथ की गई उपर्युक्त मारपीट के बारे में बताया था, यह उत्तर दिया कि वास्तव में उसने पुलिस को इस मारपीट के संबंध में बताया था । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 162 के स्पष्टीकरण के अंतर्गत यह उल्लेख किया गया है कि उपधारा (1) में निर्दिष्ट कथन में किसी तथ्य या परिस्थिति के कथन का लोप या खंडन हो सकता है यदि वह उस संदर्भ को ध्यान में रखते हुए जिसमें ऐसा लोप किया गया है महत्वपूर्ण और अन्यथा संगत प्रतीत होता है और कोई लोप किसी विशिष्ट संदर्भ में खंडन है या नहीं यह तथ्य का प्रश्न होगा । अतः यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह यह विनिश्चित करे कि क्या मृतका के साथ की गई मारपीट के संबंध में पुलिस को दिए गए अभि. सा. 2 के कथन में किया गया लोप न्यायालय के लिए यह बात अविश्वसनीय ठहराने के लिए पर्याप्त है या नहीं कि मृतका के साथ मारपीट का व्यवहार दहेज की मांग के संबंध में किया गया था । अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 के साक्ष्य पर पूर्ण रूप से विचार करने पर हमारा यह मत है कि उच्च न्यायालय ने इस निष्कर्ष पर पहुंचकर ठीक ही किया है कि मृतका से न केवल दहेज की पश्चात्वर्ती मांग की गई थी अपितु इस मांग को लेकर मृत्यु के कुछ पूर्व उसके साथ क्रूरता की गई थी और यह कि विचारण न्यायालय ने अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 के साक्ष्य का सही अर्थ नहीं लगाया है ।

9. उच्च न्यायालय ने साक्ष्य अधिनियम की धारा 113ख के अधीन ठीक ही उपधारित किया है कि अपीलार्थी ने दंड संहिता की धारा 304ख के अर्थांतर्गत मृतका की दहेज मृत्यु कारित की है और अपीलार्थी से इस उपधारणा का खंडन करने की अपेक्षा की गई थी कि उसने दहेज मृत्यु कारित की है । अपीलार्थी ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अपने कथन में इस उपधारणा का खंडन करने का प्रयास प्रश्न सं. 16 का उत्तर देते समय अवश्य किया है । अपीलार्थी ने यह कथन किया है कि मृतका की मृत्यु प्राकृतिक है क्योंकि वह हृदय रोग से पीड़ित थी और यह कि उस समय डा. रूपचंद्र द्वारा सतनाली में उसका उपचार किया जा रहा था और उसकी मृत्यु वाले दिन भी डा. रूपचंद्र द्वारा उसकी चिकित्सा परीक्षा की गई थी । यदि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन किए गए अपीलार्थी के कथन में उसकी यही प्रतिरक्षा है, तब उसकी यह जिम्मेदारी थी कि वह डा. रूपचंद्र को प्रतिरक्षा साक्षी के रूप में प्रस्तुत करता किंतु

उसने ऐसा नहीं किया । परिणाम यह हुआ है कि अपीलार्थी भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 113ख के अधीन इस उपधारणा का खंडन करने में असफल रहा है कि उसने दंड संहिता की धारा 304ख के अर्थांतर्गत मृतका की दहेज मृत्यु कारित की है ।

10. अतः हमारी यह राय है कि जहां तक दंड संहिता की धारा 304ख और 498क के अधीन अपराधों का संबंध है, उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी के विरुद्ध दोषमुक्ति के निर्णय को उलटकर ठीक ही किया है और तदनुसार हम अपील खारिज करते हैं । चूंकि अपीलार्थी जमानत पर है, हम यह निदेश देते हैं कि उसके जमानत पत्र रद्द किए जाते हैं और उसे शेष दंडादेश भोगने के लिए तत्काल अभिरक्षा में लिया जाए ।

अपील खारिज की गई ।

अस./अनू.

संसद् के अधिनियम

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955

1955 का अधिनियम संख्यांक 25[1]

[18 मई, 1955]

हिन्दुओं के विवाह से संबंधित विधि को संशोधित और संहिताबद्ध करने के लिए अधिनियम

भारत गणराज्य के छठे वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

प्रारम्भिक

1. **संक्षिप्त नाम और विस्तार** – (1) यह अधिनियम हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 कहा जा सकेगा ।

(2) इसका विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय सम्पूर्ण भारत पर है और यह उन राज्यक्षेत्रों में जिन पर इस अधिनियम का विस्तार है, अधिवसित उन हिन्दुओं को भी लागू है जो उक्त राज्यक्षेत्रों के बाहर हों ।

2. **अधिनियम का लागू होना** – (1) यह अधिनियम लागू है –

(क) ऐसे किसी भी व्यक्ति को जो हिन्दू धर्म के किसी भी रूप या विकास के अनुसार, जिसके अन्तर्गत वीरशैव, लिंगायत अथवा ब्रह्मसमाज, प्रार्थनासमाज या आर्यसमाज के अनुयायी भी आते हैं, धर्मतः हिन्दू हो ;

(ख) ऐसे किसी भी व्यक्ति को जो धर्मतः जैन, बौद्ध या सिक्ख हो ; तथा

(ग) ऐसे किसी भी अन्य व्यक्ति जो उन राज्यक्षेत्रों में, जिन पर इस अधिनियम का विस्तार है, अधिवसित हो और धर्मतः मुस्लिम, क्रिश्चियन, पारसी या यहूदी न हो, जब तक कि यह साबित न कर

---

[1] इस अधिनियम का, 1963 के विनियम सं. 6 की धारा 2 और अनुसूची 1 द्वारा (1.7.1965 से) दादरा और नागर हवेली पर और 1963 के विनियम सं. 7 की धारा 3 और अनुसूची 1 द्वारा (1.10.1963 से) उपांतरों सहित पांडिचेरी पर विस्तार किया गया ।

दिया जाए कि यदि यह अधिनियम पारित न किया गया होता तो ऐसा कोई भी व्यक्ति एतस्मिन् उपबन्धित किसी भी बात के बारे में हिन्दू विधि या उस विधि के भागरूप किसी रूढ़ि या प्रथा द्वारा शासित न होता ।

स्पष्टीकरण – निम्नलिखित व्यक्ति धर्मतः, यथास्थिति, हिन्दू, बौद्ध, जैन या सिक्ख है :–

(क) कोई भी अपत्य, धर्मज या अधर्मज, जिसके माता-पिता दोनों ही धर्मतः हिन्दू, बौद्ध, जैन या सिक्ख हो ;

(ख) कोई भी अपत्य, धर्मज या अधर्मज, जिसके माता-पिता में से कोई एक धर्मतः हिन्दू, बौद्ध, जैन या सिक्ख हो और जो उस जनजाति, समुदाय, समूह या कुटुंब के सदस्य के रूप में पला हो जिसका वह माता या पिता सदस्य है या था ; तथा

(ग) कोई भी ऐसा व्यक्ति जो हिन्दू, बौद्ध, जैन या सिक्ख धर्म में संपरिवर्तित या प्रतिसंपरिवर्तित हो गया हो ।

(2) उपधारा (1) में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी इस अधिनियम में अंतर्विष्ट कोई भी बात किसी ऐसी जनजाति के सदस्यों को जो संविधान के अनुच्छेद 366 के खंड (25) के अर्थ के अंतर्गत अनुसूचित जनजाति हो, लागू न होगी जब तक कि केन्द्रीय सरकार शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा अन्यथा निर्दिष्ट न कर दे ।

(3) इस अधिनियम के किसी भी प्रभाग में आए हुए "हिन्दू" पद का ऐसा अर्थ लगाया जाएगा मानो उसके अंतर्गत ऐसा व्यक्ति आता हो जो, यद्यपि धर्मतः हिन्दू नहीं है तथापि ऐसा व्यक्ति है जिसे यह अधिनियम इस धारा के अंतर्विष्ट उपबंधों के आधार पर लागू होता है ।

3. **परिभाषाएं** – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "रूढ़ि" और "प्रथा", पद ऐसे किसी भी नियम का संज्ञान कराते हैं जिसने दीर्घकाल तक निरंतर और एकरूपता से अनुपालित किए जाने के कारण किसी स्थानीय क्षेत्र, जनजाति, समुदाय, समूह या कुटुंब के हिन्दुओं में विधि का बल अभिप्राप्त कर लिया हो :

परंतु यह तब जब कि वह नियम निश्चित हो और अयुक्तियुक्त

या लोकनीति के विरुद्व न हो : तथा

परंतु यह और भी कि ऐसे नियम की दशा में जो एक कुटुंब को ही लागू हो, उसकी निरंतरता उस कुटुंब द्वारा बंद न कर दी गई हो ;

(ख) "जिला न्यायालय" से अभिप्रेत है ऐसे किसी क्षेत्र में, जिसके लिए कोई नगर सिविल न्यायालय हो, वह न्यायालय और अन्य किसी क्षेत्र में आरंभिक अधिकारिता का प्रधान सिविल न्यायालय तथा इसके अंतर्गत ऐसा कोई भी अन्य सिविल न्यायालय आता है जिसे राज्य सरकार शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा इस अधिनियम में व्यवहृत बातों के बारे में अधिकारितायुक्त विनिर्दिष्ट कर दे ;

(ग) "पूर्ण रक्त" और "अर्ध रक्त" – कोई भी दो व्यक्ति एक दूसरे से पूर्ण रक्त से संबंधित तब कहे जाते हैं जब कि वे एक ही पूर्वज से एक ही पत्नी द्वारा अवजनित हों और अर्थ रक्त से तब जब कि वह एक ही पूर्वज से किन्तु भिन्न पत्नियों द्वारा अवजनित हों ;

(घ) "एकोदर रक्त" – दो व्यक्ति एक से एकोदर रक्त से संबंधित तब कहे जाते हैं जब कि वे एक ही पूर्वजा से किन्तु भिन्न पतियों द्वारा अवजनित हों ;

स्पष्टीकरण – खंड (ग) और (घ) में "पूर्वज" के अंतर्गत पिता और "पूर्वजा" के अंतर्गत माता आती है ;

(ङ) "विहित" से अभिप्रेत है इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित ;

(च) (i) "सपिंड नातेदारी", जब निर्देश किसी व्यक्ति के प्रति हो तो, माता के माध्यम से उसकी ऊपरली ओर की परंपरा में तीसरी पीढ़ी तक (जिसके अंतर्गत तीसरी पीढ़ी भी आती है) और पिता के माध्यम से उसकी ऊपरली ओर की परंपरा में पांचवीं पीढ़ी तक (जिसके अंतर्गत पांचवीं पीढ़ी भी आती है) जाती है, हर एक दशा में वंश परंपरा सम्पृक्त व्यक्ति से, जिसे पहले पीढ़ी का गिना जाएगा, ऊपर की ओर चलेगी ;

(ii) दो व्यक्ति एक दूसरे के "सपिंड" तब कहे जाते हैं जबकि या तो एक उनमें से दूसरे का सपिंड नातेदारी की सीमाओं के भीतर पूर्वपुरुष हो या जब कि उनका ऐसा कोई एक ही पारंपरिक पूर्वपुरुष हो, जो, निर्देश उनमें से जिस किसी के भी प्रति हो, उससे सपिंड

नातेदारी की सीमाओं के भीतर हो ;

(छ) "प्रतिषिद्ध नातेदारी की डिग्रियां" – दो व्यक्ति प्रतिषिद्ध नातेदारी की डिग्रियों के भीतर कहे जाते हैं –

(i) यदि एक उनमें से दूसरे का पारंपरिक पूर्वपुरुष हो ; या

(ii) यदि एक उनमें से दूसरे के पारंपरिक पूर्वपुरुष या वंशज की पत्नी या पति रहा हो ; या

(iii) यदि एक उनमें से दूसरे के भाई की या पिता अथवा माता के भाई की, या पितामह अथवा पितामही के भाई की या मातामह अथवा मातामही के भाई की पत्नी रही हो ; या

(iv) यदि वे भाई और बहिन, ताया, चाचा और भतीजी, मामा और भांजी, फूफी और भतीजा, मौसी और भांजा या भाई-बहिन के अपत्य, भाई-भाई के अपत्य अथवा बहिन-बहिन के अपत्य हों ;

स्पष्टीकरण – खंड (च) और (छ) के प्रयोजनों के लिए "नातेदारी" के अंतर्गत आती हैं –

(i) पूर्ण रक्त की नातेदारी, तथैव अर्ध या एकोदर रक्त की नातेदारी ;

(ii) धर्मज रक्त की नातेदारी, तथैव अधर्मज रक्त की नातेदारी ;

(iii) रक्तजन्य नातेदारी, तथैव दत्तक नातेदारी ;

और उन खंडों में नातेदारी संबंधी सभी पदों का अर्थ तदनुसार लगाया जाएगा ।

4. **अधिनियम का अध्यारोही प्रभाव** – इस अधिनियम में अभिव्यक्त रूप से अन्यथा उपबंधित के सिवाय –

(क) हिन्दू विधि का कोई ऐसा शास्त्रवाक्य, नियम या निर्वचन या उस विधि की भागरूप कोई भी रूढ़ि या प्रथा जो इस अधिनियम के प्रारंभ के अव्यवहित पूर्व प्रवृत्त रही हो ऐसे किसी भी विषय के बारे में, जिसके लिए इस अधिनियम में उपबन्ध किया गया है, प्रभावहीन हो जाएगी ;

(ख) इस अधिनियम के प्रारंभ के अव्यवहित पूर्व प्रवृत्त कोई भी अन्य विधि, वहां तक प्रभावहीन हो जाएगी जहां तक कि वह इस अधिनियम में अंतर्विष्ट उपबंधों में से किसी से भी असंगत हो ।

हिन्दू विवाह

5. **हिन्दू विवाह के लिए शर्तें** – दो हिन्दुओं के बीच विवाह अनुष्ठापित किया जा सकेगा यदि निम्नलिखित शर्तें पूरी हो जाएं, अर्थात् :–

(i) विवाह के समय दोनों पक्षकारों में से, न तो वर की कोई जीवित पत्नी हो और न वधू का कोई जीवित पति हो ;

[1][(ii) विवाह के समय दोनों पक्षकारों में से कोई पक्षकार –

(क) चित्त-विकृति के परिणामस्वरूप विधिमान्य सम्मति देने में असमर्थ न हो ; या

(ख) विधिमान्य सम्मति देने में समर्थ होने पर भी इस प्रकार के या इस हद तक मानसिक विकार से पीड़ित न रहा हो कि वह विवाह और सन्तानोत्पत्ति के लिए अयोग्य हो ; या

(ग) उसे उन्मत्तता [2]*** का बारबार दौरा न पडता हो ;]

(iii) विवाह के समय वर ने [3][इक्कीस वर्ष] की आयु और वधू ने [4][अठारह वर्ष] की आयु पूरी कर ली हो ;

(iv) जब तक कि दोनों पक्षकारों में से हर एक को शासित करने वाली रूढ़ि या प्रथा से उन दोनों के बीच विवाह अनुज्ञात न हो, वे प्रतिषिद्ध नातेदारी डिग्रियों के भीतर न हों ;

(v) जब तक कि दोनों पक्षकारों में से हर एक को शासित करने वाली रूढ़ि या प्रथा से उन दोनों के बीच विवाह अनुज्ञात न हो, वे एक दूसरे के सपिण्ड न हों ;

[5] * * * *

6. [**विवाह में अभिभावकता** ।] – बाल विवाह अवरोध (संशोधन)

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 2 द्वारा खण्ड (ii) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1999 के अधिनियम सं. 39 की धारा 2 द्वारा (29.12.1999 से) ''या मिरगी'' शब्दों का लोप किया गया ।

[3] 1978 के अधिनियम सं. 2 की धारा 6 और अनुसूची द्वारा (1.10.1978 से) ''अठारह वर्ष'' के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[4] 1978 के अधिनियम सं. 2 की धारा 6 और अनुसूची द्वारा (1.10.1978 से) ''पन्द्रह वर्ष'' के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[5] 1978 के अधिनियम सं. 2 की धारा 6 और अनुसूची द्वारा (1.10.1978 से) खण्ड (vi) का लोप किया गया ।

अधिनियम, 1978 (1978 का 2) की धारा 6 और अनुसूची द्वारा (1.10.1978 से) निरसित ।

7. **हिन्दू विवाह के लिए कर्मकांड** – (1) हिन्दू विवाह उसके पक्षकारों में से किसी को भी रूढ़िगत रीतियों और कर्मकांड के अनुसार अनुष्ठापित किया जा सकेगा ।

(2) जहां कि ऐसी रीतियों और कर्मकांड के अन्तर्गत सप्तपदी (अर्थात् अग्नि के समक्ष वर और वधू संयुक्ततः सात पद चलना) आती हो वहां विवाह पूर्ण और आबद्धकर तब होता है जब सातवां पद चल लिया जाता है ।

8. **हिन्दू विवाहों का रजिस्ट्रीकरण** – (1) राज्य सरकार हिन्दू विवाहों का साबित किया जाना सुकर करने के प्रयोजन से ऐसे नियम बना सकेगी जो यह उपबन्धित करे कि ऐसे किसी विवाह के पक्षकार अपने विवाह से सम्बद्ध विशिष्टियों की इस प्रयोजन के लिए रखे गए हिन्दू विवाह रजिस्टर में ऐसी रीति में और ऐसी शर्तों के अध्यधीन, जैसी कि विहित की जाएं, प्रविष्टि करा सकेंगे ।

(2) उपधारा (1) में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, यदि राज्य सरकार की यह राय हो कि ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है तो वह यह उपबन्ध कर सकेगी कि उपधारा (1) में निर्दिष्ट विशिष्टियों का प्रविष्ट किया जाना उस राज्य में या उसके किसी भाग विशेष में, चाहे सभी दशाओं में, चाहे ऐसी दशाओं में, जो विनिर्दिष्ट की जाएं, वैवश्यक होगा और जहां कि कोई ऐसा निदेश निकाला गया हो, वहां इस निमित्त बनाए गए किसी नियम का उल्लंघन करने वाला व्यक्ति जुर्माने से, जो कि पच्चीस रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

(3) इस धारा के अधीन बनाए गए सभी नियम बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र राज्य विधान-मण्डल के समक्ष रखे जाएंगे ।

(4) हिन्दू विवाह रजिस्टर निरीक्षण के लिए सभी युक्तियुक्त समय पर खुला रहेगा और अपने में अन्तर्विष्ट कथनों के साक्ष्य के तौर पर ग्राह्य होगा तथा उसमें से प्रमाणित उद्धरण, आवेदन करने और रजिस्ट्रार को विहित फीस का संदाय करने पर, उसके द्वारा दिए जाएंगे ।

(5) इस धारा में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, ऐसी प्रविष्टि करने में हुआ लोप किसी हिन्दू विवाह की विधिमान्यता पर प्रभाव न डालेगा ।

दाम्पत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन और न्यायिक पृथक्करण

9. **दाम्पत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन** – [1]*** जब कि पति या पत्नी ने अपने को दूसरे के साहचर्य से किसी युक्तियुक्त प्रतिहेतु के बिना प्रत्याहृत कर लिया हो तब व्यथित पक्षकार दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए जिला न्यायालय में अर्जी द्वारा आवेदन कर सकेगा और न्यायालय ऐसी अर्जी में किए गए कथनों के सत्य के बारे में तथा इस बात के बारे में कि इसके लिए कोई वैध आधार नहीं है कि आवेदन मंजूर क्यों न कर लिया जाए अपना समाधान हो जाने पर दाम्पत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन डिक्री कर सकेगा ।

[2][**स्पष्टीकरण** – जहां यह प्रश्न उठता है कि क्या साहचर्य के प्रत्याहरण के लिए युक्तियुक्त प्रतिहेतु है, वहां युक्तियुक्त प्रतिहेतु साबित करने का भार उस व्यक्ति पर होगा जिसने साहचर्य से प्रत्याहरण किया है ।]

[3]* * * * *

10. **न्यायिक पृथक्करण** – [4][(1) विवाह का कोई पक्षकार, चाहे वह विवाह इस अधिनियम के प्रारम्भ के पूर्व या पश्चात् अनुष्ठापित हुआ हो, धारा 13 की उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट किसी आधार पर और पत्नी की दशा में उक्त धारा की उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट किसी आधार पर भी, जिस पर विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी पेश की जा सकती थी, न्यायिक पृथक्करण की डिक्री के लिए प्रार्थना करते हुए अर्जी पेश कर सकेगा ।]

(2) जहां कि न्यायिक पृथक्करण की डिक्री पारित हो गई हो, वहां अर्जीदार पर इस बात की बाध्यता न होगी कि वह प्रत्यर्थी के साथ सहवास करे, किन्तु दोनों पक्षकारों में से किसी के भी अर्जी द्वारा आवेदन करने पर तथा ऐसी अर्जी में किए गए कथनों की सत्यता के बारे में अपना समाधान हो जाने पर न्यायालय, यदि वह ऐसा करना न्यायसंगत और युक्तियुक्त समझे तो, डिक्री को विखण्डित कर सकेगा ।

विवाह की अकृतता और विवाह-विच्छेद

11. **शून्य विवाह** – इस अधिनियम के प्रारम्भ के पश्चात् अनुष्ठापित कोई भी विवाह, यदि वह धारा 5 के खण्ड (i), (iv) और (v) में विनिर्दिष्ट शर्तों में

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 3 द्वारा कोष्ठक और अंक "(1)" का लोप किया गया ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 3 द्वारा अन्तःस्थापित ।

[3] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 3 द्वारा उपधारा (2) का लोप किया गया ।

[4] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 4 द्वारा उपधारा (1) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

से किसी एक का भी उल्लंघन करता हो तो, अकृत और शून्य होगा और विवाह के किसी पक्षकार द्वारा [1][दूसरे पक्षकार के विरुद्ध] उपस्थापित अर्जी पर अकृतता की डिक्री द्वारा ऐसा घोषित किया जा सकेगा ।

12. **शून्यकरणीय विवाह** – (1) कोई भी विवाह, वह इस अधिनियम के प्रारम्भ के चाहे पूर्व अनुष्ठापित हुआ हो चाहे पश्चात्, निम्नलिखित आधारों में से किसी पर भी शून्यकरणीय होगा और अकृतता की डिक्री द्वारा बातिल किया जा सकेगा :–

[2][(क) कि प्रत्यर्थी की नपुंसकता के कारण विवाहोत्तर संभोग नहीं हुआ है ; या]

(ख) कि विवाह धारा 5 के खण्ड (ii) में विनिर्दिष्ट शर्तों का उल्लंघन करता है ; या

(ग) कि अर्जीदार की सम्मति या, जहां कि [3][धारा 5 जिस रूप में बाल विवाह अवरोध (संशोधन) अधिनियम, 1978 (1978 का 2) के प्रारम्भ के ठीक पूर्व विद्यमान थी उस रूप में उसके अधीन अर्जीदार के विवाहार्थ संरक्षक की सम्मति अपेक्षित हो] वहां ऐसे संरक्षक की सम्मति, बल प्रयोग द्वारा [4][या कर्मकाण्ड की प्रकृति के बारे में या प्रत्यर्थी से संबंधित किसी तात्विक तथ्य या परिस्थिति के बारे में कपट द्वारा] अभिप्राप्त की गई थी ; या

(घ) कि प्रत्यर्थी विवाह के समय अर्जीदार से भिन्न किसी व्यक्ति द्वारा गर्भवती थी ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, विवाह के बातिलीकरण की कोई अर्जी –

(क) उपधारा (1) के खण्ड (ग) में विनिर्दिष्ट आधार पर ग्रहण न की जाएगी, यदि –

(i) अर्जी, यथास्थिति, बल प्रयोग के प्रवर्तनहीन हो जाने के

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 5 द्वारा अन्तःस्थापित ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 6 द्वारा खण्ड (क) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[3] 1978 के अधिनियम सं. 2 की धारा 6 और अनूसूची द्वारा (1.10.1978 से) ''धारा 5 के अधीन अर्जीदार के विवाहार्थ संरक्षक की सम्मति अपेक्षित हो'' के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[4] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 6 द्वारा ''या कपट द्वारा'' के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

या कपट का पता चल जाने के एकाधिक वर्ष के पश्चात् दी जाए ; या

(ii) अर्जीदार, यथास्थिति, बल प्रयोग के प्रवर्तनहीन हो जाने के या कपट का पता चल जाने के पश्चात् विवाह के दूसरे पक्षकार के साथ अपनी पूर्ण सम्मति से पति या पत्नी के रूप में रहा या रही है ;

(ख) उपधारा (1) के खण्ड (घ) में विनिर्दिष्ट आधार पर तब तक ग्रहण न की जाएगी जब तक कि न्यायालय का यह समाधान न हो जाए कि –

(i) अर्जीदार विवाह के समय अभिकथित तथ्यों से अनभिज्ञ था ;

(ii) कार्यवाही, इस अधिनियम के प्रारम्भ के पूर्व अनुष्ठापित विवाह की दशा में, ऐसे प्रारम्भ के एक वर्ष के भीतर और ऐसे प्रारम्भ के पश्चात् अनुष्ठापित विवाहों की दशा में, विवाह की तारीख से एक वर्ष के भीतर संस्थित की गई है ; और

(iii) [1][उक्त आधार] के अस्तित्व का अर्जीदार को पता चलने के समय से अर्जीदार की सम्मति से कोई वैवाहिक संभोग नहीं हुआ है ।

13. **विवाह-विच्छेद** – (1) कोई भी विवाह, वह इस अधिनियम के प्रारम्भ के चाहे पूर्व अनुष्ठापित हुआ हो चाहे पश्चात्, पति अथवा पत्नी द्वारा उपस्थापित अर्जी पर विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा इस आधार पर विघटित किया जा सकेगा कि –

[2][(i) दूसरे पक्षकार ने विवाह के अनुष्ठापन के पश्चात् अपने पति या अपनी पत्नी से भिन्न किसी व्यक्ति के साथ स्वेच्छया मैथुन किया है ; या

(iक) दूसरे पक्षकार ने विवाह के अनुष्ठापन के पश्चात् अर्जीदार के साथ क्रूरता का व्यवहार किया है ; या

(iख) दूसरे पक्षकार ने अर्जी के पेश किए जाने के अव्यवहित पूर्व

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 6 द्वारा "डिक्री के आधारों" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 7 द्वारा खंड (i) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

कम से कम दो वर्ष की निरन्तर कालावधि पर अर्जीदार को अभित्यक्त रखा है ; या]

(ii) दूसरा पक्षकार अन्य धर्म में संपरिवर्तित हो जाने के कारण हिन्दू नहीं रह गया है ; या

[1][(iii) दूसरा पक्षकार असाध्य रूप से विकृत-चित्त रहा है अथवा निरन्तर या आंतरायिक रूप से इस प्रकार के और इस हद तक मानसिक विकार से पीड़ित रहा है कि अर्जीदार से युक्तियुक्त रूप से यह आशा नहीं की जा सकती है कि वह प्रत्यर्थी के साथ रहे ।

स्पष्टीकरण – इस खण्ड में, –

(क) "मानसिक विकार" पद से मानसिक बीमारी, मस्तिष्क का संरोध या अपूर्ण विकास, मनोविकृति या मस्तिष्क का कोई अन्य विकार या निःशक्तता अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत विखंडित मनस्कता भी है ;

(ख) "मनोविकृति" पद से मस्तिष्क का दीर्घस्थायी विकार या निःशक्तता (चाहे इसमें बुद्धि की अवसामान्यता हो या नहीं) अभिप्रेत है जिसके परिणामस्वरूप दूसरे पक्षकार का आचरण असामान्य रूप से आक्रामक या गंभीर रूप से अनुत्तरदायी हो जाता है और चाहे उसके लिए चिकित्सीय उपचार अपेक्षित हो या नहीं अथवा ऐसा उपचार किया जा सकता हो या नहीं ; या]

(iv) [2][दूसरा पक्षकार] उग्र और असाध्य कुष्ठ से पीड़ित रहा है ; या

(v) [2][दूसरा पक्षकार] संचारी रूप से रजित रोग से पीड़ित रहा है ; या

(vi) दूसरा पक्षकार किसी धार्मिक पंथ के अनुसार प्रव्रज्या ग्रहण कर चुका है ; या

(vii) दूसरा पक्षकार जीवित है या नहीं इसके बारे में सात वर्ष या उससे अधिक की कालावधि के भीतर उन्होंने कुछ नहीं सुना है जिन्होंने उसके बारे में यदि वह पक्षकार जीवित होता तो स्वाभाविकतः

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 7 द्वारा अन्तः खंड (iii) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 7 द्वारा कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

सुना होता । [1]***

[2]* * * * *

[3][**स्पष्टीकरण** – इस उपधारा में "अभित्यजन" पद से विवाह के दूसरे पक्षकार द्वारा अर्जीदार का ऐसा अभित्यजन अभिप्रेत है जो युक्तियुक्त कारण के बिना और ऐसे पक्षकार की सम्मति के बिना या इच्छा के विरुद्ध हो और इसके अंतर्गत विवाह के दूसरे पक्षकार द्वारा जानबूझकर अर्जीदार की उपेक्षा करना भी है और इस पद के व्याकरणिक रूपभेदों तथा सजातीय पदों के अर्थ तदनुसार लगाए जाएंगे ।]

[4][(1क) विवाह का कोई भी पक्षकार, विवाह इस अधिनियम के प्रारम्भ के चाहे पूर्व अनुष्ठापित हुआ हो चाहे पश्चात्, विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन के लिए इस आधार पर भी अर्जी उपस्थापित कर सकेगा –

(i) कि ऐसी कार्यवाही में पारित, जिसके उस विवाह के पक्षकार, पक्षकार थे, न्यायिक पृथक्करण की डिक्री के धारण के पश्चात् [5][एक वर्ष] या उससे ऊपर की कालावधि भर उन पक्षकारों के बीच सहवास का कोई पुनरारम्भ नहीं हुआ है; या

(ii) कि ऐसी कार्यवाही में पारित, जिसके उस विवाह के पक्षकार, पक्षकार थे, दाम्पत्याधिकार के प्रत्यास्थापन की डिक्री के पश्चात् [5][एक वर्ष] या उससे ऊपर की कालावधि भर, उन पक्षकारों के बीच दाम्पत्याधिकारों का कोई प्रत्यास्थापन नहीं हुआ है ।]

(2) पत्नी विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा अपने विवाह के विघटन के लिए इस आधार पर भी अर्जी उपस्थापित कर सकेगी –

(i) कि इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व अनुष्ठापित विवाह की दशा

---

[1] 1964 के अधिनियम सं. 44 की धारा 2 द्वारा "या" शब्द का लोप किया गया ।

[2] 1964 के अधिनियम सं. 44 की धारा 2 द्वारा खंड (viii) और खंड (ix) का लोप किया गया ।

[3] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 7 द्वारा अंतःस्थापित ।

[4] 1964 के अधिनियम सं. 44 की धारा 2 द्वारा अंतःस्थापित ।

[5] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 7 द्वारा "दो वर्ष" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

में, पति ने ऐसे प्रारंभ के पूर्व फिर विवाह कर लिया था या कि अर्जीदार के विवाह के अनुष्ठापन के समय पति की कोई ऐसी दूसरी पत्नी जीवित थी जिसके साथ उसका विवाह ऐसे प्रारंभ के पूर्व हुआ था :

परन्तु यह तब जब कि दोनों दशाओं में दूसरी पत्नी अर्जी के उपस्थापन के समय जीवित हो ; या

(ii) कि पति विवाह के अनुष्ठापन के पश्चात् बलात्संग, गुदामैथुन या पशुगमन का [1][दोषी रहा है ; या]

[2][(iii) कि हिन्दू दत्तक तथा भरण-पोषण अधिनियम, 1956(1956 का 78) की धारा 18 के अधीन वाद में या दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 125 के अधीन [या दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 (1898 का 5) की तत्समान धारा 488 के अधीन] कार्यवाही में, पत्नी को भरण-पोषण दिलवाने के लिए पति के विरुद्ध, यथास्थिति, डिक्री या आदेश इस बात के होते हुए भी पारित किया गया है कि वह अलग रहती थी और ऐसी डिक्री या आदेश पारित किए जाने के समय से एक वर्ष या उससे ऊपर की कालावधि भर पक्षकारों के बीच सहवास का पुनरारम्भ नहीं हुआ है ;

(iv) कि उसका विवाह (चाहे विवाहोत्तर संभोग हुआ हो या नहीं) उसकी पन्द्रह वर्ष की आयु हो जाने के पूर्व अनुष्ठापित किया गया था और उसने पन्द्रह वर्ष की आयु प्राप्त करने के पश्चात् किन्तु अठारह वर्ष की आयु प्राप्त करने के पूर्व विवाह का निराकरण कर दिया है ।

स्पष्टीकरण – यह खण्ड उस विवाह को भी लागू होगा जो विवाह विधि (संशोधन) अधिनियम, 1976 (1976 का 68) के प्रारंभ के पूर्व या उसके पश्चात् अनुष्ठापित किया गया है ।]

[3][13क. **विवाह-विच्छेद की कार्यवाहियों में प्रत्यर्थी को वैकल्पिक अनुतोष** – इस अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही में विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन के लिए अर्जी पर, उस दशा को छोड़कर जिसमें अर्जी धारा 13 की उपधारा (1) के खण्ड (ii), (vi) और (vii) में वर्णित आधारों पर है, यदि न्यायालय मामले की परिस्थितियों को ध्यान में

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 7 द्वारा "दोषी रहा है" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 7 द्वारा अंतःस्थापित ।

[3] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 8 द्वारा अंतःस्थापित ।

रखते हुए यह न्यायसंगत समझता है तो, वह विवाह-विच्छेद की डिक्री के बजाय न्यायिक पृथक्करण के लिए डिक्री पारित कर सकेगा ।

13ख. **पारस्परिक सम्मति से विवाह-विच्छेद** – (1) इस अधिनियम के उपबन्धों के अधीन रहते हुए यह है कि विवाह के दोनों पक्षकार मिलकर विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन के लिए अर्जी, चाहे ऐसा विवाह, विवाह विधि (संशोधन) अधिनियम, 1976 के प्रारंभ के पूर्व या उसके पश्चात् अनुष्ठापित किया गया हो, जिला न्यायालय में, इस आधार पर पेश कर सकेंगे कि वे एक वर्ष या उससे अधिक समय से अलग-अलग रह रहे हैं और वे एक साथ नहीं रह सके हैं तथा वे इस बात के लिए परस्पर सहमत हो गए हैं कि विवाह का विघटन कर दिया जाना चाहिए ।

(2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट अर्जी के पेश किए जाने की तारीख से छह मास के पश्चात् और उस तारीख से अठारह मास के पूर्व दोनों पक्षकारों द्वारा किए गए प्रस्ताव पर, यदि इस बीच अर्जी वापस नहीं ले ली गई है तो, न्यायालय पक्षकारों को सुनने के पश्चात् और ऐसी जांच करने के पश्चात्, जो वह ठीक समझे, अपना यह समाधान कर लेने पर कि विवाह अनुष्ठापित हुआ है और अर्जी में किए गए प्रकथन सही हैं, यह घोषणा करते हुए विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करेगा कि विवाह डिक्री की तारीख से विघटित हो जाएगा ।]

14. **विवाह से एक वर्ष के भीतर विवाह-विच्छेद के लिए कोई अर्जी उपस्थापित न की जाएगी** – (1) इस अधिनियम में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, कोई भी न्यायालय विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन की कोई अर्जी ग्रहण करने के लिए तब तक सक्षम न होगा [1][जब तक कि विवाह की तारीख से उस अर्जी के पेश किए जाने की तारीख तक एक वर्ष बीत न चुका हो] :

परन्तु न्यायालय उन नियमों के अनुसार किए गए आवेदन पर, जो उच्च न्यायालय द्वारा इस निमित्त बनाए जाएं, किसी अर्जी का, विवाह की तारीख से [1][एक वर्ष बीतने के पूर्व] भी इस आधार पर उपस्थापित किया जाना अनुज्ञात कर सकेगा कि मामला अर्जीदार के लिए असाधारण कष्ट का है या प्रत्यर्थी की असाधारण दुराचारिता से युक्त है; किन्तु यदि अर्जी की सुनवाई के समय न्यायालय को यह प्रतीत हो कि अर्जीदार ने अर्जी को उपस्थापित करने की इजाजत किसी दुर्व्यपदेशन या मामले की प्रकृति के प्रच्छादन द्वारा अभिप्राप्त की थी तो वह, डिक्री देने की दशा में, इस शर्त के अध्यधीन डिक्री दे सकेगा कि

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 9 द्वारा कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

डिक्री तब तक संप्रभाव न होगी जब तक कि विवाह की तारीख से [1][एक वर्ष का अवसान] न हो जाए अथवा उस अर्जी को ऐसी किसी अर्जी पर कोई प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना खारिज कर सकेगा जो [1][उक्त एक वर्ष के अवसान] के पश्चात् उन्हीं या सारतः उन्हीं तथ्यों पर दी जाए जो ऐसे खारिज की गई अर्जी के समर्थन में अभिकथित किए गए थे ।

(2) विवाह की तारीख से [1][एक वर्ष के अवसान] से पूर्व विवाह-विच्छेद की अर्जी उपस्थापित करने की इजाजत के लिए इस धारा के अधीन किए गए किसी आवेदन का निपटारा करने में न्यायालय उस विवाह से उत्पन्न किसी अपत्य के हितों पर तथा इस बात पर ध्यान रखेगा कि पक्षकारों के बीच [1][उक्त एक वर्ष] के अवसान से हुई पूर्व मेल-मिलाप की कोई युक्तियुक्त संभाव्यता है या नहीं ।

15. **कब विवाह-विच्छेद प्राप्त व्यक्ति पुनः विवाह कर सकेगा** – जब कि विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह विघटित कर दिया गया हो और या तो डिक्री के विरुद्ध अपील करने का कोई अधिकार ही न हो या यदि अपील का ऐसा अधिकार हो तो अपील करने के समय का कोई अपील उपस्थापित हुए बिना अवसान हो गया हो या अपील की तो गई हो किन्तु खारिज कर दी गई हो तब विवाह के किसी पक्षकार के लिए पुनः विवाह करना विधिपूर्ण होगा ।

[2]* * * * *

[3][16. **शून्य और शून्यकरणीय विवाहों के अपत्यों की धर्मजता** – (1) इस बात के होते हुए भी कि विवाह धारा 11 के अधीन अकृत और शून्य है, ऐसे विवाह का ऐसा अपत्य धर्मज होगा, जो विवाह के विधिमान्य होने की दशा में धर्मज होता चाहे ऐसे अपत्य का जन्म विवाह विधि (संशोधन) अधिनियम, 1976 के प्रारंभ से पूर्व या उसके पश्चात् हुआ हो और चाहे उस विवाह के संबंध में अकृतता की डिक्री इस अधिनियम के अधीन मंजूर की गई हो या नहीं और चाहे वह विवाह इस अधिनियम के अधीन अर्जी से भिन्न आधार पर शून्य अभिनिर्धारित किया गया हो या नहीं ।

(2) जहां धारा 12 के अधीन शून्यकरणीय विवाह के संबंध में अकृतता की डिक्री मंजूर की जाती है वहां डिक्री की जाने से पूर्व जनित या गर्भाहित ऐसा कोई अपत्य, जो यदि विवाह डिक्री की तारीख को अकृत

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 9 कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 10 द्वारा परन्तुक का लोप किया गया ।

[3] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 11 द्वारा धारा 16 के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

किए जाने की बजाय विघटित कर दिया गया होता तो विवाह के पक्षकारों का धर्मज अपत्य होता, अकृतता की डिक्री होते हुए भी उनका धर्मज अपत्य समझा जाएगा ।

(3) उपधारा (1) या उपधारा (2) की किसी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह ऐसे विवाह के किसी ऐसे अपत्य को, जो अकृत और शून्य है या जिसे धारा 12 के अधीन अकृतता की डिक्री द्वारा अकृत किया गया है, उसके माता-पिता से भिन्न किसी व्यक्ति की सम्पत्ति में या सम्पत्ति के लिए कोई अधिकार किसी ऐसी दशा में प्रदान करती है जिसमें कि यदि यह अधिनियम पारित न किया गया होता तो वह अपत्य अपने माता-पिता का धर्मज अपत्य न होने के कारण ऐसा कोई अधिकार रखने या अर्जित करने में असमर्थ होता ।]

17. **द्विविवाह के लिए दंड** – यदि इस अधिनियम के प्रारंभ के पश्चात् दो हिन्दुओं के बीच अनुष्ठापित किसी विवाह की तारीख पर ऐसे विवाह के किसी पक्षकार का पति या पत्नी जीवित था या थी तो ऐसा विवाह शून्य होगा और भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 494 और 495 के उपबन्ध उसे तदनुसार लागू होंगे ।

18. **हिन्दू विवाह की कतिपय अन्य शर्तों के उल्लंघन के लिए दंड** – हर व्यक्ति जो अपना कोई ऐसा विवाह उपाप्त करेगा जो धारा 5 के खण्ड (iii), (iv) [1][और (v)] में विनिर्दिष्ट शर्तों के उल्लंघन में इस अधिनियम के अधीन अनुष्ठापित किया गया हो वह –

(क) धारा 5 के खण्ड (iii) में विनिर्दिष्ट शर्त के उल्लंघन की दशा में, सादे कारावास से, जिसकी अवधि पन्द्रह दिन तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, जो एक हजार रुपए तक का हो सकेगा, अथवा दोनों से,

(ख) धारा 5 के खण्ड (iv) या खण्ड (v) में विनिर्दिष्ट शर्त के उल्लंघन की दशा में, सादे कारावास से, जिसकी अवधि एक मास तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, जो एक हजार रुपए तक का हो सकेगा, अथवा दोनों से । [2]***

---

[1] 1978 के अधिनियम सं. 2 की धारा 6 और अनुसूची द्वारा (1.10.1978 से) "(v) और (vi)" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1978 के अधिनियम सं. 2 की धारा 6 और अनुसूची द्वारा (1.10.1978 से) "और" शब्द का लोप किया गया ।

[1]* * * * *

अधिकारिता और प्रक्रिया

[2][19. **वह न्यायालय जिसमें अर्जी उपस्थापित की जाएगी** – इस अधिनियम के अधीन हर अर्जी उस जिला न्यायालय के समक्ष पेश की जाएगी जिसकी मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के अन्दर –

(i) विवाह का अनुष्ठापन हुआ था; या

(ii) प्रत्यर्थी, अर्जी के पेश किए जाने के समय, निवास करता है; या

(iii) विवाह के पक्षकारों ने अंतिम बार एक साथ निवास किया था; या

[3][(iiiक) यदि पत्नी अर्जीदार है तो जहां वह अर्जी पेश किए जाने के समय निवास कर रही है, या]

(iv) अर्जीदार के अर्जी पेश किए जाने के समय निवास कर रहा है, यह ऐसे मामले में, जिसमें प्रत्यर्थी उस समय ऐसे राज्यक्षेत्र के बाहर निवास कर रहा है जिस पर इस अधिनियम का विस्तार है अथवा वह जीवित है या नहीं इसके बारे में सात वर्ष या उससे अधिक की कालावधि के भीतर उन्होंने कुछ नहीं सुना है, जिन्होंने उसके बारे में, यदि वह जीवित होता तो, स्वाभाविकतया सुना होता ।]

20. **अर्जियों की अन्तर्वस्तु और सत्यापन** – (1) इस धारा के अधीन उपस्थापित हर अर्जी उन तथ्यों को जिन पर अनुतोष का दावा आधारित हो इतने स्पष्ट तौर पर कथित करेगी जितना उस मामले की प्रकृति अनुज्ञात करे [4][और धारा 11 के अधीन अर्जी को छोड़कर] ऐसी हर अर्जी [यह भी कथित करेगी] कि अर्जीदार और विवाह के दूसरे पक्षकार के बीच कोई सन्धि नहीं है ।

(2) इस अधिनियम के अधीन दी जाने वाली हर अर्जी में अन्तर्विष्ट कथन वादपत्रों के सत्यापन के लिए विधि द्वारा अपेक्षित रीति से अर्जीदार या अन्य सक्षम व्यक्ति द्वारा सत्यापित किए जाएंगे और सुनवाई के समय साक्ष्य के रूप

---

[1] 1978 के अधिनियम सं. 2 की धारा 6 और अनुसूची द्वारा (1.10.1978 से) खण्ड (ग) का लोप किया गया ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 12 द्वारा धारा 19 के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[3] 2003 के अधिनियम सं. 50 की धारा 4 द्वारा (23.12.2003 से) अंतःस्थापित ।

[4] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 13 द्वारा "और वह यह और भी कथित करेगी" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

में ग्राह्य होंगे ।

21. **1908 के अधिनियम संख्यांक 5 का लागू होना** – इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट अन्य उपबन्धों के और उन नियमों के जो उच्च न्यायालय इस निमित्त बनाए, अध्यधीन यह है कि इस अधिनियम के अधीन सब कार्यवाहियां जहां तक हो सकेगा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 द्वारा विनियमित होंगी ।

[1][21क. **कुछ मामलों में अर्जियों को अन्तरित करने की शक्ति** – (1) जहां –

(क) इस अधिनियम के अधीन कोई अर्जी अधिकारिता रखने वाले जिला न्यायालय में विवाह के किसी पक्षकार द्वारा धारा 10 के अधीन न्यायिक पृथक्करण की डिक्री के लिए या धारा 13 के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए प्रार्थना करते हुए पेश की गई है; और

(ख) उसके पश्चात् इस अधिनियम के अधीन कोई दूसरी अर्जी विवाह के दूसरे पक्षकार द्वारा किसी आधार पर धारा 10 के अधीन न्यायिक पृथक्करण की डिक्री के लिए या धारा 13 के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए प्रार्थना करते हुए, चाहे उसी जिला न्यायालय में अथवा उसी राज्य के या किसी भिन्न राज्य के किसी भिन्न जिला न्यायालय में पेश की गई है,

वहां ऐसी अर्जियों के संबंध में उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट रीति से कार्यवाही की जाएगी ।

(2) ऐसे मामले में जिसे उपधारा (1) लागू होती है, –

(क) यदि ऐसी अर्जियां एक ही जिला न्यायालय में पेश की जाती हैं तो दोनों अर्जियों का विचारण और उनकी सुनवाई उस जिला न्यायालय द्वारा एक साथ की जाएगी ;

(ख) यदि ऐसी अर्जियां भिन्न-भिन्न जिला न्यायालयों में पेश की जाती हैं तो बाद वाली पेश की गई अर्जी उस जिला न्यायालय को अन्तरित की जाएगी जिसमें पहले वाली अर्जी पेश की गई थी, और दोनों अर्जियों की सुनवाई और उनका निपटारा उस जिला न्यायालय द्वारा एक साथ किया जाएगा जिसमें पहली वाली अर्जी पेश की गई थी ।

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 14 द्वारा अन्तःस्थापित ।

(3) ऐसे मामले में, जिसे उपधारा (2) का खंड (ख) लागू होता है, यथास्थिति, वह न्यायालय या सरकार, जो किसी वाद या कार्यवाही को उस जिला न्यायालय से, जिसमें बाद वाली अर्जी पेश की गई है, उच्च न्यायालय को जिसमें पहले वाली अर्जी लम्बित है, अन्तरित करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के अधीन सक्षम है, ऐसी बाद वाली अर्जी का अन्तरण करने के लिए अपनी शक्तियों का वैसे ही प्रयोग करेगी मानो वह उक्त संहिता के अधीन ऐसा करने के लिए सशक्त की गई है ।

21ख. **इस अधिनियम के अधीन अर्जियों के विचारण और निपटारे से संबंधित विशेष उपबन्ध** – (1) इस अधिनियम के अधीन अर्जी का विचारण, जहां तक कि न्याय के हित से संगत रहते हुए उस विचारण के बारे में साध्य हो, दिन प्रतिदिन तब तक निरन्तर चालू रहेगा जब तक कि वह समाप्त न हो जाए किन्तु उस दशा में नहीं जिसमें न्यायालय विचारण का अगले दिन से परे के लिए स्थगन उन कारणों से आवश्यक समझे जो लेखबद्ध किए जाएंगे ।

(2) इस अधिनियम के अधीन हर अर्जी का विचारण जहां तक संभव हो शीघ्र किया जाएगा और प्रत्यर्थी पर अर्जी की सूचना की तामील होने की तारीख से छह मास के अन्दर विचारण समाप्त करने का प्रयास किया जाएगा ।

(3) इस अधिनियम के अधीन हर अपील की सुनवाई जहां तक संभव हो शीघ्र की जाएगी और प्रत्यर्थी पर अपील की सूचना की तामील होने की तारीख से तीन मास के अंदर सुनवाई समाप्त करने का प्रयास किया जाएगा ।

21ग. **दस्तावेजी साक्ष्य** – किसी अधिनियमिति में किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी यह है कि इस अधिनियम के अधीन अर्जी के विचारण को किसी कार्यवाही में कोई दस्तावेज साक्ष्य में इस आधार पर अग्राह्य नहीं होगी कि वह सम्यक् रूप से स्टाम्पित या रजिस्ट्रीकृत नहीं है ।]

[1][22. **कार्यवाहियों का बन्द कमरे में होना और उन्हें मुद्रित या प्रकाशित न किया जाना** – (1) इस अधिनियम के अधीन हर कार्यवाही बन्द कमरे में की जाएगी और किसी व्यक्ति के लिए ऐसी किसी कार्यवाही के सम्बन्ध में किसी बात को मुद्रित या प्रकाशित करना विधिपूर्ण नहीं होगा किन्तु उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के उस निर्णय को छोड़कर जो उस न्यायालय की पूर्व अनुज्ञा से मुद्रित या प्रकाशित किया गया है ।

(2) यदि कोई व्यक्ति उपधारा (1) के उपबन्धों के उल्लंघन में कोई

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 15 द्वारा धारा 22 के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

बात मुद्रित या प्रकाशित करेगा तो वह जुर्माने से, जो एक हजार रुपए तक का हो सकेगा, दण्डनीय होगा ।]

23. **कार्यवाहियों में डिक्री** – (1) यदि इस अधिनियम के अधीन होने वाली किसी कार्यवाही में चाहे उसमें प्रतिरक्षा की गई हो या नहीं, न्यायालय का समाधान हो जाए कि –

(क) अनुतोष अनुदत्त करने के आधारों में से कोई न कोई आधार विद्यमान है और अर्जीदार [1][उन मामलों को छोड़कर, जिनमें उसके द्वारा धारा 5 के खण्ड (ii) के उपखण्ड (क), उपखण्ड (ख) या उपखण्ड (ग) में विनिर्दिष्ट आधार पर अनुतोष चाहा गया है] अनुतोष के प्रयोजन से अपने ही दोष या निर्योग्यता का किसी प्रकार फायदा नहीं उठा रहा या उठा रही है, और

(ख) जहां कि अर्जी का आधार [2]*** धारा 13 की उपधारा (1) के खण्ड (i) में विनिर्दिष्ट आधार हो वहां न तो अर्जीदार परिवादित कार्य या कार्यों का किसी प्रकार से उपसाधक रहा है और न उसने उनका मौनानुमोदन या उपमर्षण किया है अथवा जहां कि अर्जी का आधार क्रूरता हो वहां अर्जीदार ने उस क्रूरता का किसी प्रकार उपमर्षण नहीं किया है, और

[3][(खख) जब विवाह-विच्छेद पारस्परिक सम्मति के आधार पर चाहा गया है, और ऐसी सम्मति बल, कपट या असम्यक् असर द्वारा अभिप्राप्त नहीं की गई है, और]

(ग) [4][अर्जी (जो धारा 11 के अधीन पेश की गई अर्जी नहीं है)] प्रत्यर्थी के साथ दुरसन्धि करके उपस्थापित या अभियोजित नहीं की जाती है, और

(घ) कार्यवाही संस्थित करने में कोई अनावश्यक या अनुचित विलम्ब नहीं हुआ है, और

(ङ) अनुतोष अनुदत्त न करने के लिए कोई अन्य वैध आधार नहीं है, तो ऐसी ही दशा में, किन्तु अन्यथा नहीं, न्यायालय तदनुसार ऐसा अनुतोष डिक्री कर देगा ।

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 16 द्वारा अन्तःस्थापित ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 16 द्वारा कतिपय शब्दों का लोप किया गया ।

[3] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 16 द्वारा अन्तःस्थापित ।

[4] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 16 द्वारा "अर्जी" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

(2) इस अधिनियम के अधीन कोई अनुतोष अनुदत्त करने के लिए अग्रसर होने के पूर्व यह न्यायालय का प्रथमतः कर्तव्य होगा कि वह ऐसी दशा में, जहां कि मामले की प्रकृति और परिस्थितियों से संगत रहते हुए ऐसा करना सम्भव हो, पक्षकारों के बीच मेल-मिलाप कराने का पूर्ण प्रयास करे :

[1][परन्तु इस उपधारा की कोई बात किसी ऐसी कार्यवाही को लागू नहीं होगी जिसमें धारा 13 की उपधारा (1) के खण्ड (ii), खण्ड (iii), खण्ड (iv), खण्ड (v), खण्ड (vi) या खण्ड (vii) में विनिर्दिष्ट आधारों में से किसी आधार पर अनुतोष चाहा गया है ।]

[2][(3) ऐसा मेल-मिलाप कराने में न्यायालय की सहायता के प्रयोजन के लिए न्यायालय, यदि पक्षकार ऐसा चाहते तो या यदि न्यायालय ऐसा करना न्यायसंगत और उचित समझे तो, कार्यवाहियों को पंद्रह दिन से अनधिक की युक्तियुक्त कालावधि के लिए स्थगित कर सकेगा और उस मामले को पक्षकारों द्वारा इस निमित्त नामित किसी व्यक्ति को या यदि पक्षकार कोई व्यक्ति नामित करने में असफल रहते हैं तो न्यायालय द्वारा नामनिर्देशित किसी व्यक्ति को इन निदेशों के साथ निर्देशित कर सकेगा कि वह न्यायालय को इस बारे में रिपोर्ट दे कि मेल-मिलाप कराया जा सकता है या नहीं तथा करा दिया गया है या नहीं और न्यायालय कार्यवाही का निपटारा करने में ऐसी रिपोर्ट को सम्यक् रूप से ध्यान में रखेगा ।

(4) ऐसे हर मामले में, जिसमें विवाह का विघटन विवाह-विच्छेद द्वारा होता है, डिक्री पारित करने वाला न्यायालय हर पक्षकार को उसकी प्रति मुफ्त देगा ।]

[3][23क. **विवाह-विच्छेद और अन्य कार्यवाहियों में प्रत्यर्थी को अनुतोष** – विवाह-विच्छेद या न्यायिक पृथक्करण या दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए किसी कार्यवाही में प्रत्यर्थी अर्जीदार के जारकर्म, क्रूरता या अभित्यजन के आधार पर चाहे गए अनुतोष का न केवल विरोध कर सकेगा बल्कि वह उस आधार पर इस अधिनियम के अधीन किसी अनुतोष के लिए प्रतिदावा भी कर सकेगा और यदि अर्जीदार का जारकर्म, क्रूरता या अभित्यजन साबित हो जाता है तो न्यायालय प्रत्यर्थी को इस अधिनियम के अधीन कोई ऐसा अनुतोष दे

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 16 द्वारा जोडा गया ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 16 द्वारा अंतःस्थापित ।

[3] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 17 द्वारा अंतःस्थापित ।

सकेगा जिसके लिए वह उस दशा में हकदार होता या होती जिसमें उसने उस आधार पर ऐसे अनुतोष की मांग करते हुए अर्जी उपस्थापित की होती ।]

24. **वाद लम्बित रहते भरण-पोषण और कार्यवाहियों के व्यय** – जहां कि इस अधिनियम के अधीन होने वाली किसी कार्यवाही में न्यायालय को यह प्रतीत हो कि, यथास्थिति, पति या पत्नी की ऐसी कोई स्वतंत्र आय नहीं है जो उसके संभाल और कार्यवाही के आवश्यक व्ययों के लिए पर्याप्त हो वहां वह पति या पत्नी के आवेदन पर प्रत्यर्थी को यह आदेश दे सकेगा कि अर्जीदार को कार्यवाही में होने वाले व्यय तथा कार्यवाही के दौरान में प्रतिमास ऐसी राशि संदत्त करे जो अर्जीदार की अपनी आय तथा प्रत्यर्थी की आय को देखते हुए न्यायालय को युक्तियुक्त प्रतीत होती हो :

[1][परन्तु कार्यवाही के व्ययों और कार्यवाही के दौरान ऐसी मासिक राशि के संदाय के लिए आवेदन को यथासंभव, यथास्थिति, पत्नी या पति पर सूचना की तामील की तारीख से, साठ दिन के भीतर निपटाया जाएगा ।]

25. **स्थायी निर्वाहिका और भरण-पोषण** – (1) इस अधिनियम के अधीन अधिकारिता का प्रयोग कर रहा कोई भी न्यायालय, डिक्री पारित करने के समय या उसके पश्चात् किसी भी समय, यथास्थिति, पति या पत्नी द्वारा इस प्रयोजन से किए गए आवेदन पर, यह आदेश दे सकेगा कि प्रत्यर्थी [2]*** उसके भरण-पोषण और संभाल के लिए ऐसी कुल राशि या ऐसी मासिक अथवा कालिक राशि, जो प्रत्यर्थी की अपनी आय और अन्य सम्पत्ति को, यदि कोई हो आवेदक या आवेदिका की आय और अन्य सम्पत्ति को [3][तथा पक्षकारों के आचरण और मामले की अन्य परिस्थितियों को देखते हुए] न्यायालय को न्यायसंगत प्रतीत हो, आवेदक या आवेदिका के जीवन-काल से अनधिक अवधि के लिए संदत्त करे और ऐसा कोई भी संदाय यदि यह करना आवश्यक हो तो, प्रत्यर्थी की स्थावर सम्पत्ति पर भार द्वारा प्रतिभूत किया जा सकेगा ।

(2) यदि न्यायालय का समाधान हो जाए कि उसके उपधारा (1) के अधीन आदेश करने के पश्चात् पक्षकारों में से किसी की भी परिस्थितियों में तब्दीली हो गई है तो वह किसी भी पक्षकार की प्रेरणा पर ऐसी रीति से, जो

---

[1] 2001 के अधिनियम सं. 49 की धारा 8 द्वारा (24.9.2001 से) अन्तःस्थापित ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 18 द्वारा ''जब तक आवेदक या आवेदिका अविवाहित रहे तब तक'' शब्दों का लोप किया गया ।

[3] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 18 द्वारा कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

न्यायालय को न्यायसंगत प्रतीत हो ऐसे किसी आदेश में फेरफार कर सकेगा या उसे उपान्तरित अथवा विखण्डित कर सकेगा ।

(3) यदि न्यायालय का समाधान हो जाए कि उस पक्षकार ने जिसके पक्ष में इस धारा के अधीन कोई आदेश किया गया है, पुनर्विवाह कर लिया है या यदि ऐसा पक्षकार पत्नी है तो वह पतिव्रता नहीं रह गई है, या यदि ऐसा पक्षकार पति है तो उसने किसी स्त्री के साथ विवाहबाह्य मैथुन किया है, [1][तो वह दूसरे पक्षकार की प्रेरणा पर ऐसे किसी आदेश को ऐसी रीति में, जो न्यायालय न्यायसंगत समझे, परिवर्तित, उपांतरित या विखंडित कर सकेगा ।]

26. **अपत्यों की अभिरक्षा** – इस अधिनियम के अधीन होने वाली किसी भी कार्यवाही में न्यायालय अप्राप्तवय अपत्यों की अभिरक्षा, भरण-पोषण और शिक्षा के बारे में, यथासंभव उनकी इच्छा के अनुकूल, समय-समय ऐसे आदेश पारित कर सकेगा और डिक्री में ऐसे उपबन्ध कर सकेगा जिन्हें वह न्यायसंगत और उचित समझे और डिक्री के पश्चात् इस प्रयोजन से अर्जी द्वारा किए गए आवेदन पर ऐसे अपत्य की अभिरक्षा, भरण-पोषण और शिक्षा के बारे में समय-समय पर ऐसे आदेश और उपबन्ध कर सकेगा जो ऐसी डिक्री अभिप्राप्त करने की कार्यवाही के लम्बित रहते ऐसी डिक्री या अन्तरिम आदेश द्वारा किए जा सकते थे और न्यायालय पूर्वतन किए गए ऐसे किसी आदेश या उपबंध को समय-समय पर प्रतिसंहृत या निलंबित कर सकेगा अथवा उसमें फेरफार कर सकेगा :

[2][परंतु ऐसी डिक्री अभिप्राप्त करने के लिए कार्यवाही लंबित रहने तक अप्राप्तवय अपत्यों के भरण-पोषण और शिक्षा की बाबत आवेदन को यथासंभव, प्रत्यर्थी पर सूचना की तामील की तारीख से, साठ दिन के भीतर निपटाया जाएगा ।]

27. **सम्पत्ति का व्ययन** – इस अधिनियम के अधीन होने वाली किसी भी कार्यवाही में, न्यायालय ऐसी सम्पत्ति के बारे में, जो विवाह के अवसर पर या उनके आस-पास उपहार में दी गई हो और संयुक्ततः पति और पत्नी दोनों की हो, डिक्री में ऐसे उपबन्धित कर सकेगा जिन्हें वह न्यायसंगत और उचित समझे ।

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 18 द्वारा कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 2001 के अधिनियम सं. 49 की धारा 9 द्वारा (24.9.2001 से) अंतःस्थापित ।

[1][28. **डिक्रियों और आदेशों की अपीलें** – (1) इस अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही में न्यायालय द्वारा दी गई सभी डिक्रियां, उपधारा (3) के उपबन्धों के अधीन रहते हुए उसी प्रकार अपीलनीय होंगी जैसे उस न्यायालय द्वारा अपनी आरम्भिक सिविल अधिकारिता के प्रयोग में दी गई डिक्री अपीलीय होती है और ऐसी हर अपील उस न्यायालय में होगी जिसमें उस न्यायालय द्वारा अपनी आरम्भिक सिविल अधिकारिता के प्रयोग में किए गए विनिश्चयों की अपीलें सामान्यतः होती हैं ।

(2) धारा 25 या धारा 26 के अधीन किसी कार्यवाही में न्यायालय द्वारा किए गए आदेश उपधारा (3) के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, तभी अपीलनीय होंगे जब वे अन्तरिम आदेश न हों और ऐसी हर अपील उस न्यायालय में होगी जिसमें उस न्यायालय द्वारा अपनी आरम्भिक सिविल अधिकारिता के प्रयोग में किए गए विनिश्चयों की अपीलें सामान्यतः होती हैं ।

(3) केवल खर्चे के विषय में कोई अपील इस धारा के अधीन नहीं होगी ।

(4) इस धारा के अधीन हर अपील डिक्री या आदेश की तारीख से [2][नब्बे दिन की कालावधि] के अन्दर की जाएगी ।

28क. **डिक्रियों और आदेशों का प्रवर्तन** – इस अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही में न्यायालय द्वारा दी गई सभी डिक्रियों और आदेशों का प्रवर्तन उसी प्रकार किया जाएगा जिस प्रकार उस न्यायालय द्वारा अपनी आरम्भिक सिविल अधिकारिता के प्रयोग में दी गई डिक्रियों और आदेशों का तत्समय प्रवर्तन किया जाता है ।]

व्यावृत्तियां और निरसन

29. **व्यावृत्तियां** – (1) इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व हिन्दुओं के बीच, अनुष्ठापित ऐसा विवाह, जो अन्यथा विधिमान्य हो, केवल इस तथ्य के कारण अविधिमान्य या कभी अविधिमान्य रहा हुआ न समझा जाएगा कि उसके पक्षकार एक ही गोत्र या प्रवर के थे अथवा, विभिन्न धर्मों, जातियों या एक ही जाति की विभिन्न उपजातियों के थे ।

(2) इस अधिनियम में अंतर्विष्ट कोई भी बात रूढ़ि से मान्यताप्राप्त या किसी विशेष अधिनियमिति द्वारा प्रदत्त किसी ऐसे अधिकार पर प्रभाव डालने

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 19 द्वारा प्रतिस्थापित ।

[2] 2003 के अधिनियम सं. 50 की धारा 5 द्वारा (26.12.2003 से) ''तीस दिन की कालावधि'' के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

वाली न समझी जाएगी जो किसी हिन्दू विवाह का वह इस अधिनियम के प्रारंभ के चाहे पूर्व अनुष्ठापित हुआ हो चाहे पश्चात्, विघटन अभिप्राप्त करने का अधिकार हो ।

(3) इस अधिनियम में अंतर्विष्ट कोई भी बात तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन होने वाली किसी ऐसी कार्यवाही पर प्रभाव न डालेगी जो किसी विवाह को बातिल और शून्य घोषित करने के लिए या किसी विवाह को बातिल अथवा विघटित करने के लिए या न्यायिक पृथक्करण के लिए हो और इस अधिनियम के प्रारंभ पर लम्बित हो और ऐसी कोई भी कार्यवाही चलती रहेगी और अवधारित की जाएगी मानो यह अधिनियम पारित ही न हुआ हो ।

(4) इस अधिनियम में अंतर्विष्ट कोई भी बात विशेष विवाह अधिनियम, 1954 (1954 का 43) में अन्तर्विष्ट किसी ऐसे उपबन्ध पर प्रभाव न डालेगी जो हिन्दुओं के बीच उस अधिनियम के अधीन, इस अधिनियम के प्रारंभ के चाहे पूर्व चाहे पश्चात् अनुष्ठापित विवाहों के संबंध में हो ।

30. **[निरसन ।]** – रिपीलिंग एण्ड अमेंडिंग ऐक्ट, 1960 (1960 का 58) की धारा 2 और प्रथम अनुसूची द्वारा निरसित ।